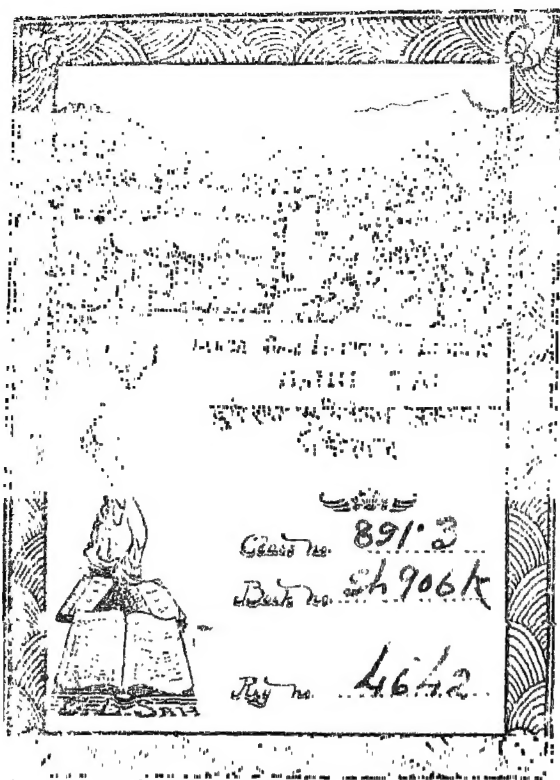

Class no. 891.3
Book no. Sh906K
Reg no. 4642

कल्पना के आँसू



श्रीराम शर्मा 'राम'



नवयुग प्रकाशन, दिल्ली।

मूल्य : चार रुपये पचास नये पैसे
प्रथम संस्करण : सितम्बर, १९५८
सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन
प्रकाशक : नवयुग प्रकाशन,
२८१, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली।
मुद्रक : मनमोहन प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली।

मेरी बात

आज के इस भौतिक युग में कि जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति सभी कुछ नया और अनोखा चाहता है, तो साधुता की बात कहना संगत नहीं लगेगा। परन्तु प्रस्तुत उपन्यास में यही है। इस लेखक ने बार-बार सोचा कि क्या सुरा, सुन्दरी की कल्पना करना ही, इस नर-नारी के समाज का ध्येय रह गया है! निश्चय ही, इसके साथ हमें कुछ और भी चाहिये। शांति चाहिये, आत्म-चेतना चाहिये।

प्रस्तुत उपन्यास में, समाज के द्वन्द्व, कुटिलता के साथ, यह भी बताने का प्रयत्न किया गया है कि हमारे गांव, नगरों के समान चमकते और कोलाहल से पूर्ण नहीं। वे आज भी बहुत पीछे हैं। अतएव, चेष्टा की है कि कथोपकथन में समाज के वास्तविक चित्रण को प्राथमिकता दी जाये।

पाठक, उपन्यास के कथानक से सहमत हुए, तो लेखक अपना परिश्रम सफल मानेगा।

ए-१७१, नॉर्थ ऑफ मेडिकल
इन्क्लेव, नई दिल्ली।
२०, ८, '५८

श्रीराम शर्मा 'राम'

१



दिन और रात की आँख मिचौनी को देख, सन्ध्या मुसकरा रही थी। वह उस रातरानी की गोद में समा जाने के लिये जैसे आतुर हो उठी थी। उसी समय, आसमान में निकल आये चाँद की ओर देख, एकाएक ही, कल्पना ने अँगड़ाई ली और अपनी वे सुन्दर आंखें धुँधले हो आये निशीथ की ओर उठा दीं। बरबस ही, कल्पना अपने-आप में व्याकुल बन गयी। वह यौवनमयी और रूप की परी, सचमुच ही, इस बात के लिये इच्छुक हो उठी कि उसका चिर साथी सुधीर आये और वह कुछ अपनी कह पाये, कुछ उसकी सुन जाये। किन्तु वह दूर गया हुआ सुधीर यों सुगमता से कल्पना के पास नहीं आ सकता था। और उसने अपने पत्र में लिखा था, एक दिन हम और तुम मिले थे, यों दूर हो जाने के लिये! अपने उस पत्र में ही, सुधीर ने जैसे दार्शनिकता का प्रदर्शन किया,—इस प्रकार सभी एक-दूसरे से दूर हो जाते हैं, कल्पना रानी!

लेकिन उस रात के आगमन पर कल्पना सोचती, कि काश, सुधीर उसके पास आये, उसे मिले! वह एक बार फिर उससे लगकर बैठ जायेगी। वह बरबस ही, सुधीर को सुना देगी, हम-तुम अब भी एक-दूसरे के समीप आ सकते हैं.......एकत्व को प्राप्त हो सकते हैं।

परन्तु कल्पना तो जानती थी कि सुधीर उसे नहीं मिलेगा। वह नहीं आयेगा। उसने जाने क्या सोचकर अपना एक पत्र ही दे दिया। उसे याद कर लिया। तभी कल्पना चौंक गयी। उसके विचार टूट गये। सुधीर की स्मृति उसके पास से दूर चली गयी। उसका पति आ गया। वह

विशाल भवन, उसकी वह अद्‌भुत ज-सज्जा ! चारों ओर कलकल ! पूर्ण कोलाहल !

कल्पना के पति अवध बाबू ने अपना कोट उतारा और खूँटी पर टाँग दिया। तभी काऊच पर बैठ, उसने कल्पना की ओर देख, मुसकरा दिया—'किस विचार में हो, कल्पना रानी !'

जैसे सहम कर कल्पना ने कहा—'जी, कुछ भी नहीं !'

'नहीं, कुछ मन में है। कोई पुरानी बात है क्या ? या नयी ?'

कल्पना ने साँस भरी—'सोचती हूँ कि यह जीवन भी क्या है ! पुराने साथी छूटते हैं और नये मिलते हैं।' वह बोली—'यह भी केवल व्यापार नहीं है, क्या ! निरा रूखा······निरा अर्थहीन······'

अवधबाबू एक सुन्दर युवक था, शिक्षित था, वकील था। बात सुनी, तो वह मुसकरा दिया—'इस व्यापार में उलझ कर तो जाने कितने खप गये हैं, मेरी रानी ! उसे समझ नहीं पाये !'

'तो क्यों है, यह जीवन !'

अवध बाबू ने हल्के भाव से हँस दिया—'इसे समझ कर क्या लोगी। एक शब्द में कहूँ, तो जीवन का दूसरा नाम है, आनन्द,—भोग !'

'भोग !—जीवन का आनन्द ! छिः !' कल्पना एकाएक तुनक गयी—'क्या यह भी कोई आनन्द है ! कोरी मूढ़ता है ! जड़ता है !'

किन्तु कल्पना की उस बात को सुन, अवधकुमार चकित नहीं हुआ। वह इस बात को जानता था कि कल्पना रूपवती होने के साथ-साथ अत्यन्त भावनामयी है। वह नर और नारी के आदर्श तथा आध्यात्मिक जीवन को भी पसन्द करती है। इसलिये अवधबाबू ने बात का प्रस्तुत प्रसंग रोक दिया। उसने नया सिगरेट सुलगाया और उसका घना-सा धुआँ ऊपर मुँह करके छोड़ा। उस अवस्था में ही, उसने कमरे की दीवार पर लगे महात्मा बुद्ध के चित्र को लक्ष्य किया। वह कमरा कल्पना का था। इसलिये उस कमरे की दीवारों पर अनेक महात्माओं के चित्र

लगे थे। निश्चय ही, वे सब कल्पना की रुचि के थे। मानो वे सभी चित्र उस सुन्दरी के विचारों को व्यक्त करते थे।

लेकिन अवधकुमार का जीवन और था। उसने विश्व का एक बड़ा भाग देखा था। संसार में उसे बहुत कुछ पसन्द आया था। जगत के उस सौन्दर्य में अवधकुमार डूबा था और तैरा था। मानो वही उसका जीवन था। पुरुष के पास पैसा हो और वह उससे जगत का वैभव न प्राप्त कर सकता हो, यह भी उस युवक को पसन्द नहीं था। मानो उसकी दृष्टि में यही इन्सान का परम लक्ष्य था। पाप और पुण्य की व्यवस्था से ऊपर उठ कर ही, अवधकुमार अपने और जगत के तईं सोचता था। वह अपने को बुद्धिवादी मानता था।

किन्तु उस रात के प्रथम चरण में ही, जब अवधकुमार कल्पना के पास पहुँचा, तो सचमुच, उस दिन, कल्पना का रूप उसे विशेष आकर्षक और अनुपम लगा। कल्पना ने अपने शरीर पर जिस कपड़े को धारण किये हुए था, उसका रंग कल्पना के रंग से खूब मेल खाता था। विद्युत के प्रकाश में, सचमुच ही, कल्पना जैसे देवलोक की अप्सरा बन आई थी।

तभी अवधबाबू ने अपनी आँखों में घना-सा मादक लिया और उसे कल्पना की उन सुन्दर आँखों में उँडेल कर कहा—'मौसम अच्छा है, रानी! आसमान में चाँद निकल आया है। हँस उठा है।'

कल्पना बोली—'वह रोज निकलता है। यही उसका काम है।"

अवधबाबू को जैसे अवसर मिला—'पर हम और तुम तो देर तक ऐसे नहीं रहेंगे। जवानी आज है, कल नहीं। बूढ़े हो जायेंगे। मर जायेंगे!'

सुना, तो कल्पना तुनक गयी—'मैं इसे नहीं मानती।' वह बोली—'एक बार शायद तुम्हीं ने कहा था कि यह यौवन—इसका उन्माद—स्थायी नहीं है। यह तो आँधी के समान है। तेजी से आता और जाता है। पर बुढ़ापा—हां—'

जल्दी से जैसे आतुर बनकर, अवधकुमार ने कल्पना की बात को पकड़ लिया—'वह बुढ़ापा ही हमारी जिन्दगी की मौत है;—वही हमारा अन्त है, कल्पना देवी !'

कल्पना बोली—'नहीं, नहीं, बुढ़ापा सात्विक है। अमर है। वह तो इस जिन्दगी में ऐसा मेहमान है कि आकर नहीं जाता। वह अपने साथ आँधी नहीं लाता। किसी दम्भ का भी प्रदर्शन नहीं करता।'

काश, उस समय कल्पना जान पाती कि अवधकुमार शराब पीकर आया था। वह निश्चय ही कल्पना की बातों में जरा भी रस नहीं ले रहा था। वह बार-बार कल्पना की बात को टाल रहा था। पर फिर भी एक के बाद वह उसे दूसरी बात में अटकती पाता। वह चाहता था कि कल्पना सब ओर से छूट कर, केवल मुसकराये और अपनी सुन्दर आँखों से हँसे। वह समर्पण के लिये अवध को निमन्त्रित करे। इसलिये अवध-कुमार ने अलसाये भाव से जम्हाई ली और अपने मन की उदासी कल्पना पर डाल दी।

तभी कल्पना हँसी—'कुछ अधिक पी आये हो, क्या !'

'नहीं !' अवध ने एकाएक कहा—'तुम्हारी रोज की शिकायत आज मुझे खूब याद रही।'

'तो जान सकती हूँ आज कहाँ पी, राय साहब ने !'

अवध ने कहा—'आज किसी के घर नहीं, होटल में पी। एक बिगड़े हुए ताल्लुकदार के साथ।' वह बोला—'उन महाशय को यह शिकायत थी कि मैं उन्हें नहीं मिलता। इसलिये आज कचहरी में ही पकड़ लिया। एक दिन था कि मेरी और उनकी इंग्लैण्ड के एक होटल में खूब छनती थी······वह होटल की छोकरी, मिस डैना······सच, खूब ही थी, वह ! हँसती और फुदकती हुई सफेद चिड़िया !'

बात सुनी, तो कल्पना जोर से हँस पड़ी। वह ऐसे हँसी कि अवध-बाबू के मन में उठ आई बात भी रह गयी। बल्कि उसके सामने यह बात आ गयी कि आखिर, यह कल्पना इतने जोर से कैसे हँसी। किन्तु

उसे अपनी शंका को देर तक नहीं रखना पड़ा। कल्पना स्वयं ही बोली—'तो यह बात है तुम्हारी! उस जागीरदार की!' उसने कहा—'बाप की कमाई खूब उड़ाई होगी, तुम दोनों ने! उस पैसे से शराब और औरत खूब ही खरीदी गयी होंगी! शराब बहायी गयी होगी और औरत······ क्यों ठीक है न, मेरी बात!'

अवधबाबू ने कहा—'कल्पना, पैसे का यही मूल्य है। औरत को भी पैसा चाहिये। जब वकील सत्य को झूठ और झूठ को सत्य करके पैसा प्राप्त करता है, तो औरत भी अपना शरीर बेच कर पैसा चाहती है।' यह कहते हुए अवध चौंक गया। वह तुरन्त ही अपने स्वर पर जोर देकर बोला—'पर इसमें आपत्ति क्या! इसमें इंसान की क्रूरता क्या!' उसने कहा—'कल्पना, इस संसार में पैसे के लिए सदा यही चला है! औरत बिकी है, आदमी बिका है!'

लेकिन कल्पना गम्भीर थी। वह जैसे पत्थर के समान ठोस थी। तुरन्त बोली—'मैं ऐसा नहीं मानती। देख भी नहीं पाती। औरत अपना शरीर बेचती है, तो यह भी आदमी की शरारत है······क्रूर अट्टहास है, इस जगत के आदमी का!'

अवध ने अपने स्वर पर जोर दिया—'उस औरत को भी पेट भरने के लिये रोटी चाहिये, कल्पना देवी!'

किन्तु कल्पना चीख पड़ी—'आदमी ने उस औरत की रोटी छीन ली है। औरत मोहताज बना दी है। आदमी ने अपनी उँगली पर नचायी है, यह औरत!'

उसी समय अवध ने देखा कि कल्पना की आँखों में रोष उतर आया है। जैसे सचमुच ही उसके मन में आग है। वह भड़क उठी है। उसके पतंगे आँखों में प्रगट हो गये हैं। यह देख अवध बाबू को कुछ अच्छा नहीं लगा। उसने फिर नया सिगरेट सुलगाया। उसी के धुएँ में उसने देखा कि कल्पना ने बात कहने के बाद ही, अपना मुँह कमरे के बाहर काले आसमान की ओर उठा दिया है। उसके माथे में बल हैं, आँखें चढ़ी हैं।

सचमुच ही वह आतुर और उद्विग्न है।

और अवध बाबू का नशा उतर रहा था। कम हो गया था। इसलिये उसने घण्टी बजायी और नौकर आ खड़ा हुआ। उससे कहा गया—'एक पैग ह्विस्की और सोडा।'

सुना, तो कल्पना ने अपना मुँह फिराया—'क्यों, नशा कम रहा क्या!'

अवध बाबू ने खिन्न स्वर से कहा—'आज हम दोनों का वार्तालाप ही गलत रहा। नशा उतर गया। सिर भारी हो गया।'

कल्पना हँसी—'एक दिन मैंने किसी किताब में पढ़ा था कि ऐसा ही हमारा यह जीवन है। यौवन का नशा उतरता है तो फिर बुढ़ापा आता है—नीरस, सपाट! सभी कुछ तो बोझीला हो जाता है!'

अवध बाबू ने कुछ अप्रतिभ बनकर कहा—'तुम्हें यही सब सूझता है! जाने क्या आनन्द आता है!'

कल्पना मुसकरा दी—'तुम इस आनन्द का अनुमान नहीं लगा सकते। अभी समझ भी नहीं सकते।'

उसी समय नौकर गिलास में ह्विस्की और सोडा ले आया। अवध बाबू ने उसका घूँट भरा और तब सिगरेट का कश लेकर एक ऐसी अलभ्य दृष्टि से कल्पना को घूरा कि वह बरबस हँस पड़ी—'लो, फिर नशा आ गया। आँखें चढ़ गयीं। इस बेचारी कल्पना को घूरने लगीं।'

अवध बाबू ने कहा—'तुम घूरने की वस्तु हो, कल्पना रानी! सच, प्यार करने की चीज हो!'

कल्पना ने कहा—'तुमने अंग्रेजी पुस्तकें पढ़ी हैं, रोमांटिक उपन्यास और नाटक। कुछ हिन्दी की भी पढ़ा करो। एक बार पढ़ तो जाओ, उस भर्तृहरि शतक को। कसम से कहती हूँ इस कल्पना को न भूल जाओ, तो बात क्या!'

अवध बाबू ने आधा गिलास पी लिया। कल्पना की बात सुनी तो कहा—'मैं ऐसी किताबों को नहीं पढ़ सकता, मेरी रानी!'

कल्पना ने कहा—'और मैं मर जाऊँ, तो !'

'तो मैं भी तुम्हारे साथ जाऊँगा। इस धरती को छोड़ दूँगा।'

कल्पना हँसी—'ऐसे मजनूँ इस धरती पर बहुत हैं। सुना नहीं, आदमी अपना उद्देश्य पूरा करने के लिये औरत से ऐसी ही बातें करता है। और फिर—हाँ, दूध में पड़ी मक्खी की तरह, यह आदमी औरत को अपने दिल से निकाल फेंकता है!'

अवध कुमार ने तेजी से अपने स्वर पर जोर दिया—'न, न, मुझे ऐसे आदमियों में शामिल न कर लेना!'

कल्पना और हँसी—'सभ का यही कहना है!'

अवध कुमार ने गिलास का घूँट भरा और खाली कर स्वयं भी हँसा—'तुम बड़ी चालाक हो, कल्पना!'

कल्पना ने कहा—'आदमी ही औरत को चालाक बनाता है। बहुत सी सीख देता है।' वह बोली, 'और मैं शराबी की बीबी, वकील साहब की पत्नी, भला यह मेरी नासमझी न होगी कि भली और समझदार न बनूँ!'

अवध ने कहा—'मैं तुमसे डरता हूँ, कल्पना!'

कल्पना ने कहा—'तभी तो तुम रोज शराब पीते हो। नौकरों को मारते हो। पैसा है न इस घर में, पुरखों की कमाई है तो उसे यों गन्दे पतनाले में बहाये दे रहे हो!'

अवध ने जैसे लाचार बनकर कहा—'यह तो मेरी विवशता की बात है, कल्पना! अब आदत पड़ गयी है। शराब छूटते भी नहीं छूट सकती है!'

उसी समय नीचे से नौकरानी आई और बोली—'तो सरकार, खाना ?'

अवध ने कहा—'हाँ, खाना लाओ।' वह खड़ा हो गया। उसने आगे बढ़ कर कल्पना का हाथ पकड़ लिया। उस अवस्था में ही, उसने अपनी नशीली आँखों को कल्पना की आँखों में डाल दिया। वह कल्पना को साथ लिये खाना खाने के कमरे की ओर बढ़ गया।

२

• • •

दूर क्षितिज पर सावन के मेघ घुमड़ आये थे। किसान आशा और जिज्ञासा भरी दृष्टि से ऊपर मुँह उठाये हुए थे। उनके खेत सूखे पड़े थे। वे आसमान से पानी माँग रहे थे। ऐसे ही समय, खेत के एक ढोले पर एक बारह वर्ष की लड़की आकर खड़ी हुई। वह अपनी आँखों का लक्ष्य बना कर हँसी और होठों से मुसकरायी। खेत में एक लड़का घास काट रहा था। वह लड़की से आयु में लगभग दो वर्ष बड़ा था। उसी की ओर देख, लड़की ने पुकारा—'सुधीर···'

आवाज सुनी, तो सुधीर ने मुँह फेरा—'कल्पना···'

कल्पना खेत में प्रवेश कर गयी। सुधीर के पास जाकर बोली—'तो तुम घास भी काट लेते हो, सुधीर! बताओ, कब आये, शहर से?'

सुधीर ने बताया—'मैं कल संध्या समय आया।'

कल्पना ने उसी समय आसमान की ओर मुँह उठाया और उन ममतामयी आँखों को सिर के ऊपर आये काले-काले बादलों पर रखकर कहा—'तो तुम आकर मिले भी नहीं! खबर भी नहीं दी!' और उसने झटके के साथ सुधीर की आँखों पर अपनी आँखें डाल कर कहा—'बड़े निर्मोही हो, तुम! सच, पत्थर!'

सुधीर के हाथ में खुरपा था, वह उसने पटक दिया। उसने कल्पना के दोनों कंधे पकड़ लिये और नितान्त आतुर बने हुए स्वर में बोला—

'नहीं, नहीं, ऐसा न कह, कल्पना ! रात ही तो आया। आज जरूर तेरी ओर जाता।'

कल्पना ने कुछ कहना चाहा कि तभी सिर के ऊपर खड़ा आसमान और अधिक काला हो गया। बादल गरजने लगे।

आतुर बनकर सुधीर बोला—'मैं घास बाँध लूँ। आज पानी बरसेगा। घास न ले गया तो गाय को चारा भी न मिलेगा।'

कल्पना बोली—'सुधीर, तू पढ़ता भी है और घर का काम भी करता है। घास खोदता है!'

घास इकट्ठी करते हुए सुधीर ने बात सुन ली, वह मुसकरा दिया। वह कहना चाहता था कि दुनिया के सभी गरीबों को ऐसे ही चलना पड़ता है, परन्तु उसने इतना कल्पना से नहीं कहा। आसमान से बूँदें पड़ने लगीं और उसने जल्दी से घास को इकट्ठा कर लिया। उस काम में कल्पना ने भी योग दिया। जब वह चादर में घास बाँध चुका और उसे सिर पर उठा कर चला, तो तभी, रास्ते में चलते हुए उसने कल्पना को सुनाया, एक दिन स्कूल के मास्टर जी कहते थे कि धनपति बनना इन्सान के लिये अच्छा भी है और बुरा भी। वह बोला—'धनपति आदमी नौकरों पर आश्रित रहता है। स्वयं कुछ नहीं करता। वह शरीर की स्वाभाविक मांग को मार देता है। पर निर्धन कहाँ से नौकर रखे! वह स्वयं शरीर से मेहनत करता है। बलिष्ठ रहता है।' सुधीर ने मुसकराया--'तेरे घर तो नौकर हैं न, मालदार बाप की बेटी है तू! इसी से ऐसा कहती है!'

किन्तु कल्पना के मन में उस समय दूसरी बात उठ रही थी। जैसे आसमान में छाये हुये अन्धकार की तरह, उसके मन पर भी अन्धेरे का कोहरा छा गया था। इसलिये वह बरबस उदास बन गयी। बूँदें तेज पड़ने लगीं, तो वह भी अपने पैर जल्दी-जल्दी उठाने लगी। चाहती थी जल्दी घर पहुँच जाये। किन्तु उस दिन जैसे उन बादलों को बरसना था। जल्दी ही वे बूँदें बड़ी वर्षा में परिणित हो गयीं। सुधीर और कल्पना को वहीं जंगल में एक खाली पड़े झोंपड़े में रुक जाना पड़ा। देखते-देखते

हवा चली और मूसलाधार वर्षा होने लगी। उसी समय प्रसन्न बनकर, सुधीर ने कल्पना की ओर देखा और कहा—'कैसा सुहावना लग रहा है !'

कल्पना ने कहा—'आज गर्मी भी बहुत थी।'

सुधीर बोला—'किसान दुःखी थे। खेत सूख रहे थे। भगवान ने पुकार सुन ली।'

कल्पना ने सांस भरी और अपनी वे सुन्दर आँखें सुधीर की ओर उठा दीं। वह जैसे कुछ कहना चाहती थी, पर कह नहीं पाई। झोंपड़ी कई जगह से चू रही थी, कल्पना भीगने लगी। यही देख कर सुधीर ने तुरन्त कहा, 'मेरे पास आ जा, कल्पना ! भीग मत।'

कल्पना उठकर सुधीर के पास पहुँच गयी। आँधी और वर्षा के कारण उसके बदन के रोंगटे खड़े हो गये, वह काँपने लगी। यह देख, सुधीर बोला—'अरे, काँपती है, तू ! सच, भीग गयी है। आ, और सट कर बैठ मेरे पास !

कल्पना और सट गयी। उसने सुधीर के घोटों पर अपना मुँह रख लिया और तभी कहा—'रे, सुधीर ! देख, तू मुझे छोड़ न देना—कभी ! हाँ, मैं कहे देती हूँ !'

किन्तु सुधीर अब बच्चा नहीं था। उसने बात सुनी, तो एकाएक अपना मत नहीं दे पाया। वह पड़ती हुई वर्षा को देखने लगा।

कल्पना ने उसे फिर टंकोरा—'क्यों, सुनी न मेरी बात ! आज की तरह जीवन भर मुझे अपनी गोद में छिपाये रखना। आज इस सावन की पड़ती हुई वर्षा की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मै तेरे बगैर—'

चंचल बन कर, तुरन्त ही, सुधीर ने कहा—'कल्पना, तू पगली बन गई है ! कहीं ऐसी बात होती है ! गरीब और अमीर की जोड़ी कभी मिलती है ! देखती तो है कि तू है गाँव के जमींदार की बेटी, और मैं······अरी, पूरा आकाश-पाताल का अन्तर है ! सच, आसमान और धरती सरीखा अन्तर !

लेकिन कल्पना की धारणा कुछ और थी। वह बोली—'मैं ऐसा नहीं

मानती, सुधीर ! देख, आसमान धरती पर उतर आया है। यों बरस पड़ा है। धरती की प्यास बुझा रहा है।'

सुधीर हँसा—'अब तू समझदार हो गयी है, कल्पना !'

कल्पना ने अपना मुँह और अधिक सुधीर की गोद में डाल दिया। उस अवस्था में ही उसने कहा—'सुधीर, मैं भूल नहीं सकती कि मैं और तू किस तरह बचपन में खेले। कितने घर बनाये, कितने बिगाड़े ! मैं गुड़िया और तू गुड्डा······अरे, इतनी जल्दी भूल जायेगा, तू अपनी गुड़िया को ! ऐसा निर्मोही बन जायेगा तू !'

सुधीर ने अपने दोनों हाथों से कल्पना के गुलाबी गाल दबाये और नितान्त अल्हड़ बन कर बोला—'न, मेरी गुड़िया ! मैं तुझे कैसे भूल सकूँगा !'

उसी समय वर्षा कम हो गई। वे दोनों उठ खड़े हुए। क्षण भर में चारों ओर पानी। माया भगवान की, धरती का रंग-रूप बदल गया। खेतों के पौधे, जंगल के पेड़ मानों सभी प्रसन्नता से भर कर झूम उठे। जब दोनों ने गांव में प्रवेश किया, तो गायें रंभा रही थीं। उनके बच्चे बोल रहे थे। गलियारे में भरे पानी में बालक कूद रहे थे। अपने घर की ओर जाते हुए कल्पना ने कहा—'गाँव से जाये, तो मिल कर जाना।'

सुधीर ने कहा—'हां, हां, मैं आऊँगा।' वह अपने घर पहुँच गया। देखकर मां ने कहा—'अरे, सुधीर ! बेटा ! भीग तो नहीं गया, तू !'

सुधीर ने कहा—'नहीं, मां !'

मां बोली—'अरे देख, तू जब घास लेने गया, तो कल्पना आई थी। तुझे पूछती थी। सो, मैंने उसे बता दिया कि घास लेने गया है।'

तब सुधीर के मन में आया कि मां से कह दे कि कल्पना उसके पास पहुँच गयी थी। किन्तु यह उसने नहीं कहा। कहा नहीं गया।

मां ने कहा—'बेटा, कल्पना भी बड़ी भली लड़की है। बड़े बाप की बेटी है। सुनती हूँ उसकी सगाई भी किसी बड़े घर में होने वाली है।'

तभी मां ने सुधीर को दूध दिया और एक लड्डू।

उस अवस्था में ही, सुधीर ने प्रश्न किया—'मां, कल्पना तो अभी छोटी है। क्या पढ़ने के लिए शहर नहीं जाने वाली है ?'

मां बोलीं—'बेटा, बड़े लोगों के यहाँ ऐसा ही दस्तूर है। लड़का रोक देंगे। विवाह ठहर कर करेंगे। और कल्पना को शहर जाकर पढ़ने की क्या जरूरत है। उसे क्या कहीं नौकरी करनी है !'

सुधीर ने दूध पी लिया। लड्डू खा लिया। वह वहां से उठ कर बाहर चला गया। वर्षा बन्द हो गयी थी। बड़ा सुन्दर मौसम बन गया था। सुधीर नदी की ओर चल दिया। निःसन्देह, उस समय उसका मन व्याकुल था। जैसे उसके कोमल मन में कोई कांटा चुभ गया था। यद्यपि, सुधीर ने इतना सबक बाहर जाकर ही प्राप्त किया कि इस धरती पर कुछ अमीर हैं कि जो विशाल संख्या में बसे हुए निर्धनों पर शासन करते हैं। धनिक और निर्धन की परिभाषा उसे नगर में जाकर ही सुनने को मिली। इतना ज्ञान उसे वहीं प्राप्त हुआ। परन्तु इस ज्ञान का विशिष्ट पाठ सुधीर को अपने बचपन में ही प्राप्त हो गया। गाँव की पाठशाला में ही उसने इतना समझ लिया कि धनिक कौन है और निर्धन कौन ! क्योंकि सुधीर के घर की आर्थिक स्थिति कभी भी अच्छी नहीं रही। उसका पिता एक छोटा-सा किसान था। वह किसान हर तरह से पराश्रित था। जब भी आसमान से पानी न पड़ता, तो उसका खेत न फूलता न फलता। जब सुधीर आठ वर्ष का था और गांव की पाठशाला में पढ़ने जाने लगा, तो तभी, लगातार दो वर्ष तक पानी न पड़ने के कारण उसके घर में इतना अनाज नहीं आ सका कि पेट को रोटियाँ भी मिल जायें। निदान, बालक सुधीर भी भूखा रहा। कभी एक समय मिलता, कभी दो।

लेकिन अवसर की बात कि उसी समय जमींदार की बेटी कल्पना भी पाठशाला में दाखिल की गयी। उसके लिए घर से जो कलेवा आता, वह सुगन्धित होता, तर होता। बालक सुधीर उसे देखता। वह मौन रहता।

एक दिन की बात कि सुधीर सचमुच ही भूखा था। उसके घर में उस दिन अन्न नहीं था। जब कल्पना का कलेवा आया, तो सुधीर वहां

से उठ गया। पाठशाला के दरवाजे पर जो नीम का पेड़ खड़ा था, वह वहीं जाकर बैठ गया। बालक था ही, इसलिये भूख की पीड़ा को वह सहन नहीं कर सका। घोटों पर सिर रखकर सुधीर बरबस रो पड़ा। किन्तु उसी समय वह चौंक गया। उसने देखा कि कल्पना कलेवा का डिब्बा लिये वहां आई है और सुधीर को टंकोर कर कह रही है—'रे, सुधीर! तू उठ क्यों आया, मेरे पास से! और एं, तू रो क्यों रहा है. रे! आ, मेरे साथ खा!'

सुधीर ने आँखें पोंछ लीं और कल्पना की ओर देखा। वह कह देना चाहता था कि मैं भूखा हूँ, परन्तु इतना उसके मुँह से नहीं निकल सका। वह खड़ा हो गया और बोला—'नहीं री, मुझे भूख नहीं! मैं नहीं खाऊंगा!'

बात सुनी, तो कल्पना ने विस्फारित बनकर सुधीर की ओर देखा। मानो उस बालिका ने उस उद्दण्ड सुधीर को समझना चाहा। वह उसके ज्ञान से परे की वस्तु था। कठोर था। जटिल हो गया था।

किन्तु जब सुधीर ने अपनी बात कही और कल्पना को अपनी ओर देखते पाया, तो तभी उसने देखा कि कल्पना की आँखों में कुछ है। ममता है। प्यार है। उन्हीं के प्रतिनिधित्व का भार आँसुओं ने ले लिया है। वे उसकी सुन्दर आँखों में आ गये हैं। झिलमिला रहे हैं। निदान, सुधीर लौट पड़ा और चंचल बनकर बोला—'यह अच्छा नहीं है, कल्पना! तू खा! मेरा तेरा साथ क्या?'

कल्पना ने तुनक कर कहा—'मैं भी नहीं खाऊँगी! सुनता है तू, आज घर की नौकरानी कह रही थी कि तुम्हारे यहाँ भोजनों का टोटा है। खेत ने कुछ नहीं दिया। नौकरानी बताती थी कि तू स्कूल में भूखा आता है, भूखा जाता है। कभी एक जून······कभी दो···आ न, मैं कहती हूं मेरे साथ खा!' और तभी उसने कपड़े में लिपटी चार पूरियां दिखा कर कहा—'ये मैं घर से ले आई थी, तेरे लिये! यह कलेवा और चार पूरियाँ तेरे लिये कम नहीं होंगी, सुधीर!'

बालक सुधीर के दिमाग पर जैसे बरबस ही, कोई बड़ा बोझ पड़ गया।

वह मौन बन गया। वह नीम के नीचे बैठ गया। कल्पना के साथ खाने लगा। उसी अवस्था में उसने कल्पना को सुनाया कि वह रोज भूखा रहता है। भगवान का कोप है, उस पर !'

कल्पना ने कहा—'हम दोनों एक पाठशाला में पढ़ते हैं सुधीर! साथी हैं। दूसरे का दुःख अपना समझना क्या गुनाह है!'

सुधीर ने कहा—'यह सब निभने वाली बात नहीं है, कल्पना !'

और तभी नदी के तट पर पहुँच, जब सुधीर एक पत्थर के टुकड़े पर जाकर बैठा, तो उसने देखा कि उसका और कल्पना का सामीप्य अब कई वर्षों को लाँघ गया है। इतने बीच में क्या-कुछ नहीं किया है, कल्पना ने उसके लिये ! उसने गुड्डे-गुड़ियों के खेल खेले हैं, मिट्टी के घरौंदे बनाये हैं, उसके साथ। आज की तरह कल्पना ने सदा कहा है कि हम दोनों साथ-साथ जीयेंगे, साथ-साथ मरेंगे''''''पगली ! सुधीर हाथ की हथेली पर ठोढी रखे नदी की ओर देख रहा था। अभी नदी में बरसात का पानी नहीं आया था। इसलिये गहराव नहीं था। फिर भी आर-पार जाने के लिये नाव की सहायता लेनी पड़ती थी। दूर नाव पर बैठा हुआ मांझी चिलम में दम लगा रहा था। यद्यपि पानी काफी बरस चुका था, फिर भी आसमान में बादल थे। दूर क्षितिज पर बार-बार बिजली कौंध जाती थी। हवा ठण्डी थी। नदी का पानी लहरा रहा था।

तभी सुधीर ने साँस भरी और अपना मुँह ऊपर उठाया। उसने दूर तक दृष्टि डाली, चारों ओर हरियाली। मानो प्रकृति हँस रही थी। वह प्रसन्नता से खिलखिला रही थी। किन्तु सुधीर का ध्यान जिस बात पर केन्द्रित था वह उसी को लक्ष्य करके बोला—पगली हो गयी है, कल्पना ! अभी सोच नहीं पाती। दूर तक देख नहीं सकती। वह नहीं समझ पाती उसके मन की और जीवन की स्वतन्त्रता गिरवी रखी है। उसका स्थान कहीं और है, इस सुधीर के पास नहीं !

सुधीर खड़ा हो गया। वह अभी चलने लगा था कि उस पत्थर के नीचे से सनसनाता हुआ काला साँप निकला और भाग चला। सहमा

और डरा हुआ सुधीर देर तक उस ओर देखता रहा। उसके मन में बात आई कि साँप इसी पत्थर के नीचे बैठा था! वह उसे काट सकता था! जब साँप दूर निकल गया तो तब, अपनी रुकी हुई सांस को छोड़ सुधीर ने आसमान की ओर देखा। मानो उसे लगा कि उसने जीवन में पहली बार एक पाठ और पढ़ लिया—जीवन कितना असार है, मानो यह उसने क्षण भर में समझ लिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि वह कल्पना की बात भूल गया। वह तेजी के साथ घर की ओर लौट पड़ा।

३



कल्पना का पिता एक दूरदर्शी व्यक्ति था। देश में जमींदारी प्रथा की समाप्ति को देख, उसने दूसरे कार्यों में अपना पैसा लगाना आरम्भ कर दिया। गाँव में कल्पना के पिता का एक विशाल फार्म था। उसी इलाके में जो शुगर की मिल स्थापित हुई तो उसमें भी विशिष्ट भाग उस व्यक्ति का था। इस प्रकार गाँव में उसी का सम्मान था। जिसका नाम विक्रम था।

उस दिन जब वर्षा के कारण सुधीर और विक्रम की पुत्री कल्पना कुछ देर के लिये जंगल की एक रिक्त झोंपड़ी में विश्राम ले सके, तो निश्चय ही, उन दोनों ने यह समझा होगा कि उन्हें किसी ने नहीं देखा। परन्तु उसी गांव का एक किसान वर्षा के समय दूर अपनी झोंपड़ी में बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। उसने जमींदार विक्रम की लड़की को उस समय देख लिया था कि जब वह गांव से जंगल की ओर जाती हुई सुधीर के पास पहुँची थी। निदान उसने यह भी देखा कि वर्षा से बचने के लिये वे दोनों उस सुनसान झोंपड़ी में बैठे। उसी दिन जब सुधीर नदी-तट से लौटा तो उसी किसान ने जो गांव के नाते से सुधीर का ताऊ लगता था उसको पास बुलाया और कहा—'क्यों रे, तुझमें अब भी बचपन है! वक्रम की लड़की के साथ जंगल में घूमता है—मूर्ख! वह सुने, तो जानता है इसका परिणाम क्या होगा? कहाँ राजा भोज और कहाँ गँगवा

तेली !···नादान, तू अपनी औकात से ऊपर क्यों देखता है ! जा, नीचे निगाह करके चल ! नहीं, ठोकर खा जायेगा !'

हरपाल नाम का वह किसान, जो आयु में प्रौढ़ था, एकाएक जिस प्रकार की बात सुधीर से कह गया, वह निःसन्देह एक अप्रत्याशित घटना थी। सुधीर ऐसी कल्पना नहीं कर सकता था। उसने सांस रोक कर जो कुछ सुना तो उस पर अपना मत नहीं दिया। क्योंकि हरपाल एक बुजुर्ग आदमी था। वह सीख भरी बात कह रहा था, जिसमें मीठी झिड़की थी और प्रतारणा। किन्तु कदाचित सुधीर को इस बात का पता नहीं था कि हरपाल और उसके पिता की जाती दुश्मनी भी थी। वह देर से चली आती थी। वह उनके मन में छुपी थी। फलस्वरूप, हरपाल यदि जमींदार विक्रम के पास सीधी शिकायत नहीं ले गया तो वह सुधीर से कह कर ही अपनी बात को न रोक सका। उसी दिन जब वह गाँव की चौपाल में बैठ कर हुक्का पी रहा था, तो अपने मन में छुपे हुए उस बड़े रहस्य को वह वहाँ उपस्थित लोगों से कहने में नहीं हिचकिचाया। अवसर पाते ही, उसने बात कहने की भूमिका बनायी और बोला—'भैया, अब समझा मैं कि घोर कलियुग आ गया ! देखो न शिवदास के लड़के सुधीर को, कुछ दिन से शहर जाकर चार अक्षर क्या पढ़ गया, कम्बख्त पूरा मजनूँ ही बन गया ! आज देखा मैंने, वह और विक्रम की लड़की······भरी बरसात में छीतर धीवर की झोंपड़ी में बैठे थे······

बात सुनी, तो एक बोला—'क्या जंगल में ! गाँव के बाहर !'

हरपाल ने अपनी बात का प्रभाव जमता देखकर कहा—'हां, भाई ! देखो न, क्या जरा सी उम्र और क्या······'

एक वृद्ध ने हुक्के में दम मार कर हुक्का हरपाल की ओर किया—'अरे, आज की दुनिया में यही सब-कुछ होता है, भाई ! धर्म-कर्म मिट गया !'

हरपाल ने कहा—'विक्रम सुने, तो शिवदास का जीना दूभर कर देगा !'

दूसरा बोला—'अरे, नहीं, नहीं! अभी बच्चे हैं। शिवदास का लड़का भला है। वह भी बच्चा है।'

हरपाल बोला—'जी, हाँ! तुम भी तो बच्चे हो न! देखते नहीं, लौंडे के रेखें फूट आई हैं!'

हरखू नाम के उस व्यक्ति ने कहा—'तुम्हारी उसकी पुरानी दुश्मनी है!'

सुना, तो हरपाल जैसे आकाश से पृथ्वी पर गिर पड़ा। वह पीड़ा से कराह उठा। तुरन्त बोला—'दुश्मनी की बात छोड़ो। ऐसा करना होता, तो विक्रम के पास जाता। पर मुझे क्या! बात मुँह में आई तो तुमसे कह दी। भला शिवदास के लड़के को ऐसा करना चाहिये था! मैं कहता हूँ अब हमारे गांव का ढँग बिगड़ गया है!'

हरखू ने हँसकर कहा—'अरे, अब कलियुग आ गया है!'

तदुपरान्त बात दूसरी चल पड़ी। किन्तु हरपाल का छोड़ा हुआ तीर खाली नहीं गया। बात चौपाल में चली, तो वहीं समाप्त नहीं हुई। वह धीरे-धीरे एक से दूसरे के पास पहुंचती गयी। फूँस के ढेर में छोटी-सी चिंगारी अपना काम करती गयी। एक दिन आया कि वह बात विक्रम के कानों में पहुँच गयी। किन्तु जिस समय उसने यह बात सुनी, तो कथा का नायक देर से गाँव में नहीं आया था। विक्रम को मालूम हुआ कि शिवदास का पुत्र एक वर्ष हुआ कि गाँव से जाकर नहीं लौटा। वह शहर में अपने मामा के पास पढ़ता था। उसका मामा सरकार के एक दफ्तर में नौकर था। उसी बीच में उसकी बदली दूर, दूसरे प्रान्त में हो गयी, तो सुधीर भी मामा के साथ चला गया। इसलिये विक्रम ने बात सुनी, तो अपने पेट में रख ली। उसने शिवदास को बुलाकर भी वह बात नहीं कही।

किन्तु जब अपनी दो दिन की छुट्टी में सुधीर घर आया, हरपाल ने उससे जो-कुछ कहा, तो वह उसके मन में कांटे के समान चुभा ही, उसे दूसरे दिन गांव के एक अन्य आदमी ने भी अपने पास बैठा कर समझाया।

क्योंकि हरपालू जब चौपाल में बैठ कर अपनी बात कह रहा था, तो वह आदमी वहां उपस्थित था। उसी ने सुधीर को बताया कि हरपाल बड़ा लम्पटी है। तेरे पिता का शत्रु है! यह विक्रम से शिकायत करके तेरे पिता को अपमानित करा सकता है। और जानता तो है तू कि गरीब और अमीर का कभी भी मेल नहीं खाता। तालाब का मगरमच्छ सदा छोटी मछलियों का भोजन करता है।

एक दिन और एक रात में घटित हुई बातों को सुन, सुधीर का मन सचमुच ही छटपटा गया। जो कुछ उसके मन में नहीं था, वह भी अनायास आ गया। जिस कल्पना के प्रति उसके मन में कोई भी ऐसा भाव नहीं पैदा हुआ कि जिससे गांव की परम्परा को ठेस पहुँचे, तो उसने सहज ही समझा कि हां, वह निर्धन है, दुर्बल है, उसका कल्पना के पास जाना कभी भी नहीं शोभता। किन्तु अवस्था यह थी कि वह स्वयं कल्पना से आभारित था। कल्पना ने स्वयं उसे निमन्त्रित किया था। प्रेरणा दी। उसी ने तो बरबस अधीर बनकर कहा कि सुधीर तू है, तो मैं हूं, नहीं तो मिट्टी का ढेला हूँ मैं। और अब उसी कल्पना के लिये उसके पिता का अपमान होने वाला है। उसका पिता निर्धन है तो क्या, सम्मान का भाव वह भी रखता है।

निदान, इस वार्ता का फल यह हुआ कि सुधीर जब गाँव से शहर गया, तो वह जल्दी ही गाँव आने के लिये उत्सुक नहीं हुआ। उसके मन में जो टीस एक बार परिव्याप्त हुई, तो वह जल्दी ही नहीं मिटी। मानो वह उस जरा सी चोट से इतना घायल हो गया कि उसका जख्म जल्दी नहीं भरा। भाग्य की बात कि जब वह अपने गांव से दूर पहुँचा तो परिस्थितियों के उस झंझावात में पड़ा हुआ, वह जिन्दगी के एक ऐसे किनारे पर जा लगा कि जहां उसे एक नया और अनुपम जीवन दिखायी दिया। उसमें नये विचार और संस्कारों का उदय आरम्भ हुआ। गाँव का संस्कार शनैः शनैः मिट गया। वह कल्पना को भी भूल गया।

लेकिन स्वयं शिवदास की मनोदशा उन दिनों अच्छी नहीं थी। उसे

पता था कि सुधीर गाँव क्यों नहीं आ रहा है । और वह बूढ़ा हो रहा था। थक चला था । उसकी मानसिक और शारीरिक स्थिति देर से अच्छी नहीं थी। वह जीवन भर संघर्ष करते हुए शीघ्र ही जीर्ण बन गया। निश्चय ही, उस गाँव की जनता में शिवदास का कोई अस्तित्व नहीं था। जैसे भेड़ों के कटहरे में एक वह भी अन्द था। उसकी पत्नी रामदासी भी थक चली थी। परन्तु शिवदास और रामदासी दोनों ही इस बात के इच्छुक थे कि उनका पुत्र भला बने। वे अगर कुछ नहीं बन सके, तो सुधीर अवश्य इस दुनिया का अच्छा आदमी बने। इसके लिये उन दोनों ने कम त्याग नहीं किया। सुधीर यदि शुरू से खेती के काम में लगता तो निश्चय ही, शिवदास को आसानी होती। खेती की पैदावार बढ़ती। परन्तु उसने यह स्वीकार न करके कष्ट उठाना पसन्द किया। कदाचित यही कारण था कि उसके पड़ौसी शिवदास की इतनी बड़ी आकांक्षा को देख आश्चर्य करते। कुछ कहते कि यह बात शिवदास की नहीं, रामदासी की है। वह अपने पुत्र को बड़ा आदमी देखना चाहती है। रामदासी समझदार है। हीरा है। जाने किस जन्म के भाग्य से शिवदास के हाथ लग गयी है।

फलस्वरूप, इस प्रकार की चर्चा शिवदास और रामदासी के कानों में भी आती। वे दोनों हँसते और मुसकराते। शिवदास कहता, लोग सच कहते हैं, रामदासी! तुझसे ही तो इस घर का द्वार खुला है। किन्तु रामदासी तुरन्त कहती—'नहीं, नहीं, इस घर का और मेरा भाग्य तुमसे खुला है। तुम्हीं इस नाव के खेवा हो।'

तब शिवदास साँस भर कर कहता—'रामदासी! इस नाव का खेवनहार तो कोई और है, भगवान है। उसी ने तो मेरा और तुम्हारा निर्माण किया है।'

लेकिन रामदासी तो नारी थी। उसकी पति में आस्था थी। इसलिये उसने पति की बात सुनकर भी अपनी बात कही—'मेरे तो तुम्हीं परमात्मा हो, तुम्हीं सब-कुछ!'

एक दिन जब यह बात चली, तो उस समय दिन और रात के मध्य में सन्ध्या खड़ी थी। वह मुसकरा रही थी। दिये जल चुके थे। गायें जंगलों से चर कर आ गयी थीं। शिवदास की गाय बाहर खूँटे से बँधी एक-दो बार रंभा चुकी थी। वह अपने बच्चे को दूध पिलाने के लिये आतुर थी। लेकिन जब घर में, एकाएक ही, शिवदास और रामदासी की बातें चलीं, तो वे दोनों गाय का दूध काढ़ना भूल गये। यह सत्य था कि जब रामदासी दुलहन बनकर उस घर आई, तो गाँव की उन इनी-गिनी बहुओं में उसका प्रमुख स्थान था कि जो नख-शिख से सुन्दर कही जा सकती थीं। गाँव की गोरी के रूप में रामदासी एक दिन अलौकिक और अभूतपूर्व लगती थी। तभी लोगों ने कहा था कि गँवार के हाथों में हीरे का टुकड़ा आ गया! शिवदास भला इस योग्य कहां था! लेकिन जब निरन्तर ही जीवन के घात-प्रतिघात खाकर रामदासी छलनी हो गयी, तो उसका सौन्दर्य असमय ही विलीन हो गया। मुँह के अधिकांश दांत गिर गये। गाल पिचक गये। आंखें माथे में चली गयीं। सिर के बाल सफेद हो गये। यही अवस्था शिवदास की हुई। वह भाग्य का हेठा जरूर था, परन्तु सूरत-शक्ल से वह भी कदापि हीन नहीं था। शरीर से भी बलिष्ठ था। उसकी सबसे अच्छी बात यह थी कि पत्नी-भक्त था। शिवदास ने कभी भी रामदासी की बात को नहीं टाला। वह सदा उसकी बात को बड़ी मानता रहा। अपने पुत्र सुधीर के विषय में भी यही किया। वह लड़के को पढ़ाना चाहती थी, तो शिवदास ने इसे भी बरबस स्वीकार कर लिया।

लेकिन ज्यों-ज्यों सुधीर की मामा के पास से लौटने में देर होती जाती थी, त्यों-त्यों न केवल शिवदास और रामदासी के मन में व्याकुलता बढ़ रही थी, बल्कि उसके पड़ोसी भी अब यह प्रायः कहने लगे, ऐसे तो धोबी का कुत्ता न घर का रहेगा, न घाट का······समझे शिवदास! तुमने लड़का पढ़ने के लिये बाहर क्या भेजा, अपनी जिन्दगी के रास्ते में कांटे बिछा लिये! जानता तो है, शहर में रहकर सभी की बुद्धि मारी जाती है। पढ़कर बाबूगीरी आ जाती है। अब क्या तुम्हारा लड़का फावड़ा लेकर

खेत गोड़ेगा······न, कभी नहीं ! तुमने जन्म भर खून-पसीना एक किया तो आगे भी करना पड़ेगा ! कौआ चला हँस की चाल ! अरे, पागल ! तू गरीब किसान······गाँव का गँवार, भला क्यों इतनी बड़ी बात सोचता है कि तेरा लड़का पढ़-लिखकर डिप्टी-कलक्टर बनेगा। अरे, बड़ा ओहदा भी बड़े घर के लड़के को मिलता है, शिवदास ! वह तेरे लड़के को नहीं मिलेगा !

शिवदास इस प्रकार कटु आलोचना सुनता और मन मार कर रह जाता। उस अवस्था में वह अपने मुँह से कुछ न कह पाता। सच्चाई यह थी कि बेचारा शिवदास इस स्थिति में पहुँच गया था कि इधर देखे तो खाई और उधर देखे तो कुआं ! वह लड़के को पढ़ाने से भी नहीं रोक सकता था और न अपनी ओर से आगे पढ़ने के लिये ही कहने के लिये उद्यत था। क्योंकि वह जानता था कि रामदासी उसकी सभी बातें स्वीकार कर सकती थी, परन्तु यह नहीं। वह लड़के को पढ़ाना चाहती थी। उसने अपने भैया से केवल यही भीख मांगी थी कि वह अपने भांजे को पढ़ा दे। उसे शहर में रख कर आदमी बनने का मौका दे। वह अपने जीवन में इसी प्रकार बहिन की मदद करे।

किन्तु जब से कल्पना और सुधीर की चर्चा गाँव में चली, विक्रम तक के कानों में गयी, तो तब से शिवदास के साथ रामदासी के मन में भी यह बात बार-बार आई कि सच, लड़का पढ़ कर भी अच्छा नहीं बना ! सुधीर आदमी नहीं बन सका। लेकिन रामदासी के लिये यह भी कम लज्जा और क्षोभ की बात नहीं लगी कि जब से उसका सुधीर शहर में गया तो इतने बीच में जमींदार विक्रम की लड़की अनेक बार उस घर आई और सुधीर के आने की बात पूछ कर लौट गयी। उस समय रामदासी के मन में अनेक बार आया कि कल्पना को फटकार दे। उससे साफ कह दे कि तू इस घर न आया कर। लोग मेरे लड़के को बदनाम करते हैं, पर देखती हूँ कि बदनामी की पात्र तू है। तूने ही मेरे सुधीर को चर्चा का विषय बना दिया है। लेकिन् स्थिति यह थी कि रामदासी भी अन्ततः नारी थी।

वह भी एक दिन युवा थी। यद्यपि उसने अपने पति को छोड़ किसी अन्य पुरुष से मनुहार की बातें नहीं कीं; किन्तु उसे ज्ञान था कि नयी उम्र में सभी एक-दूसरे से कुछ कहना चाहते हैं। मिलकर बैठना पसन्द करते हैं। रामदासी देखती कि कल्पना जब भी उस घर आती तो सुधीर की किसी किताब को अथवा किसी अन्य वस्तु को देख, ऐसी आतुर बनती, जैसे चाहती कि सुधीर अभी आ जाये उसके पास! वह उसके पास बैठे और बात करे। परन्तु रामदासी के लिये विवशता का एक और भी कारण था। कल्पना सचमुच ही जैसे किसी कल्पना-लोक से उतर आई थी। वह इतनी मनोरम और कोमल थी कि उसे देख रामदासी क्या, कोई भी कठोर बात कहने की क्षमता नहीं रख सकता था। और कल्पना तो रामदासी के पुत्र को प्यार करती थी। उसकी स्मृति में अपना ममत्व अर्पित करती थी। इसलिये यह सभी उस रामदासी को जैसे अपूर्व लगता। स्वर्गीय अनुभव होता। उसके मन में बरबस ही यह बात आती कि काश, यह कल्पना उसकी बहू बनती। उस घर को जगमग करती। परन्तु भला रामदासी के ऐसे भाग्य कहां! उस घर के ऐसे दिन कहाँ! निदान, वह साँस भरती और अपना मुँह आसमान की ओर उठा देती।

हाय! कितनी दीन और ममतामयी नारी थी, वह रामदासी!



४



एक बार खेल-खेल में जब कल्पना ने सुधीर को सम्बोधित किया तो उससे कहा—'सुनता है तू, मेरी गुड़िया अपने गुड्डे से कह रही है कि मैं तुझसे तब व्याह करूँगी कि जब तू बड़ा आदमी बनेगा। ऐसा बड़ा आदमी कि जिसे सभी लोग प्यार करें। जिसके दर्द को लोग अपना दर्द समझें।' निश्चय ही इतनी बड़ी और महत्वपूर्ण बात कहने की भावना उस समय कल्पना में नहीं थी। परन्तु जिस समय उसने यह बात कही तो उसने एक दिन कथा में वैसी ही बात पण्डित जी से सुनी थी। अयोध्यापुरी के वासी राम के बन-गमन पर जब रोये, तो कल्पना ने पण्डित जी से प्रश्न किया था—'ऐसा क्यो? किस लिये?' तो पण्डित ने बताया कि राम जनता का प्यारा था। वह जनता का हितेच्छु था। दूसरों का कष्ट अपना समझता था। वह राम भगवान का अवतार था।

फलस्वरूप पण्डित जी की कथा से प्राप्त की गयी वह बात जब अगले दिन गुड़िया-गुड्डे का खेल रचते समय कल्पना ने सुधीर को सुनायी तो वह बोला—'अगर तेरी गुड़िया का गुड्डा अच्छा आदमी न बना तो! तब क्या उसे नहीं मानेगी?'

बात सुनी, तो तुरन्त ही कल्पना ने कहा—'हाँ, फिर मेरी गुड़िया ऐसे गुड्डे से ब्याह नहीं करेगी!'.

इतने पर ही, सुधीर जैसे सहम गया। वह कातर बन गया। खेल से भी उदासीन हो गया। यह देख, कल्पना ने तुरन्त ही सुधीर का हाथ पकड़ लिया और कहा—'हाँ, सुधीर! पण्डित जी कहते थे, अच्छा आदमी बनना ही इस जगत में शोभता है। ऐसा पुरुष ही नारी का गौरव बन पाता है। क्यों, तुझे अच्छी नहीं लगी यह बात! अरे, तू भी तो पढ़ता है न! खूब पढ़ेगा, तो बड़ा आदमी बनेगा!'

बरबस सुधीर ने कहा—'और न पढ़ा तो!'

'तो''''''तो तू भी जंगली रहेगा! ढोर चरायेगा! समझा!'

'जी, समझा!' मानो बात के अन्तराल तक पहुँच कर सुधीर ने उसकी वास्तविकता को पा लिया था। उसने सुगमता से इस बात को समझ लिया था कि इस कल्पना को जिस बड़े आदमी की दरकार है, वह पढ़ा होना चाहिये और वह सभी के स्नेह का पात्र बनना चाहिये। और सुधीर ऐसा कुछ नहीं पा सकता था! उसके पास न तो ऐसे साधन थे और न वह ऐसा कर्मठ ही बन सकता था। निदान, वह स्वयं कल्पना के समक्ष अपने-आपको हीन और तुच्छ पाने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि वह स्वतः ही उससे दूर रहने का प्रयत्न करने लगा। किन्तु स्थिति इसके विपरीत थी। सुधीर यदि कल्पना से दूर रहना चाहता था तो कल्पना जीवन के किसी क्षण में भी ऐसी इच्छा नहीं कर सकती थी। मानो इतना उसने जीवन के उस प्रथम क्षण में ही समझ लिया था कि उसकी आशा और आकांक्षाओं का केन्द्र सुधीर है। उस भरे गांव में वही उसका अपना 'एक' है।

एक बार की बात है कि सुधीर जंगल से गांव की ओर लौट रहा था। कल्पना उस समय अपने मकान की छत पर थी। उसने उसे देखा, तो झट दौड़ पड़ी। गलीहारे में उतर आई। उसने सुधीर को आवाज दी। रुकने के लिये कहा। किन्तु वह नहीं रुका। वह तेज चल दिया। वह रास्ते में ही छुप गया। लेकिन कल्पना दौड़ रही थी। चिल्ला रही थी कि तभी उसने ठोकर खाई और गिर पड़ी। उसके शरीर में कई जगह चोट

लग गयी। उस अवस्था में ही, उसके मुँह से चीख निकली—'रे, सुधीर !'

अवसर की बात कि जिस जगह कल्पना गिरी, उसी के समीप सुधीर छुपा हुआ खड़ा था। उसने कल्पना के मुँह से खून निकला देखा, तो सहम गया। तभी आगे बढ़ कर कल्पना को पकड़ना चाहा। परन्तु वह तो अपराधी था। कल्पना उसी के कारण गिरी। निदान, वह आगे नहीं बढ़ा। कल्पना उठी और रोती हुई घर लौट गयी। पीछे से सुधीर भी अपने घर चला गया। बात पुरानी हो गयी, परन्तु उस समय कई दिन तक कल्पना को बुखार रहा।

बचपन में, कल्पना की मां ने मीठे स्वर में, कल्पना से कहा था कि वह सुधीर के साथ न खेला करे। परन्तु कल्पना ने इस बात को कभी स्वीकार नहीं किया। जैसे वह उसके मन और आत्मा के विरुद्ध आदेश दिया जा रहा था। कदाचित यही कारण था कि जब एक बार कल्पना और सुधीर जमींदार बाबू के उस बड़े मकान में खेल रहे थे, तो तभी उस विशाल कमरे में स्वयं विक्रम आ पहुँचे। पिता को आया देख, कल्पना ने ऐसी चतुराई दिखायी कि बस, उस बालिका की बुद्धि पर हँसने के सिवा और क्या हो सकता था! विक्रम ने कमरे में आते ही कल्पना को पुचकारा और कहा, और कौन था, यहाँ ?

तुरन्त ही कल्पना के मुँह से निकल पड़ा—'कोई नहीं पिता जी !'

विक्रम को उस कमरे में कुछ काम था। अलमारी से कोई कागज निकालना था। वह निकाला और अलमारी को बन्द कर दिया। तदुपरान्त वह चला गया। किन्तु उसी कमरे के मध्य में बिछे पलंग के नीचे छुपा सुधीर उस समय पसीनों से लथपथ था। वह साँस रोके हुए था। पिता के जाते ही कल्पना ने पलंग के नीचे झाँक कर कहा—'बाहर आइये, चोर साहब !'

सुधीर बाहर आ गया और सहमे हुए स्वर में बोला—'मैं अब तेरे साथ नहीं खेला करूँगा, कल्पना ! तू मुझको छुपाती है ! डरती है !'

कल्पना मुसकरा दी—'ओहो ! चोरी और सीना जोरी ! मैं अब भी पिता जी को बुला कर कह दूंगी कि सुधीर है, इस घर में !'

सुधीर ने कहा—'चल, चल ! मैं चाहूं तो तुझे अभी पिटवा दूँ। कह दूं कि यह कल्पना मुझे बुलाकर लाई है और यों पलंग के नीचे…'

कल्पना ने तुरन्त ही सुधीर के मुंह पर हाथ रखकर कहा—चुप ! दीवार भी सुनती है !'

किन्तु उस समय सुधीर का मन खेल से हट गया था। वह उदास बन गया। उसे प्रत्यक्ष लगा कि इस घर में उसका आना अच्छा नहीं है, वह गरीब है। कल्पना अमीर की बेटी है।

तुरन्त ही कल्पना ने सुधीर के मन की इस बात को समझ लिया। उसने देख लिया कि सुधीर उदास है। चंचल है। उसने सुधीर का हाथ पकड़ कर कहा—'सुधीर, पिताजी बड़े आदमी हैं। वे क्या हम छोटों की बात समझ सकते हैं। हम भी तो उनकी बात नहीं समझते। हां, रे, सुधीर ! वे हम से दूर……हम उनसे !'

सुधीर ने कहा—'वे तेरे पिता हैं।'

कल्पना खिलखिला पड़ी—'अरे, ये बातें हमें नहीं सोचनी चाहिये। हमारा यह काम नहीं !'

सुधीर ने कहा—'मैं घर जाऊँगा। अब यहाँ नहीं आऊँगा। तेरे पिताजी मुझे पलंग के नीचे छुपा देख लेते, तो !'

'तो क्या हुआ, रे ! क्या मार देते ! तू पिटता, तो मैं भी पिटती। दोनों रो देते, बस !'

लेकिन सुधीर ने खिजकर कहा—'नहीं, कल्पना ! यह खेल अच्छा नहीं है। मेरी मां भी कहती है कि मैं तेरे साथ—'

जल्दी से आतुर बनकर कल्पना ने कहा—'अरे, मूर्ख ! मेरी मां भी यही कहती है ! पर मैं क्या मानती हूँ। बोल, तू क्या मान लेगा, अपनी मां की बात !'

सुधीर ने कहा—'हाँ, क्यों नहीं मानूंगा ! वह मां जो है !'

कल्पना ने उसकी ओर घूरा—'ओहो, बड़ा आया, मां वाला! जैसे मेरे मां नहीं। जानता है, मेरी मां कितने प्यार से मुझे दूध पिलाती है। प्यार करती है। उस दिन हरिया कहारिन को इतना डाँटा था मेरी मां ने कि बस! और उसका कसूर इतना ही तो था कि उसने मुझे पानी नहीं दिया। तो कहे देती हूँ,—हाँ!'

किन्तु इतनी बात सुनकर भी, सुधीर चल दिया। उसकी पीठ पर ही कल्पना ने कहा—तो जाता है,—सच!'

सुधीर ने मुड़कर कल्पना की ओर देखा। उसने पाया कि इतनी देर में ही कल्पना की आंखें भर आई हैं। वे आँखें अब उसके गोरे और सलोने गालों पर ढुलक आना चाहती हैं। यह देख, सुधीर मुड़ आया। वह कल्पना के समीप होकर बोला—'हां, कल्पना! मुझे जाना चाहिये। मुझे अपनी ठौर बैठना चाहिये। यहां नहीं!'

कल्पना ने अपना मुँह फेर लिया और कह दिया—'अच्छा, जा! अपने घर जा!'

सुधीर चला गया। वह घर पहुँच गया।

परन्तु उस दिन की संध्या अभी ठीक से बीत नहीं पाई थी कि अपने घर में बैठे हुए सुधीर का मन व्याकुल था। वह कहीं जाने के लिये बेचैन था। निदान, वह घर से निकला और अनजाने ही कल्पना के घर की ओर चल पड़ा। यद्यपि, उसने दिन में ही निश्चय किया था कि वह कल्पना के पास नहीं जायेगा। उसके खिलौनों से नहीं खेलेगा। उसके पास यदि रबड़ की गेंद नहीं; तो क्या वह कपड़े की गेंद से नहीं खेल सकेगा! कल्पना उसे पूरी, मिठाई और हलुवा खिलाती है, तो क्या वह अपने घर की सूखी-मिस्सी रोटी खाकर जीवित नहीं रह सकता! जरूर रहेगा! किन्तु सुधीर का यह निश्चय बालू की दीवार की तरह गिर पड़ा। जब उसे इस बात का ध्यान आया कि उसके लौटने पर कल्पना रोयी थी, तो वह जैसे एकाएक ही किसी गहरे समुद्र में गिर पड़ा। वह उसी की गहराई में खो गया। तब, सुधीर को ऐसा एक क्षण के लिये भी अच्छा

नहीं लगा कि वह कल्पना से दूर रहे। उसे रोने-कलपने का अवसर दे।

फलस्वरूप, जब सुधीर गाँव के अन्धेरे गलिहारे को पार कर कल्पना के घर की ओर पहुँचा, तो तभी, उस रास्ते में ही, वह एकाएक किसी से टकरा गया। तुरन्त ही, उसने कहा—'कौन?'

'मैं. कल्पना! कौन, सुधीर!'

सुधीर ने कहा—'अरी, तू कहां जाती है?'

कल्पना ने कहा—'और तू कहां जाता है?'

सीधे-स्वभाव सुधीर के मुँह से निकल पड़ा—'तेरे पास! और तू?'

'मैं भी तेरे पास जा रही थी, रे, सुधीर!'

सुधीर ने कहा—'पगली! इतने अन्धेरे में! कोई कहे तो!'

कल्पना ने कहा—'तू रूठ कर आया था, न! मुझे रोती छोड़ आया था। बता तो, क्यों आया था!'

सुधीर ने चंचल बन कर कहा—'अब नहीं आऊंगा। तुझे नहीं रोने दूंगा!' यह कहते हुए जैसे ही सुधीर ने कल्पना का हाथ पकड़ा तो देखा, कि उसके हाथ में कटोरी है। उसमें कुछ है। वह गरम है। उसने पूछा—'यह क्या?'

'हलुआ। तेरे लिये!'

सुना, तो सुधीर क्षण भर मौन रह गया। वह बोल नहीं सका। यह देख, चँचल बनकर कल्पना ने कहा—'क्यों, क्या हुआ रे! तू चुप क्यों हो गया?'

सुधीर ने कहा—'अब हमारा बचपन जा रहा है, कल्पना! मां कहती थी, अब मुझे समझदार होना चाहिये!'

'अच्छा, अच्छा, सुन ली मैंने तेरी यह बात! हलुवा खा। ले जल्दी कर!' वह बोली—'सभी मां-बाप ऐसा ही कहते हैं रे, सुधीर! मेरी मां भी मुझसे यही कहती है!' और तब इतना कहते हुए, उस अंधेरे में ही कल्पना ने अपना मुंह जाने किस भावना के साथ, सुधीर के कंधे पर रख दिया'········

५



कल्पना के माता-पिता ने जिस प्रकार अपना एकाकी मत बना कर अपनी पुत्री का विवाह कर दिया था, उससे कभी एक दिन भी कल्पना को सुख और सन्तोष मिला हो, ऐसा नहीं दिखायी दिया। कल्पना का पति महत्वाकांक्षी और क्रूर प्रकृति का व्यक्ति था। वह एकाधिकार पाकर अपने पुरखों की सम्पत्ति का उपभोग कर रहा था। शराबी और स्त्री-लोलुप पति पाकर निःसन्देह कल्पना का वर्तमान और भविष्य सर्वथा अन्धेरे में खड़ा था। इसलिये यह सचाई थी कि कल्पना मन-प्राण से चाहती थी कि सुधीर एक बार उसके पास आये। वह उसके पास बैठकर जी भर कर रोये और उससे साफ कहे, मेरा जीवन लुट गया, सुधीर बाबू! जिन्दगी की इस भरी दोपहरी में यह कल्पना बाजी हार चुकी है! ठगी गयी है! मां-बाप ने अपनी प्रतिष्ठा के हेतु इसे आग की सुलगती हुई भट्टी में झोंक दिया है!

लेकिन अवस्था यह थी कि कल्पना का पति अवधबाबू कल्पना को अतिशय प्यार करता था। चूंकि वह शराबी और नारी के सौन्दर्य को भोगने का भूखा था, इसलिये कल्पना की प्रत्येक आकांक्षा को वह अधिक महत्व देता। यद्यपि कल्पना स्वयं एक धनपति की लड़की थी; परन्तु थी वह गाँव की स्वच्छन्द उड़ने वाली सुनहरी चिड़िया। गाँव में कल्पना के पिता का बड़ा बाग था। गांव के किनारे-किनारे ही नदी बहती थी। वहां जंगल

और खेत-खलिहान थे। कल्पना उन सभी का उपभोग करती थी। अपनी सहेलियों के साथ वह प्रायः बाग में जाती और नदी में तैरती। इस प्रकार वह जंगल का पंछी जब कोलाहल से भरे विशाल शहर में पहुँचा और एक सजे हुए महल में बन्द कर दिया गया, तो उसका मन तड़प उठा। वह नदी में तैरने, बाग में घूमने के लिये मचल गया। कल्पना का मन आम के पेड़ की डाल पर बैठी कोयल का मीठा राग सुनने के लिये भी तरस गया। वहां शहर में वह रेडियो सुनती तो उसका मन नहीं भरता। जैसे कोई घिसा-पिटा पुराना राग उसके कानों में आता। पुरानी तर्ज। मानो वहां जो कुछ था वह सब पुराना था। उसपर मुलम्मा चढ़ा कर आये दिन नया किया जा रहा था!

चूंकि अवधबाबू के पास पैसा था, ऐश्वर्य के भरपूर साधन थे, इसलिये जब उसने कल्पना को अधिक उदास पाया, तो वह अपना एक लम्बा प्रोग्राम बनाकर, कल्पना के साथ शहर से दूर पर्वतों की गोद में पहुँच गया। वह कई मास तक वहां रहा। किन्तु अजीब परेशानी की बात यह थी कि कल्पना का मन वहां भी नहीं लगा। स्थिति यह थी कि जब पति उसके पास शराब के नशे में चूर होकर आता, तो तभी, कल्पना का मस्तिष्क विकृत हो जाता। उसका मन कांप जाता। मानस का धीरज जैसे एकाएक ही लोप हो जाता। हाय! कैसी विवशता की बात थी कि जो व्यक्ति कल्पना का देवता था, सामाजिक और धार्मिक रूप से उसका सर्वस्व था, वह उसी को मदान्ध और क्रूर बना देख कर इतनी डर जाती कि जैसे बिलाऊ को देख पाते ही कबूतर! ऐसे समय कल्पना अपने मुँह से कुछ नहीं कहती। आरम्भ में उसने पति से कहा था कि शराब अच्छी चीज नहीं है। आदमी को मदहोश बनाती है,—सच, अन्धा! परन्तु जब उसने देखा कि उसके कहने का कोई प्रभाव नहीं, तो उसने कहना भी बन्द कर दिया। किन्तु कल्पना के जीवन की एक यही समस्या हो, तो सुलझा ले। उससे समझौता करले। वह तो देखती कि उसका पति जिस पैसे के दरिया में बहा जा रहा है, वह दरिया तेज है। वह कहीं ऐसी जगह

पटक सकता है कि जहां अवधकुमार के अस्तित्व की रक्षा नहीं। तब कल्पना के सोहाग का प्रश्न नहीं······उसका यह जीवन नहीं······यह सौन्दर्य नहीं·········!

निःसन्देह, कल्पना के मन की पीड़ा असह्य थी। वह जिस वेदना से छटपटा रही थी, अवधबाबू को उसकी परछाँह भी नहीं मिली। वह अपने ही भोगों में लीन था। मानो उसका जुदा संसार था। जीवन को देखने का ढंग भी जुदा था। इसलिये, जब कई मास वह बाहर रहा और कल्पना के मन की गति में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं देख सका, तो वह फिर नगर लौट आया।

अवधबाबू का अपना कोई ठोस व्यवसाय नहीं था। नगर में उसके पूर्वजों ने एक बड़ी जायदाद निर्मित की थी, वह उसी का किराया खा रहा था। जिसका कई हजार रुपया किराया आता था। पहले उसके पास कई गांव थे, जो बाद में बेंच दिये गये। वैसे एक बड़ा खेती का फॉर्म भी चल रहा था। वह स्वयं वकील भी बना था।

परन्तु अपने प्रयत्न से आय न होने बराबर थी। कभी नुकसान भी देना पड़ता। क्योंकि सभी कुछ नौकरों पर अवलम्बित था। अवधबाबू शिकार खेलता, शराब पीता और चार दोस्तों में बैठ कर जीवन के भोगों की चर्चा में लिप्त रहता।

लेकिन उस यात्रा से लौटकर अवधबाबू में जो परिवर्तन हुआ वह न केवल कल्पना की दृष्टि में अलौकिक था, अपितु अवधबाबू के मित्रों के लिये भी आश्चर्यजनक था। उन्हीं दिनों उसने एक कम्पनी स्थापित की। रात-दिन लगाकर उसके शेयर बेचे। स्पष्टतः वह रुपया कमाने की धुन में लग गया। अब वह घर में कम रहता, बाहर ही उसका समय व्यतीत होने लगा। यह देखकर कर कल्पना ने सन्तोष की सांस ली और समझा कि चलो, अब उसका पति शराब कम पीयेगा, क्लबों में कम जायेगा, मित्रों की गोष्ठी में कम बैठेगा। क्योंकि वह समझती थी कि जब आदमी किसी काम में लगता है तो वह फिर वासना की पुकार नहीं सुन पाता। किन्तु कल्पना

को शीघ्र ही अपना मत बदल देना पड़ा। लिमिटेड कम्पनी बनाने में जो रुपया आया, उसका एक बड़ा भाग मालिक ने शराब के दरिया में बहा दिया। वह भले ही घर से दूर रहने लगा, लेकिन वह और अधिक स्वच्छन्द और मति-भ्रष्ट बन गया! उन दिनों अवध के स्वभाव में एक बात और आ गयी थी कि वह पहले की अपेक्षा रुक्ष और क्रोधी अधिक रहने लगा। पहले वह कल्पना की किसी बात को नहीं टालता था, उस पर क्रोध भी नहीं कर पाता था, परन्तु अब बात-बात पर उससे भी लड़ता और झिड़क देता था। मानो उसकी दृष्टि में कल्पना का स्थान किसी सामान्य नौकरानी से अधिक नहीं था। परन्तु कल्पना के लिये जैसे यह बात भी गौण थी। वह स्वभाव की इतनी सरल और निराभिमान बनी थी कि जैसे स्वतः ही, उसने अपना अस्तित्व उस अवध की सीमा में आकर अर्थ हीन समझ लिया था। वह न पति के क्रोध का प्रतिकार करती, न उसकी उपेक्षा का तिरस्कार!

किन्तु विधना को कुछ इससे ऊपर जाना था। उसके मन में कुछ और था। अवधकुमार जब अधिक शराब पीने लगा, वह नगर की अनेक स्त्रियों से सम्बन्ध रखने लगा, तो यौवन की उस भरी दोपहरी में ही, उसका स्वास्थ्य लुट गया। उसके फेफड़े खराब हो गये। फलस्वरूप जब वह एक बार बिस्तर पर पड़ा तो नहीं उठ सका। अनेक डाक्टरों ने उसका उपचार किया। पहाड़ पर भी गया। किन्तु मौत तो उसके जीवन का द्वार खटखटा रही थी। वह उस घर में प्रवेश कर चुकी थी। अवध के प्राणों की जो जीवन-डोर थी, वह मौत उसे अपने तेज दाँतों से कुतर रही थी। एक दिन आया कि वह डोरी झटका-सा खाकर दो-टूक हो गयी। अवध चला गया। वह कल्पना को अकेली छोड़ गया। उसे विधवा कर गया!

उस विशाल भवन में, कि जिसकी एकमात्र स्वामिनी कल्पना थी, अवध बाबू के जाते ही उदासी छा गयी। वहाँ मित्रों का आना-जाना और कोलाहल बन्द हो गया। शराब के गिलासों का मीठा स्वर भी नहीं सुनाई देता। नौकर हटा दिये गये। केवल एक पुराना नौकर मातादीन कल्पना

की सेवा करने के लिये रख लिया गया। जब अवध मरा, तो उससे एक सप्ताह पूर्व ही उसकी फूआ वहाँ आ गई थी। वह प्रौढ़ा थी। अवध भी उसका सम्मान करता था। डरता भी था। इसलिये जब फूवा आई और अवध बाबू का देहावसान हो गया तो बरबस, फूवा को वहीं रुक जाना पड़ा। उसका शासन कल्पना पर भी था। कल्पना को भी उसके आदेश का पालन करना अनिवार्य था।

जब अवध चला गया, तो उसके तेरहवें दिन सभी सम्बन्धी एकत्र हुए। कल्पना के पिता विक्रम भी आये। उसी समय फूवा के कुटुम्बी देवर का लड़का भी वहाँ आया। उसी वर्ष उसने कालेज से बी० ए० किया था। नौकरी की तलाश में था। जब अवधबाबू की मृत्यु का समाचार उसे मिला, तो कल्पना के घर का प्रतिनिधित्व करने के लिये उसी को भेजा गया। कदाचित स्वयं अवध की फूवा ने एक पत्र अपने देवर को लिखा कि वह महेन्द्र को भेज दे। महेन्द्र जवान था, सुन्दर था। अवध की फूवा के अपनी सन्तान तो कोई थी नहीं, इसलिये उसने भी महेन्द्र को पुत्रवत् मान लिया था।

उस समय विक्रम की इच्छा थी कि वह कल्पना को गाँव ले जाये। परन्तु वह समय उचित नहीं था। कल्पना जाती, तो घर खाली हो जाता। क्योंकि अब उसका स्थान घर की स्वामिनी का था। लेकिन कल्पना के जीवन में जिस प्रकार का भूचाल आया, उसने उस सुकुमार नारी को इस बुरी तरह झिंझोड़ा कि उसका मानसिक धरातल क्षत-विक्षत हो गया। उसी समय सभी को इस बात का भय था कि कल्पना कहीं पागल न हो जाये! क्योंकि जो चोट उस पर पड़ी, उसने न केवल उसका जीवन बिगाड़ दिया, अपितु उसका संसार ही उजड़ गया! यद्यपि, अपने वैवाहिक-जीवन में कल्पना को किसी एक दिन भी सन्तोष नहीं मिला, उसका पति कभी भी उसकी रुची के अनुकूल आचरण नहीं कर सका; लेकिन फिर भी, पति से उसका संसार तो हरा-भरा था। वह समाज में भाग्य की लक्ष्मी और सुहागिनी कहलाती थी। सब ओर उसका सम्मान किया जाता था। घर में

पति के कारण ही शोभा थी। कोलाहल था। और अब? मानो सभी कुछ लिप-पुत कर एकाकार बन गया! जैसे उसके उस सुहावने और यौवन भरे जीवन के चारों ओर कोई बालू की दीवार खड़ी थी। आँधी का झोंका आया और उसे गिराकर चला गया। वह कल्पना को भी घायल कर गया। उसका जीवन बिगाड़ गया। रोना और शोक करना ही, सौगात रूप में उस रूप-सी कल्पना को दे गया। बेचारी कल्पना!

मृतक के जितने संस्कार थे, ये सब सम्पन्न हो गये। सम्बन्धी अपनी अपनी सद्भावनायें और शोक के उद्गार प्रगट करके लौट गये। कल्पना के पिता भी गाँव चले गये। बस, केवल रह गयी फूआ और उसके देवर का लड़का महेन्द्र। फूवा ने महेन्द्र को यह काम सौंप दिया कि वह कल्पना के कृषि-फार्म और नगर की जायदाद की देख-रेख करे। नौकरों का काम देखे। चूँकि एक ऐसे आदमी की आवश्यकता थी, इसलिये सहज भाव से कल्पना की स्वीकृति भी प्राप्त कर ली गयी। कल्पना के पिता ने भी इस प्रस्ताव को पसन्द किया। कुछ दिन के बाद फिर लौट आने की बात कह कर फूवा भी लौट गयी। महेन्द्र रह गया। वह उस भवन का पूर्ण-रूप से संरक्षक बन गया।

ऐसे ही समय, एक दिन भूली हुई याद को जागरित कराने वाला एक पत्र कल्पना को मिला। पत्र लिफाफे में था। कल्पना ने खोला। देखा, तो वह सुधीर का पत्र था। जिसमें लिखा था:—

कल्पना देवी,

आज ही मुझे गाँव से समाचार मिला है कि तुम्हारे ऊपर विपत्ति का पहाड़ गिर पड़ा! ऐसी अवस्था में क्या कहूँ मैं! दूर हूँ, तुम्हारे वे बहते हुए पीड़ित आँसू भी नहीं देख पाता। याद तो होगा ही, मैंने एक पत्र तुम्हें तब लिखा था कि जब तुम्हारा विवाह हो गया। वह मेरी प्रसन्नता का पत्र था। पर आज............ओह! तुम्हारे साथ तो भगवान ने बड़ा ही कठोर व्यवहार किया! खेद मुझे इस बात पर है कि मैं तुम्हारी इस पीड़ा में साझीदार नहीं बन सकता! नियति के जो नीयम हैं, उनमें सभी के

समान, मैं भी परवर्तन नहीं कर पाता ! वे हमारे बचपन के दिन जैसे आज स्वप्न बन चुके हैं ! कितने सलौने और मनभावने दिन थे, वे हमारे ! भला कोई कह सकता था कि वह सुकुमार और आलोड़ के पालने में झूलती हुई कल्पना अपने सोहाग से यों हाथ धो बैठेगी ! सचमुच, मुझे बड़ा हर्ष हुआ था, जब सुना कि तुम्हें योग्य और सम्भ्रान्त पति मिल गया। सोचा था, कभी तुम्हारे द्वार पर पहुँचूगा। बचपन की याद ताज़ी कर आऊँगा। पर अब क्या इतनी शक्ति मुझे सहज में प्राप्त हो सकती है कि तुम्हारे आँसुओं को देखूँ और उनमें डूब न जाऊँ !

कल्पना जी, मैं तुम्हारा बचपन का साथी हूँ। कोई भी सेवा पाकर आभारित बनने का आकांक्षी हूँ। तुम्हारे बेचैन मन को शान्ति मिले, ऐसे प्रयत्न में, अपने को लगाकर मैं उपकृत बन सकूँगा हूँ।

तुम्हारा—

सुधीर

पुनश्च :

गाँव का पत्र देर से आया था, परन्तु मैं अपने स्थान से परे था, लौटने पर पा सका। देखता हूँ तुम्हारे साथ घटित हुई घटना को कई मास का समय व्यतीत हो गया। मृतक की आत्मा को भगवान् शान्ति दें, इसकी मैं सदा कामना करूँगा। मैं तुमसे भी निवेदन करूँगा कि जीवन के इस व्यापार में जो घाटा-नफा होता है, वह केवल भाग्य और हमारे संस्कारों का भोग है, इसलिये इस भौतिक जगत् में काया का मोह करना किसी प्रकार भी लाभप्रद सिद्ध नहीं होगा। जिसे जब जाना है, वह चला जाता है। केवल हमारा स्वार्थ और ममत्व ही, सिर धुनने के लिये शेष रह जाता है !

—सुधीर

जिस समय कल्पना ने पत्र पढ़ कर फिर लिफाफे में रखा, तो उसी समय महेन्द्र वहाँ आया। उसने प्रश्न किया, किसका पत्र है ? क्या पिता जी ने लिखा है ?

कल्पना ने कहा—'नहीं, गाँव के एक आदमी का। तुम भी पढ़ लो।' वह बोली—'यह सुधीर जाने देश के किस कोने में चला गया है! लगता है, जैसे छिप गया हो। मुझे तो यह भी नहीं मालूम कि वह क्या करता है!'

महेन्द्र ने कहा—'क्यों, गाँव का है और इतना भी पता नहीं देता!'

कल्पना बोली—'आज ही तो उसने पत्र लिखा है।'

महेन्द्र ने पत्र उठा लिया, पढ़ा। जब वह पढ़ चुका, तो बोला—'आदमी समझदार है। कुछ धार्मिक भी लगता है। कौन है यह?'

कल्पना ने कहा—'एक दिन गाँव में यह मेरे साथ पढ़ता था। साथ खेलता था।'

'अच्छा! तो यों कहो, बचपन का सखा है। खूब!' महेन्द्र ने इतना कहा और खिलखिला कर हँस दिया। वह जिस प्रकार हँसा, उसे देख, कल्पना को अच्छा नहीं लगा। उसने तुरन्त ही विस्मय के साथ मुँह बना लिया और माथे में बल डालकर कहा—'क्यों, इसमें हँसने की बात क्या!'

महेन्द्र तुरन्त सचेत हो गया और वहां से जाता हुआ बोला—'नहीं, नहीं, वैसे ही हँस दिया।' यह कहते हुए वह चला गया।

किन्तु उसके पीछे बैठी रह गयी कल्पना के मन में जैसे काँटा चुभ गया। उसे महेन्द्र का वह रुख नितान्त उद्दण्ड दिखायी दिया। जैसे क्रूर और रहस्य से पूर्ण!

६



सुधीर के मामा जिस सरकारी विभाग में नौकर थे वह विभाग देश की केन्द्रिय-शासन-व्यवस्था द्वारा संचालित होता था। इसलिये उस विभाग के आदमी किसी एक स्थान पर देर तक नहीं रह सकते थे। पुरातत्व-विभाग के वे कार्यकर्ता उन दिनों भारत के जिस महान वैभव की खोज कर रहे थे, उस प्रयत्न को सुधीर भी बड़े ध्यान से देख रहा था। वह केवल दसवीं तक पढ़ सका और फिर अपने मामा के प्रयत्न से उसी विभाग में कार्य करने लगा। उन दिनों पुरातत्व के अन्वेषक मध्य-कालीन युग की सामग्री खोज रहे थे। अनेक स्थानों पर उन्हें खुदाई करके बहुत से ताम्र-पत्र, सिक्के और उस युग की देव प्रतिमायें प्राप्त हुई थीं। कुछ साहित्य भी उन लोगों के हाथ लगा। यह अवसर की बात थी कि उस विभाग के कार्यकर्ता संस्कृत और पाली के अच्छे ज्ञाता थे। वे भारत की अन्य अनेक भाषाओं को लिख-पढ़ सकते थे। सुधीर ने उस सम्पर्क का उचित लाभ उठाया। उसने पाली और संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया। इस प्रकार सहज ही उसे भारत के दर्शन, बौद्ध मत तथा जैन ग्रन्थों के पढ़ने का सुयोग मिला। जिन दिनों सुधीर को गाँव से कल्पना के विधवा बनने का समाचार मिला, उस समय वह नेपाल की तराई में पहुँचा हुआ था। उन्हीं दिनों उसे तिब्बत भी जाना पड़ा। लगभग दो मास उस नये देश में रहकर, उसके मन पर जिस प्रकार का प्रभाव पड़ा वह सर्वथा अलौकिक और

अभूतपूर्व था। मानो उस शान्त और निस्पृह बने हुए देश के अनेक लामाओं के सम्पर्क में रहकर, उसे एक नये जीवन का दर्शन लाभ हुआ। जीवन का विशाल-पथ पार करने वाले वे लामा और उनके धर्म-गुरु एक ही सत्ता को स्वीकार कर सकते थे। भगवान बुद्ध के उपदेश ही उनके अवलम्ब थे। वे उन्हीं में जीवन-दर्शन पाते थे।

अपने मुख्य कार्यालय पर लौट कर, जब अन्य पत्रों के साथ सुधीर ने पिता का पत्र पढ़ा, तो वह एकाएक अपने-आप में खो गया। मानो जड़ बन गया। उसे अपने पिता की बुद्धि पर भी तरस आया। कदाचित वह सामने होता, तो निश्चय ही, पिता के उन विचारों को सुनकर स्पष्ट कह देता, तुम स्वार्थी हो''''''तुम विवेक हीन !

बात यह थी कि उस पत्र में पिता ने आरम्भ से अन्त तक एक ही बात विशेष रूप से लिखी। उनकी एक तो इच्छा यह थी कि सुधीर गाँव में आ जाये और दूसरी आकांक्षा यह व्यक्त की कि वे अब सुधीर का विवाह शीघ्र कर देना चाहते हैं। एक लड़की वाले से बात करली है। इसलिये आवश्यक है कि सुधीर शीघ्र गाँव लौट आवें।

जब पिता ने पत्र में अपनी सब बातें लिख डालीं, तो अन्त में, मानो सूचना-मात्र की दृष्टि से इतना लिख दिया कि जमींदार विक्रम की लड़की कल्पना विधवा हो गई।

लेकिन सुधीर पिता के समूचे पत्र से आकर्षित नहीं हुआ। उसे वह पत्र की अन्तिम लाईन ही अपनी ओर खेंचने में समर्थ हुई। मानो उन चन्द शब्दों ने सुधीर के समूचे जीवन को झिंझोड़ दिया। वह इतना आहत हुआ कि कई दिन तक ठीक से भोजन भी नहीं कर सका। पत्र पाने के दिन की रात में वह बिस्तर पर भी नहीं पड़ सका। वह चाँदनी रात थी। जिस स्थान पर वह टिका था, वहां चारों ओर ऊँचे ऊँचे पर्वत खड़े थे। रात में हिंसक पशुओं का भी भय बना रहता था। इसलिये बहुत ही कम लोग घरों से बाहर निकलते थे। किन्तु सुधीर की आत्मा में तो उस रात जैसे किसी ने आग लगा दी थी। उसकी आत्मा

जल रही थी। छटपटा रही थी। इसलिये वह अपने बस्तर से उठकर बाहर निकल पड़ा। वह पर्वत की एक विशाल शिला के ऊपर जाकर बैठ गया। दूर, कहीं शेर चिंघाड़ रहा था। उसका गर्जन उस विशाल पर्वत में गूँज रहा था। छोटे-छोटे जानवर इधर-से-उधर भागे जा रहे थे। मानो वे सभी संत्रस्त थे। वे जीवन और मृत्यु के पथ पर दौड़े हुए जा रहे थे। उस समय कुछ जानवर सुधीर के सामने से भी निकल गये। यद्यपि उसके पास बन्दूक थी, जो सुरक्षा के लिये विभाग की ओर से उसे प्राप्त थी। परन्तु वह बन्दूक तो गोलियों से भरी उसकी चारपाई के पास रखी थी। उस रात में जब वह बाहर निकला, तो बन्दूक उठा ले चलने का ध्यान भी नहीं रहा। मानो उस क्षण उसे अपने जीवन का तनिक भी मोह नहीं रह गया था। जिस प्रकार पहले कभी कल्पना के जीवन से महत्वपूर्ण उसने अपने-आपको नहीं माना, तो उस समय भी, मानो कल्पना की पीड़ा और व्यथा से बड़ी और उग्र टीस वह अपने पास नहीं अनुभव कर रहा था। उसी समय एक पहाड़ी रीछ फुँफकारता और नथुनों से साँस छोड़ता हुआ वहाँ से निकला। वह एक विशाल जानवर था। भयंकर भी था। सुधीर ने उसे भी देखा, तो तटस्थ बना रहा। वह अपने स्थान से तनिक भी नहीं हिला। जब रीछ कुछ आगे जाकर खड़ा हुआ और सुधीर की ओर देखने लगा, तो तब भी, उसकी वे भयंकर नोकीली आँखें देखकर, सुधीर अपने मन में उठी केवल एक ही बात को पढ़ रहा था कि हाय ! अब उस बेचारी कल्पना का क्या होगा ! उसका कोमल मन क्या इतना बड़ा विषाद सहन कर सकेगा······न, कल्पना मर जायेगी ! वह अपने-आप में ही घुट जायेगी······बेचारी कल्पना ! और तब, उस अवस्था में ही, जब रीछ तनिक खड़ा होकर आगे बढ़ गया तो सुधीर ने कल्पना और अपनी बचपन की मधुर-स्मृतियों को लेकर कहा, गाँव में और कोई था या नहीं, पर मेरी मां के बाद एक कल्पना ही ऐसी मिली कि जिसने मेरी पीड़ा को समझा। उसने मेरी आवश्यकताओं को भी पूरा करने का प्रयत्न किया। वह महान् कल्पना······वह कोमल और सदा-

रामता से भरे जीवन की रानी कल्पना……

उस रात के बाद जब पौरी फटने लगी थी, तो सुधीर अपने बिस्तर पर जा पड़ा। उसी समय उसका एक साथी जाग गया। उसने कहा—'सुधीर बाबू कहाँ गये थे, रात में ? मैं एक बार जागा था। तुम्हारा बिस्तर खाली पड़ा था।'

सुधीर ने कह दिया—'तबीयत खराब थी। बाहर घूम रहा था। मैं सो नहीं सका था।'

साथी अपने बिस्तर से उठकर सुधीर के पास आ गया। वह बोला—'नहीं, कोई और बात है! संध्या समय भानु बाबू ने भी मुझसे कहा कि तुम परेशान हो! क्या घर के किसी समाचार को पाकर इस अवस्था में हो ?'

सुधीर उस समय अजीब अवस्था में था। वह अपनी किसी बात को पेट में भी नहीं रख सकता था। इसलिये जब उसे साथी ने टंकोरा, उसके मर्मस्थल पर हाथ रखा, तो तब, बरबस ही, सुधीर कराह उठा और उसने तड़प कर कहा—'हाँ, भाई! मैं आज अत्यधिक परेशान हूं। मैं इस दुनिया में जिसे अपना सबसे अधिक शुभेच्छु मानता रहा, आज उसी को रोता पा रहा हूँ!'

'कौन……क्या…… ?' बलात् साथी ने फिर प्रश्न किया।

सुधीर ने कहा—'रवि बाबू, कहानी बड़ी है। परन्तु उसका संक्षिप्त सार यह है कि पिता जी के पत्र में लिखा है कि गाँव के जमींदार की लड़की विधवा हो गयी। वह लड़की मेरे जीवन में बहुत बड़ा अभिनय खेल चुकी है। उसने मुझे पूर्ण रूप से आभारित किया है। परन्तु आज वह स्वयं लुट गयी, यह देख मुझे सभी अटपटा लग रहा है! सच, मैं रात भर पहाड़ी पर बैठा रहा। सोचता हूं अब मैं उस कल्पना के पास कैसे जा सकूँगा! उससे क्या कह सकूँगा!'

रवि उस विभाग में नया आया हुआ युवक था। सुधीर के अधिक निकट था। उसने बात सुनी, तो एकाएक कहा—'भाई, यह विषय कठोर

है। तुम चाहो तो उस कल्पना के आँसू पोंछ सकते हो।'

इतना सुना, तो सुधीर ने जैसे विस्फारित बन कर रवि की ओर देखा। उसने कहा—'न, भाई! यह शरीर का सम्बन्ध बहुत नीचा है। आत्मा का सम्बन्ध ही मेरी दृष्टि में ऊँचा है।'

रवि ने कहा—'यह आध्यात्म की बात है। लौकिक नहीं। वह तुम्हारे बचपन की साथिन कल्पना अब जीवन भर सिसकती रहेगी। समाज में भी उसका स्थान न कुछ के बराबर रहेगा। उसका यौवन और हरा-भरा जीवन असमय ही सूख कर झर जायेगा!' वह बोला—'सुधीर बाबू, सभी को साथी चाहिये। इस जगत के समस्त जीव-जन्तुओं की यही आस्था है। हमारे शास्त्रों की भी यही मान्यता है।'

सुधीर ने कहा—'किसी और से विवाह करे, तो मुझे आपत्ति क्या! मैंने कभी उसे पाने और ग्रहण करने का विचार नहीं किया।'

उसी समय दिन निकल आया। दोनों साथी अलग अलग हो गये। जब सुधीर अपने काम पर लगा, तो उससे पूर्व, उसने दो पत्र लिखे। एक पिता के नाम और दूसरा कल्पना के नाम। पिता को लिखे पत्र में उसने स्पष्ट लिख दिया कि मैं अभी गाँव नहीं आ सकता। मैं अपनी वर्तमान अवस्था में विवाह करने के लिये प्रस्तुत नहीं हो सकता। इसलिये आप किसी भी लड़की वाले से बात न करें। मेरा कर्तव्य आपकी सेवा करना है, सो मैं करता रहूंगा।

जिस काम पर सुधीर अपने विभाग की ओर से नियुक्त था, उसमें वह दिन-दिन अपने अधिकारियों द्वारा प्रशंसा प्राप्त कर रहा था। इसलिये आशा से अधिक उसकी तरक्की हो रही थी। वह अपने अनेक साथियों से आगे निकल गया था। उसे अब कई सौ रुपया प्रति मास वेतन रूप में प्राप्त होता था। चूंकि उसका भ्रमण करने का काम अधिक था इसलिये विभाग की ओर से सफर खर्च आदि का भत्ता ही इतना प्राप्त होता कि वह उसी में अपने महीने भर का खर्च चला लेता। इसका परिणाम यह हुआ कि सुधीर के पिता ने गाँव में कच्चे मकान की जगह पक्का मकान

बनवा लिया। जमींन भी खरीद ली। अब उसे स्वयं जमींन जोतनी नहीं पड़ती, अपितु नौकर ही सब काम करता। किन्तु पुत्र से इतनी सुविधा पाकर भी शिवदास अतिशय परेशान था। उसकी पत्नी रामदासी भी बेचैन थी। उसका पुत्र कई वर्ष से बाहर था। अनेक पत्र देने पर भी नहीं आ रहा था। जैसे उसे गाँव से और मां-बाप से अरुचि हो गयी थी। लेकिन आश्चर्य तो यह कि वह अपना सभी वेतन गाँव भेज देता था। सुधीर के मामा ने भी यही लिखा था। उसने बता दिया था कि सुधीर उसके विभाग का अफसर बन गया है। वह अपने काम में चतुर निकला है। माता-पिता को इस बात की आशंका थी कि सधीर ने कदाचित वहीं पर बाहर किसी अन्य लड़की से सम्बन्ध स्थापित किया है। इसीलिये वह नहीं आता। विवाह के लिये भी सहमत नहीं होता। किन्तु इस विषय में भी सुधीर के मामा ने लिख दिया, सुधीर विवाह की बात के विषय में कुछ नहीं सोचता। उसकी निगाह ऊँची है। उसके जीवन का लक्ष्य निराला है। वह नौकरी का काम करने के बाद भी अकेला रहता है। पढ़ना और घूमना ही, उसके जीवन का ध्येय बना है।

लेकिन सुधीर ने कल्पना को जो पत्र लिखा, उसी सप्ताह उसे कल्पना का उत्तर मिला—तुमसे प्राप्त हुईं सद्भावनाओं के लिये, धन्यवाद! आभार मानती हूँ कि तुमने मेरे दर्द को अपना समझा! पर मैं तो यह भी चाहती हूँ कि एक बार आओ। इस जगत की दृष्टि में अब पत्थर ही रह गयी है, यह कल्पना—पाषाण मूरत—इस पर अब फूल तो चढ़ेंगे नहीं, तुम एक ठोकर ही मार जाओ!

उस पत्र के उत्तर में सुधीर ने तुरन्त लिख दिया, इस समय कुछ विशिष्ट काम मेरे सामने हैं, उन्हें समाप्त करते ही आऊँगा। उसने लिखा, 'मेरी दृष्टि में कोई प्रतिमा हो, चाहे पत्थर की या हाड-मांस की, ठोकर मारना मैंने नहीं सीखा। फूल चढ़ाना और पूजा करना ही मुझे शोभता है। यही मेरे मन को भाता है। विश्वास करो, मैं जल्दी आऊँगा।'

किन्तु वह जल्दी, इतनी लम्बी बनी कि कोई मास निकल गये।

इस बीच में कल्पना के और भी कई पत्र आये। जिनमें कुछ का उत्तर दे दिया गया और कुछ का नहीं। सचाई यह थी, कल्पना के उन पत्रों में जैसे युवा और विधवा कल्पना के स्थान पर बाल कल्पना बोलती थी। वैसे ही चंचल, वैसी ही मधुर ! कदाचित यह देखकर, सुधीर का मन व्याकुल हो जाता। वह बार-बार सोचता कि उसे कल्पना के पास नहीं जाना चाहिये। कल्पना की शांति में उसे बाधक भी नहीं होना चाहिये। लेकिन कल्पना के तो पत्र आ रहे थे। वे सभी प्रेरणा से भरे थे। उन सभी पत्रों के एक-एक शब्द में ममता थी, प्यार था और हृदय के उच्छ्वासों से भरा निमन्त्रण था। सुधीर को बुलाया जा रहा था।

निदान, सुधीर ने कार्यालय को छुट्टी के लिये लिख दिया था। उसने सोचा था कि वह एक मास का अवकाश लेकर घर भी हो आयेगा। कुछ दिन कल्पना के पास भी रह सकेगा। किन्तु अभी अधिकारियों की स्वीकृति आई नहीं कि सुधीर बीमार पड़ गया। उसे मलेरिया का बुखार आने लगा। उसके पास केवल दो नौकर थे। मामा भी उसके पास नहीं था। वह दूर था। उस पर्वतीय क्षेत्र में कि जहां खुदाई का काम आरम्भ था, सुधीर का रहना आवश्यक था। वह सब कार्य उसी की देख-रेख में हो रहा था। जिस स्थान पर खुदाई हुई, वहां भारतीय संस्कृति की बहुत वस्तुएँ उपलब्ध हुईं। इसलिये खुदाई बढ़ती जा रही थी। अधिकारियों को उस क्षेत्र में और भी सामग्री पाने की आशा थी। भगवान बुद्ध और उनके शिष्यों की जो प्रतिमायें वहाँ पर प्राप्त हुईं, वैसी अभी तक सरकार नहीं खोज सकी थी। कुछ ऐसे भी सिक्के प्राप्त हुए कि जिनसे सहज ही भारत के उस अतीत की शृंखला क्रमबद्ध मालूम होती थी। उस युग की चिर-पुरातन संस्कृति अभी तक कुछ जैन और बौद्ध ग्रन्थों में वर्णित थी, परन्तु उसका कोई मूल आधार नहीं मिल रहा था। लेकिन उस स्थल की खुदाई ने प्रचुर सामग्री प्रदान की।

जिस समय सुधीर ज्वर से पीड़ित बनकर बिस्तर पर पड़ा, तो तभी विभाग के विशेष आदेश पर एक डाक्टर उसके लिये वहाँ भेजा

गया। विभाग ने चाहा कि सुधीर अभी वहीं रहे। वह अपने द्वारा आरम्भ किये कार्य पर दृष्टि रखे। इसलिये उसका अवकाश भी स्थगित रखा गया।

किन्तु सुधीर तो बिस्तर पर पड़ा था। कार्य हो रहा था। डाक्टर उसका उपचार कर रहा था। फिर भी उसका बुखार टूट नहीं रहा था। इस प्रकार एक और प्रातः आया। दूर स्टेशन पर सदा के समान उस दिन भी अपने समय पर दूसरे प्रान्त से होती हुई गाड़ी आई और सीटी बजाकर फक्-फक् करती हुई निकल गयी। उस दिन सुधीर का बुखार हल्का था। डाक्टर ने कुछ पथ्य लेने के लिये भी कहा था। उसी समय एक तांगा वहाँ आया। द्वार पर ही जो स्वर अन्दर पहुंचा, वह सहज ही, सुधीर के कानों में जा पड़ा। उसने पहचान लिया। किन्तु वह बोल नहीं सका। एकाएक उठ भी नहीं सका। किन्तु जब उसके सिर के रूखे बालों पर हाथ रखा गया और उसका नाम लेकर पुकारा गया, तो उसके मुँह से बरबस निकल पड़ा—'कल्पना देवी! और तब वह किसी भी बच्चे के समान, फफक कर रो पड़ा। और यह आश्चर्य की बात नहीं थी कि कल्पना स्वयं रो पड़ी थी। मानो गंगा-यमुना की वह धारा उन दोनों को बहाये लिये जा रही थी······

———:०:———

७



अपने नगर से दूर, उस पर्वतीय क्षेत्र में, कल्पना अकेली नहीं गयी, उसके साथ फूआ के देवर का लड़का महेन्द्र भी था। उसी महेन्द्र ने जब तांगे से सामान उतरवा कर कमरे में प्रवेश किया, तो उसने जिस कल्पना और सुधीर को रोता पाया, तो वह जैसे जागृत अवस्था में कोई स्वप्न देख सका था। उसने एकाएक अनुभव किया कि सच, जैसे भूली हुई और दूर छूटी दो आत्मायें आपस में मिल गयीं। निश्चय ही, महेन्द्र की दृष्टि में वह एक अलौकिक दृश्य था। यद्यपि इतना महेन्द्र ने नगर में ही समझ लिया था कि कल्पना को पत्र लिखने वाला यह सुधीर निश्चय ही, किसी एक समय कल्पना के अधिक निकट रह चुका है। कदाचित यही कारण था कि महेन्द्र जिस प्रकार कल्पना को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न कर रहा था, उतना वह अपने लक्ष्य में सफल नहीं बन सका। मानो कल्पना का शरीर कहीं था और आत्मा कहीं और! लेकिन महेन्द्र की एक विवशता यह भी थी कि वह कल्पना की कृपा पर आधारित था, अन्यथा, उसका अस्तित्व कुछ नहीं था। इसलिये वह कल्पना की इच्छा में ही अपनी सहमति प्रगट करता था।

जब कल्पना और महेन्द्र नगर से चले थे, तो उससे पूर्व ही, कल्पना के पिता ने एक बार वहाँ आकर बताया कि सुधीर अब बड़ा आदमी बन गया है। वह हजार से ऊपर वेतन पाता है। बड़ा अफसर है। उसका गरीब बाप

भी अब गाँव का मालदार आदमी बन चुका है। जब पिता ने इस प्रकार की सूचना दी, तो तभी, उसने यह भी कहा कि यह आश्चर्य की बात है कि इतने पर भी, वह सुधीर विवाह नहीं करता। सुनता हूँ कि वह साधु-सन्यासियों की संगत में अधिक रहता है। पर मेरा तो मत यह है कि वह विवाह कर चुका है। तभी गाँव नहीं आ रहा है। वह देर से गाँव नहीं लौटा। जरूर उसने किसी दूसरी जाति की लड़की से विवाह कर लिया होगा। अभी एक दिन मिला शिवदास, तो बोला, सुधीर अब आयेगा। अब तक आ जाता। पर बीमार पड़ गया। ठीक होने पर लौटेगा। पर मैं कहता हूं यह भी उसका बहाना है। वह आना नहीं चाहता। मा-बाप को मूर्ख बनाता है!

पिता की वह बात कल्पना के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। सुधीर अब एक बड़ा आफीसर बन गया है यह भी उसके लिये संतोष का विषय था। किन्तु वह सुधीर अब उसके पास भी नहीं आ रहा है, इससे, सचमुच ही, उसे क्षोभ होता था। किन्तु सुधीर ने किसी सुन्दर और पढ़ी-लिखी लड़की से विवाह कर लिया है, यह उसकी समझ में एक बार भी नहीं आया। यद्यपि ऐसा हो, तो कल्पना को सुख प्राप्त होता। वह भी सुधीर की पत्नी को देखना चाहती थी। उससे बात करती, कदाचित इसी लिये, उसके मन में यह इच्छा पैदा हुई कि वह स्वयं सुधीर के पास जाये। क्योंकि पति के मरने के बाद उसके मन में कई बार आया कि वह कुछ दिन के लिये बाहर घूम आये। यद्यपि तीर्थ स्थानों पर जाने की उसकी कभी इच्छा नहीं हुई, परन्तु घर से दूर जाना वह सदैव चाहती।

किन्तु उस दूर स्थान पर पहुंच कर महेन्द्र के लिये यह नितान्त कौतुक का विषय लगा कि सुधीर रोया क्यों! और कल्पना की आंखों में आंसू क्यों! तो, उस युवक ने सहज ही इस बात को समझ लिया कि हां, ये देर से एक-दूसरे के जीवन में डूबे हुए हैं। लेकिन महेन्द्र के मन में तो फिर भी प्रश्न था, तो क्या इस सुधीर को कल्पना के वैधव्य से दुःख हुआ है? यह इसीलिये रो पड़ा है? और कल्पना! यह क्यों रो

पड़ी ? क्या इसलिये कि यह सुधीर आज देर में मिला है ! वर्षों की प्रतीक्षा के बाद अब हाथ आया है ! या इसलिये कि यह इस पर्वतीय क्षेत्र में बीमार पड़ा है ! अकेला है ! कल्पना से दूर ! जो हो, उस युवक के मन में वहाँ पहुँचते ही, अनेक प्रकार के विचार आये और गये। वह गम्भीर बन गया। उसने सहज ही समझ लिया कि यहां आकर उसने अच्छा नहीं किया। एक विकार ही उसके मन में पैदा हो गया। उस युवक में बरबस ही, जिस प्रकार की जलन और ईर्षा की भावना पैदा हुई, उससे निश्चय ही, जैसे उसका रोम-रोम धधक उठा। उसके मन में अनायास आया कि वह उस कोमल और सुन्दर कल्पना का गला घोंट दे अथवा वहां से लौट जाये। किन्तु इतना करना भी अब उस महेन्द्र के अधिकार में नहीं रह गया था। वह जिस रास्ते पर चढ़ा और चला, उस पर काफी आगे बढ़ गया था। उसका लौटना असम्भव था। कल्पना को और उसके धन को उसने जिस दृष्टि से देखा, उसमें उसके जीवन का ममत्व एकाएक ही, आँख मूँद कर समाहृत हो चुका था !

लेकिन कल्पना और कदाचित महेन्द्र के लिये भी एक यह बात भी कम अकल्पित नहीं थी कि वह सुधीर जो हजार से ऊपर मासिक वेतन पाता, उसके अनुरूप, वहाँ ऐसा कोई प्रदर्शन नहीं था। उसके बँगले की साज-सज्जा भी बिलकुल साधारण थी। अन्यथा, कल्पना सोचती थी कि सुधीर बड़े ठाठ से रहता होगा। वह निश्चय ही, किसी सुन्दर बाला से विवाह कर चुका होगा। किन्तु वहां तो उसका एक नौकर खाना बनाता था। उस बँगले के आस-पास भी किसी नारी का निशान नहीं मिल सकता था। जिस कमरे में सुधीर सोता और बैठता, वहीं एक स्थान पर बुद्ध की प्रतिमा रखी थी। उसी के समीप एक ओर कृष्ण और राम की प्रतिमाएँ सुसज्जित थीं। उन तीनों प्रतिमाओं पर निश्चय ही रोज ताजे फूल चढ़ाये जाते थे। सुधीर उनकी पूजा भी करता था।

कल्पना एक लम्बा सफर करके वहां पहुंची थी। दो दिन, दो रात वह रेल में चली थी। इसलिये, थकी थी। उस बीमारी में सुधीर भी

काफी दुर्बल हो गया था। उसी दिन उसे थोड़ा साबूदाना दिया गया। उसकी अवस्था को देखकर, कल्पना से कहा—'माँ को क्यों नहीं बुलाया ? तुम्हारे पिता आ जाते।' वह बोली—'तुमने मुझे भी नहीं लिखा। तुमने मुझे तो सदा ही दूर की वस्तु समझा। सच, तुमने अपना बचपन भुला दिया।' वह कहने लगी—'जब आदमी बड़ा आदमी बनता है, बड़े सफर पर चलता है, तो पीछे की तरफ नहीं देखता। सच, आदमी का यही स्वभाव है।'

उस समय महेन्द्र दूसरे कमरे में सो रहा था। कल्पना स्नान करके और साड़ी बदल कर सुधीर के पास बैठी थी। जब नौकर साबूदाना बनाकर लाया तो उस रकाबी को कल्पना ने ले लिया। उसने चम्मच से वह साबूदाना सुधीर के मुँह में डाला। दो-तीन चम्मच खाकर सुधीर ने इन्कार कर दिया। जब वह थोड़ा पानी पीकर गिर पड़ा, तो कल्पना ने कहा—'मैं समझती थी कि यहाँ तुम्हारी पत्नी को पाऊँगी। पर यह घर तो सूना है। लगता है कि तुम्हारा यह जीवन—'

तत्क्षण ही, सुधीर ने कल्पना की ओर देखा। वह मुस्कराया। बोला—'मेरा विवाह होता, तो क्या तुम्हें निमन्त्रण न दिया जाता। उस अपरिचित बाला की माँग में सेंदूर तुम्हारे हाथों से ही भरा जाता।'

सुना तो कल्पना ने बाहर की ओर देखा। उसकी आँखों के समक्ष कमरे का दरवाजा था। उस समय कमरे का परदा भी उठा था। बाहर का सभी दृश्य सुगमता से दिखाई देता था। दूर गगनचुम्बी पर्वत अपनी नंगी छाती खोले खड़ा था। बड़े-बड़े विशाल वृक्ष और झाड़-झंखाड़ उस पर्वत पर खड़े थे। कल्पना ने उन्हीं पर अपनी आँखों को लगा दिया। उस अवस्था में ही उसने साँस भरी और कहा—'पर तुमने विवाह क्यों नहीं किया ! बोलो, तुमने क्या निश्चय किया ! क्या ऐसे ही रहने का विचार किया है ?'

सुधीर की दृष्टि भी उस समय बाहर की ओर उठी थी। किन्तु जब

उसने कल्पना की बात सुनी, तो तुरन्त अपनी निगाह सिकोड़ ली और कल्पना पर टिका दी। उसी को देखते हुए वह बोला—"कल्पना जी, यह विषय अब मेरे लिये महत्व का नहीं रहा। मैंने इस विषय का अर्थ भी समझ लिया।"

बात सुन ली, तो एकाएक कल्पना ने अपना मत नहीं दिया। बात सुनने के लिये उसने सुधीर की ओर देखा, परन्तु उसकी ओर देखते ही, तुरन्त फिर उसने अपना मुँह फेर लिया।

किन्तु सुधीर ने फिर कहा—'लोग मुझे बड़ा भाग्यशाली मानते हैं। गाँव से मेरे दूसरे मित्रों के पत्र आते हैं। उनसे मैंने समझ लिया है कि पिताजी ने मुझ से प्राप्त रुपयों का खूब प्रदर्शन किया है। पक्का मकान बनवाया है, जमीन खरीदी है। पर देखती हो, उस पहाड़ की ओर जहाँ सैकड़ों आदमी खुदाई का काम कर रहे हैं, वहाँ एक पूरा का पूरा नगर जमींन के अन्दर से निकला है। उस स्थल को देखकर मैंने अनुभव किया है कि धरती की मिट्टी धरती में समाती है। ऐसी अवस्था में मेरे पिता ने सुन्दर मकान बनाकर कोई बुद्धिमानी का परिचय नहीं दिया। मुझे तो लगता है कि उन्होंने एक आडम्बर बना लिया। ऐसे मनुष्य समाज का भला कब अस्तित्व रहा।' यह कहते हुए सुधीर ने साँस भरी और कहा 'कल्पना रानी, देखती हो न, वे सामने रखी तीन प्रतिमायें। उनमें एक भगवान बुद्ध की है, एक राम की और एक योगी कृष्ण की। ये तीनों प्रतिमायें इसी खुदाई में मुझे प्राप्त हुईं। इन्हें देखकर मैंने सहज ही अनुभव किया कि आज के समान कल भी और परसों भी यह मनुष्य कलात्मक था। दूरदर्शी था, विवेक से युक्त था। हमारे पुरखे जिस पथ का निर्माण कर गये, वह आज भी चला आता है। अमिट है। तुम्हारे वैधव्य की बात सुनकर मेरे जीवन में एक और अध्याय जुड़ गया। अनेक बार चाहा था मैंने कि तुम्हारे पास पहुँचूँ, परन्तु वैसा साहस मैं आज तक भी प्राप्त नहीं कर सका। विधवा के जीवन की पीड़ा को मैं भले ही

अनुभव नहीं कर पाऊँ, परन्तु उसकी कल्पना अवश्य करता हूँ। मैं सदा उससे काँपता हूँ। मेरे जीवन का यह बड़ा सुख था कि तुम सुखी हो। पर जब सुना कि तुम्हारा सुख छिन गया, तो मुझे लगा कि इस संसार के जीवन में एक और भूकम्प आ गया। धरती फट गयी और उसी में तुम्हारा सुख भी विलीन हो गया।'

उस समय कल्पना बाहर की ओर देख रही थी। जब सुधीर अपनी बात कह कर मौन बन गया। तो तभी, कल्पना ने देखा कि वह बहुत बोला है, थक गया है। उसका साँस तेज चल रहा है। यह देख, कल्पना ने एकाएक पीड़ा भरे स्वर में कहा—'अब न बोलना। कुछ न कहना। देखते हो, तुम्हारी अवस्था क्या है? कमजोरी अधिक है।'

किन्तु सुधीर ने बरबस कहा—'मैं अब क्या कहूँगा, कल्पना! तुम्हें क्या दे सकूँगा! मेरे पास क्या है!'

कल्पना ने फिर बाहर की ओर मुँह कर लिया और कहा—'तुम्हारे पास सब कुछ है। मेरी शान्ति है, चैन है। आज देर बाद मुझे लगा कि मेरा आनन्द तो यहाँ......इतिहास यहाँ!'

एकाएक सुधीर ने अपनी वाणी पर जोर देकर कहा—'भावना में मत बहो, कल्पना! वास्तविकता देखो। बताओ, यह महेन्द्र क्या अब तुम्हारे पास रहेगा?'

कल्पना ने कहा—'हाँ, यह फूवा के देवर का पुत्र है। बाहर की देख-रेख का काम इसे सोंपा गया है।'

'कुछ वेतन दिया जाता है?'

'नहीं, घर का आदमी है, आत्मीय।'

सुधीर ने बात सुन ली और मत नहीं दिया। वह मौन रह गया। उसी समय महेन्द्र सोकर उठ आया। वह भी वहीं आकर बैठ गया। बोला—'अब कैसी तबीयत है, आपकी?'

सुधीर ने कहा—'आज ठीक हूँ। साबूदाना लिया है।' उसने

कल्पना की ओर देखा, 'जरा आदमी को आवाज दो। पानी पीयूँगा। तुम लोगों के लिए चाय, नाश्ता।'

कल्पना उठ गयी। वह दूसरी ओर जाकर स्वयं गिलास में पानी ले आई। उसने सुधीर को सहारा दिया और उठाकर पानी पिला दिया।

तभी नौकर सामने आकर खड़ा हुआ। सुधीर ने कहा—'अरे, हरदेवा, देख भाई! इन मेहमानों का तो ध्यान कर! चाय और नाश्ता—'

हरदेवा ने कहा—'बाबू मैंने बाहर से सामान मँगा लिया है, चाय आती है।'

कल्पना ने कहा—'अरे, शहर से क्या मँगाया, भाई! क्या मिठाई, फल? हम घर के हैं, हरदेवा!'

किन्तु हरदेवा ने बात सुनकर, जवाब नहीं दिया। वह चला गया। कुछ ही देर में वह एक ट्रे में चाय, फल और मिठाई रख लाया। उस सामन को देख कर, कल्पना ने कुछ अप्रतिभ बनकर कहा—'अरे, तुझे मुझ से भी तो पूछना था, भैया! बता तो कितनी दूर शहर है।'

हरदेवा ने कहा—'जी, बीस कोस।'

'राम-राम व्यर्थ में कष्ट किया। कहे देती हूँ कल कुछ न मँगाना। घर में जो कुछ हो, वही खाने को देना।'

हरदेवा ने चाय बना दी। तभी कल्पना ने एक कप चाय सुधीर को दी। वह उसकी चारपाई पर बैठ गयी जिससे कि सुधीर उसके सहारे से बैठ जाये।

सुधीर ने कहा—'आज कई वर्ष बाद मैं अपनों के साथ बैठा हूँ!'

महेन्द्र ने कहा—'यह तो परदेश है। घर से बहुत दूर है।'

सुधीर बोला—'पर भैया, आदमी हर जगह बस जाता है। कहीं भी अपना मन लगा लेता है। मुझे कभी भी गांव आने का विचार नहीं होता।'

महेन्द्र ने कहा—'जहाँ रोजगार चलता है, आदमी वहीं रम जाता है।'

सुधीर बोला—'पर मैं जल्दी ही इस नौकरी को छोड़ दूँगा। स्वतन्त्र रहूँगा, घूमूँगा।' तभी उसने कल्पना की ओर देखकर कहा। 'अब तुम चाय पीओ और खाओ!' वह बोला—'तुमने आते ही इतना भार ले लिया। लगता है, अब तुमने काम करना सीख लिया। बड़ी बात है, अच्छी है, लो, पड़ जाने दो, मुझे तकिया ठीक कर दो।'

तभी महेन्द्र ने कहा—'जी, आपको बताता हूँ वहाँ शहर में ये कुछ नहीं करतीं। कभी एक गिलास भी नहीं उठातीं।'

कल्पना ने आँखों से हँसकर कहा—'झूठ!'

मिठाई खाई गयी और चाय पी ली गयी।

सुधीर बोला—यहीं से कुछ दूर पर अनेक ऐसे स्थान हैं कि जहाँ एकदिन भारतीय संस्कृति का निर्माण हुआ था। यहीं से समस्त देश में वह मन्त्र फूँका गया था।'

महेन्द्र ने कहा—'यह स्थान इतिहास प्रसिद्ध है।'

'यहाँ आपके देवता हुए, वे भगवान सिद्ध हुए!'

'यह देवभूमि है, सुधीरबाबू!'

किन्तु उस समय कल्पना उस ओर देख रही थी कि जहाँ वे तीनों प्रस्तर की प्रतिमाएँ रखी थी। वह सोच रही थी, आदमी ही देवता बनता है, फिर भगवान।'

८



नगर से चलते समय कल्पना के सामान में जहाँ अन्य सामग्रियाँ थीं, वहाँ अनेक कीमती साड़ियाँ भी थीं। सच्चाई यह थी कि कल्पना विधवा बनकर भी, अपनी वेशभूषा में, सुहागिन कल्पना को एकदम भूल नहीं बैठी थी। उसने इस प्रकार का कोई प्रदर्शन नहीं किया। जब भी वह कोई सादी धोती पहनकर घर में रहती या किसी काम से अकेली या महेन्द्र के साथ बाजार जाती, तो तब वह तुरन्त उसे रोकता। जब आया ही आया था, तो उसके समक्ष यह प्रश्न आया कि वह कल्पना को किस रूप में सम्बोधित करे। 'भाभी' कहे या 'जीजी' सो, कल्पना का और उसका यह समझौता हो गया कि एक-दूसरे को नाम लेकर पुकारें। फलस्वरूप, यही चलता था। जब एक दिन कल्पना सुधीर के कमरे में सादी धोती पहने बैठी थी, तो महेन्द्र ने उसे सम्बोधित किया और कहा—'कल्पनाजी, ये साड़ियाँ किस दिन काम आयेंगीं। जब न पहनना था, तो इतना बोझ क्यों बढ़ाया गया।'

उस समय सुधीर भी वहाँ था। वह स्वस्थ होकर अपना काम करने लगा था। उस दिन अवकाश का दिन था। उन सबका कहीं दूर घूम आने का प्रोग्राम था। सुधीर को सरकार की ओर से सवारी के लिये मोटरगाड़ी मिली हुई थी, इसलिये उसी का इन्तजार था। लेकिन जब उसने महेन्द्र की बात सुनी, तो तब, एकाएक कुछ नहीं बोला। वह कल्पना और महेन्द्र की ओर देखने लगा।

किन्तु महेन्द्र ने उसी को लक्ष्य करके कहा—'देखा, सुधीर बाबू यह आप का प्रभाव है। इस एक सप्ताह में कल्पना देवी ने अपने को बदल लिया है। कहावत तो है, जैसा देश वैसा वेश!' और वह स्वतः ही खिल-खिल करके हँस दिया।

लेकिन कल्पना को यह हास्य और अपनी आलोचना पसन्द नहीं आई। परन्तु वह कुछ बोल भी नहीं पाई।

तभी सुधीर ने कहा—'सादा वेश अच्छा होता है, महेन्द्र बाबू! मनुष्य जीवन की आवश्यकताएँ सीमित रखे, तो पैसे का भी सदुपयोग होता है और मन पर भी कम बोझ पड़ता है।'

महेन्द्र बोला—'लेकिन आज का वैज्ञानिक यह नहीं सिखाता। वह तो आवश्यकताएँ बढ़ाता है, सुधीर बाबू! इसी से तो पैसा तेजी से घूमता है। वह जिस जेब से निकलता है, तुरन्त उसी में आ जाता है। और यह तभी तो जब अधिक से अधिक विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ निर्मित हों। फिर उनके ग्राहक पैदा हों।'

सुधीर मुसकराया। कल्पना की ओर तनिक हँस दिया। बोला—'बाबू, तभी इन्सान परेशान है। जिसे देखो अर्थ-संचय में लगा है। मानो इस जगत का केवल यही एक लक्ष्य है।'

उसी समय ड्राईवर गाड़ी ले आया। सुधीर उठकर बोला—'आइये! चलो, कल्पना!' गाड़ी में सब बैठ गये। चल दिये।

तभी महेन्द्र ने बात को फिर जोड़ते हुए कहना चाहा कि तभी कल्पना ने एक अन्य प्रसंग उठाकर उस प्रस्तुत वार्ता को रोक दिया। उसने कहा—'सच, यहाँ शांति है,—अपूर्व!'

सुधीर बोला—'परन्तु यहाँ रहने और इस शान्ति का उपभोग करने के लिये भी अभ्यास चाहिये। तुम यहाँ नहीं रह सकोगी। तुम्हारा मन तो अभी ऊब गया होगा।' उसने कहा—'महेन्द्र बाबू की बात में सत्य तो था।

अच्छे कपड़े पहनने का शौक तुम्हें बचपन से था। तुम्हारी मां बचपन में ही तुम्हारे सिर के बाल सलीके से सवाँर देती थी।'

एकाएक कल्पना ने कहा—'तो तुम भी यही मानते हो।'

तुरन्त ही, जैसे आतुर बनकर सुधीर ने कहा—'मैं ऐसा नहीं मानता।' वह बोला—'सुन्दर वस्त्र, 'सुन्दर भोजन और सुन्दर शृंगारिक सामग्रियाँ उपभोग करने का सीधा अर्थ ही यह है कि भौतिक पदार्थों को अपना स्वीकार कर लिया है। जो हमारी मानसिक और शारीरिक वासना को प्रोत्साहन देता है। उसे उकसाता है। निर्धन का चरित्र बहुत अच्छा होता है, कल्पना जैसे शहरी व्यक्ति की अपेक्षा गांव के आदमी का चरित्र, परन्तु आज तो वहाँ भी भ्रष्टता है, नग्नता है। और यह सब शहरियों से उन्हें प्राप्त हुआ है।'

' महेन्द्र ने कहा—'मैं इसे नहीं मानता। गाँव में तो जड़ता है। इन्सान की क्रूरता!'

सुधीर कड़वे भाव से मुसकरा दिया—'ए भाई! वह कृपा भी बाहर से आई। वहां के इन्सान में जो राक्षस है, वह शहरों से गया है। इस पैसे का प्रदर्शन वहां भी है। पैसे के लिये वहां भी आदमी का वध किया जाता है। वहां का आदमी भी आवश्यकताओं का दास बन गया है।'

उस समय कल्पना का ध्यान उस ओर नहीं था। उसके मन में केवल एक बात थी, सच तो कहता है महेन्द्र, मैंने यहां क्यों नहीं साड़ी पहिनी। लिपिस्टिक, पाऊडर भी नहीं लगाया।

यद्यपि उस समय भी कल्पना देखने में कोई साधारण स्त्री नहीं मालूम होती थी। उसके हाथों में सोने की चूड़ियां पड़ी थीं। कुछ कांच की भी थीं। कानों में जो ईयरिंग थे, उनमें कीमती हीरे लगे थे। वे लकदक चमक रहे थे। जो धोती कल्पना ने पहन रखी थी, वह सूती अवश्य थी, परन्तु कीमती थी। उसका ब्लाऊज भी सुन्दर बूटेदार कपड़े का था। इस प्रकार कल्पना का वह रंग-रूप किसी भी सम्भ्रान्त महिला के

लिये ईर्षा की वस्तु बना था। जब सुधीर अपनी बात कह रहा था, तो कल्पना कई बार मुसकरायी और हँसी थी। उसकी वह हँसी जैसे निरी कौतुकमय थी। मानो वह अपने चिरसाथी को एक बार फिर समझने का प्रयत्न कर रही थी।

तभी मोटर एक मकान पर जाकर रुक गयी। वह एक विशाल मन्दिर था। लगता कि जैसे वह क्षेत्र मन्दिरों का गढ़ था। वहाँ अनेक मन्दिर थे। सभी पुराने। जिस मन्दिर के सामने मोटर जाकर रुकी, उसी को लक्ष्य कर सुधीर ने कहा—'यह मन्दिर हमारी संस्कृति का अमर चिन्ह है। देर से प्रहरी रहा है। इस मन्दिर के ऊपर अनेक भूचाल आये और इससे टकरा कर निकल गये।'

वे तीनों मन्दिर के अन्दर प्रवेश कर गये। भारतीय स्थापत्थ-कला का वह प्रतीक था। उस मन्दिर की दीवारों पर जगह जगह चित्रों द्वारा भारतीय-दर्शन को अंकित किया गया था। ये सुन्दर चित्र निश्चय ही, बड़े सहज भाव से और मनोयोग पूर्वक निर्मित किये गये थे। जब वे सब मन्दिर की मुख्य प्रतिमा के समक्ष पहुंचे, तो देखा कि वह एक विशाल प्रस्तर मूर्ति खड़ी मुसकरा रही थी और हाथ उठाये आगन्तुकों को आशीर्वाद दे रही थी। उसी को लक्ष्य कर, सुधीर ने कल्पना से कहा—'यही महात्मा बुद्ध हैं। इन्होंने ही अपने जीवन के मध्याह्न में राज महल को त्याग दिया था। सुन्दर पत्नी की ओर से मुँह मोड़ लिया था।'

सुनते ही महेन्द्र ने कहा—'परन्तु क्या यह अच्छा था।'

सुधीर ने जैसे चौंक कर महेद्र की ओर देखा। वह तुरन्त बोला 'भाई मत भूलो कि तुम सामाजिक प्राणी हो। तुम्हारे सामने अपने निजी स्वार्थ से ऊपर देश का और जगत का स्वार्थ है। इस महात्मा ने अपने स्वार्थ को मार कर जगत के स्वार्थ को लक्ष्य किया। उसी की वेदना में अपने को खो दिया।'

कल्पना ने सांस भर कर कहा—'मैंने इनका जीवन चरित्र पढ़ा था।'

उल्लास पूर्ण स्वर में सुधीर बोला—'ये महान मानव थे। अपने युग के श्रेष्ठ !'

महेन्द्र बोला—'सुधीर बाबू, इस देश में ऐसे विशाल मन्दिर अनेक हैं। वे आज के वैज्ञानिक युग में व्यर्थ सिद्ध हो रहे हैं। बताइये, इसमें लगाया गया धन और मनुष्य का समय क्या सार्थक सिद्ध हुआ! आज इनका वैभव भी लुप्त हो गया है।'

सुधीर ने जैसे चंचल बनकर कहा—'नहीं नहीं। ये आज भी दर्शनीय वस्तु हैं। यहाँ दूर २ के यात्री आते हैं। भगवान के दर्शन करते हैं।'

महेन्द्र जैसे कड़वे भाव में मुसकरा दिया। किन्तु सुधीर फिर बोला—'भाई तुम पश्चिमी सभ्यता में रंगे हो। परन्तु जो वास्तविकता है, वह यही है कि मनुष्य पूर्व से अपने इतिहास को, अपनी संस्कृति को मान्यता देता आया है। तुम्हारा देश भी उसी पर खड़ा है।'

मन्दिर का वह विशाल प्रांगण, दीवारों पर खुदे हुए चित्र कल्पना ध्यान से देख रही थी। उस अवस्था में ही वह पीछे छूट गयी। उसी समय महेन्द्र दूसरी ओर बढ़ गया। जब कल्पना समीप आई, तो सुधीर उसी को लक्ष्य करके बोला—'कल्पना, यहां आकर मेरे मन पर एक अजीब प्रभाव पड़ा है। तुमने मुझसे प्रश्न किया था न कि मैं विवाह क्यों नहीं करता, तो इस मन्दिर में खड़े होकर तुम्हें बताता हूँ कि इन देवालयों को देख, मैंने सदा अनुभव किया कि विवाह केवल शरीर की भूख मिटाने का साधन है। फिर मैंने तुम्हारी अवस्था को देखा। सच, मैं बिल्कुल ही, विवाह की बात से दूर हो गया। मुझे उसमें कोई भी तत्व दिखायी नहीं दिया।' यह कहते हुए, सुधीर फिर प्रतिमा के पास पहुंच गया। वह थक गया था। बुद्ध की प्रतिमा के सामने घृत का एक बड़ा दीपक जल रहा था। उसके प्रकाश में प्रतिमा दमदम दमक रही थी। फूलों का एक कण्ठहार उस प्रतिमा के गले में पड़ा था। सुधीर वहीं बैठ गया। कल्पना को भी बैठने के लिये कहा। तभी उसने कल्पना की ओर देखा और बोला—

'कल्पना रानी, इस प्रतिमा के समक्ष बैठकर कहता हूँ कि मैं तुम्हें एक क्षण के लिये भी नहीं भूल सका। पहिले गांव इसलिये नहीं गया कि तुम्हारा मेरा सम्बन्ध आगे न बढ़ जावे। मेरे कारण तुम्हारी प्रतिष्ठा पर आघात न पहुंचे। परन्तु जब तुम्हारा विवाह हुआ, तो तब भी इच्छा करके मैं वहाँ नहीं पहुँचा। मैं जानता था कि कल्पना बचपन के साथी को भूल नहीं सकी होगी। उस याद को ताजी कराना अच्छा नहीं होगा। लेकिन जब तुम वधू बनीं, तो मेरा मानस बरबस चीख उठा। मैं अपने पास ऐसी शक्ति नहीं पा सका कि तुम्हारे पास पहुँचूँ और तुम्हारे उन आँसुओं को देख शान्त रह सकूँगा। सच, मैं कल्पना······'

कल्पना का मुँह उस समय प्रतिमा की ओर था। उसकी आँखों के पलक उठे। आँखें भरी थीं। जैसे ही, उसने पलक गिराये कि वे भरी आँखें उसके गोरे गालों पर ढुलक आईं। यह देख सुधीर जैसे चौंक गया। उसने आहत हुए स्वर में कहा···'तुम रोती हो, कल्पना!'

कल्पना ने तुरन्त ही अपने स्वर पर झटका-सा खाया और सुधीर की ओर देखा। उसने कहा—'मैं अधीर हूँ, सुधीर बाबू! मैं अपने बचपन की याद आज भी आपके मानस में छिपाये हू। वह कभी नहीं भूल सकी। तुमसे कहती हूँ कि मैं यहाँ भी उसी स्मृति को लिये आई हूँ। पर तुम ······सच, तुम······'

एकाएक सुधीर अतिशय चंचल बन गया। उसने अपना मुँह प्रतिमा की ओर कर लिया और बोला—'कल्पना देवी, मत भूलो कि तुम्हारे समान मैं भी दुर्बल हूँ। मैं योगी नहीं हूँ। प्रकाश पाकर भी, अपनी आँखों में अंधेरा देखता हूँ। देखती नहीं हो, मुझे आज वर्षों हो गये हैं अपने गाँव गये। मैं सहज ही कल्पना करता हूँ कि मेरे लिये वहाँ विविध प्रकार की धारणायें बन गयी हैं। कोई कहता है कि मैंने विवाह कर लिया है। कोई कहता है मैंने सन्यास मार्ग का चयन किया है। परन्तु सचाई तो तुम्हारे सामने है कि मैं कुछ भी नहीं हूँ। पेट भरने के लिये नौकरी करता हूँ। पूरा संसारी व्यक्ति बना हूँ।'

कल्पना ने तभी अपने मन का चोर पकड़ा और कहा—'पिछली रात में तुम अपने बिस्तर पर नहीं थे। बताओगे कहाँ गये थे ?'

सुना, तो तुरन्त ही, सुधीर ने कल्पना की ओर देखा। वह हँसा बोला—'तो समझा मैं, तुमने आते ही, मुझ पर पहरा देना आरम्भ कर दिया है। मैं कहाँ जाता हूँ, क्या करता हूं, यह तुमने बचपन में भी देखा था। वही आज।'

कल्पना ने तुरन्त ही, आतुर बनकर कहा—'न, न, मैं जाग गयी थी। फिर तुम्हारे कमरे में उठ आई थी। उस समय कहीं दूर पर्वत पर शेर चिंघाड़ रहा था। मुझे भय लग रहा था।' वह बोली—'परन्तु तुमसे कुछ कहना, तुम्हारी गतिविधि देखना मुझे आज भी अच्छा लगता है। जाने मेरा यह स्वभाव कितना गहरा बन गया। मन मे दूर नहीं होता।

सुधीर ने अत्यन्त भावुक बनकर कहा—'तुम्हारी यही महानता है, कल्पना रानी, इस सुधीर के जीवन का यही तो एक सुख है। यही इसकी याद है। कहूँ कि इसके जीवन का सम्बल !'

तभी, मानो कल्पना के मन पर कोई पत्थर गिर पड़ा। उसका मन चीख उठा। घायल हो गया। उसने तड़पकर कहा—'पर मैं क्या······हाँ, क्या सुधीर बाबू ! मुझे देखते हो !'

सुधीर ने कहा—'चंचल मत बनो। समझो, हम दोनों दुर्बल हैं, निस्तेज हैं। तुम जिस भगवान के चरणों में बैठी हो, उससे आशीर्वाद ग्रहण करो। मैं रात कहाँ गया था, चाहो तो आज तुम भी चलना। अपनी आँखों से देखना !' उसी समय वह खड़ा हो गया। तभी उस मन्दिर का पुजारी वहाँ आया। वह एक वृद्ध व्यक्ति था। नितान्त सौम्य ! गम्भीर ! उसके आते ही, सुधीर ने पुजारी के चरण पकड़ लिये। वे चरण कल्पना ने भी स्पर्श किये। यह देख पुजारी मुसकराया। बोला—'तो आप अब स्वस्थ हैं न, सुधीर बाबू !'

सुधीर ने कहा—'जी, आपकी कृपा है।'

'और ये देवि,—ये—'

सुधीर ने बताया—'ये मेरे गाँव की है। भेंट करने आई हैं।'

'अच्छा, अच्छा। सुखी रहो।'

सुधीर बोला—'पुजारी जी, इस बेचारी कल्पना के साथ भगवान ने भी न्याय नहीं किया। इस आयु में वैधव्य दे दिया।'

पुजारी गम्भीर था। बोला—'भाई, भगवान कुछ नहीं करता। संयोग की बात।'

सुधीर ने कहा—'जी, सब संयोग की बात है।'

उसी समय महेन्द्र उधर आ निकला। आकर बैठ गया। सुधीर ने उसका भी परिचय दिया।

पुजारी ने कहा—'इस युवक को मन्दिर के प्रति ममता नहीं। अभी एक व्यक्ति से कह रहा था, व्यर्थ ही इतना पैसा मन्दिर निर्माण में व्यय किया। मैंने उधर से निकलते हुए सुन लिया था।' यह कहते हुए पुजारी मुसकरा दिया।

सुधीर ने कहा—'यह भी संस्कारों की बात है, महाराज! आज की शिक्षा भी सहायता करती है।'

पुजारी ने कहा—'इसीलिये संसार त्रस्त है और दुःखी है।'

महेन्द्र उस समय कुछ कहना चाहता था, परन्तु वह बोल नहीं सका। बाहर अंधेरा बढ़ रहा था। सूरज डूब रहा था। इसलिये सुधीर पुजारी से आज्ञा लौटने के लिये चल दिया। जिस समय सब लौटे, तो मौन थे, जैसे भारी बन गये थे। वे तीनों अपनी अपनी दिशा में खो चुके थे।

९



महेन्द्र अपने जन्म काल से ही भाग्य के झूले में झूलता आया था। वह मध्यवर्गीय समाज में अवश्य पैदा हुआ, परन्तु उसे कभी किसी बात का अभाव अनुभव नहीं हुआ। कदाचित् यही कारण था कि महेन्द्र सदा ऊँचाई की ओर देखता। अपने विद्यार्थी जीवन में भी उसने सदा खर्चीला जीवन व्यतीत किया। मां-बाप का इकलौता और लाडला पुत्र होने के कारण उसकी प्रायः सभी उचित आकांक्षाएँ पूर्ण की जाती। इसलिये महेन्द्र पूरा साहब बहादुर रहता। वैसे उसका अध्ययन भी विशाल था। वह बुद्धि का मेधावी और कुशल था। अपनी क्लासों में वह सदा फर्स्ट आया। जब वह नगर में आया, तो उसे शंका थी कि आगे कल्पना से उसका मतैक्य होगा या नहीं, परन्तु ऐसी अवस्था एक बार भी नहीं आई कि जब उसका और कल्पना का किसी बात पर विरोध हुआ हो। सचाई यह थी कि कल्पना स्वतः एक ऐसे साथी की इच्छा रखती थी। भले ही, कल्पना ने अपने पति की अनेक आदतों को स्वीकार नहीं किया, पति का शराब पीना उसे अच्छा नहीं लगा, किन्तु उसका पति किसी पार्टी में जाता, कल्पना को सिनेमा ले जाता, तो वह उसे सदा ही रुचिकर लगता था। यद्यपि, नलिन और सुधीर की तुलना में, उसे सदा कष्ट हुआ, सुधीर कभी भी भुलाये नहीं भूला; लेकिन जब नलिन के बाद महेन्द्र उसकी सीमा में आ गया, तो वह एक व्यवहार कुशल और मेधावी युवक उसे किसी प्रकार भी असंगत और अशोभनीय नहीं लगा। शराब से

महेन्द्र भी चिढ़ता। परन्तु नाटक, सिनेमा और सैर-सपाटे करना उसे भी पसन्द था।

निःसन्देह, विधवा बनने के बाद भी, कल्पना के बाहरी रूप में किसी प्रकार के परिवर्तन का न आना, इस बात का स्पष्ट प्रमाण था, वह इस सूचना का द्योतक था कि कल्पना के पास उसके जीवन की इच्छाएँ जागृत थीं। वे न सोई थीं, न मरी थीं। और इस प्रेरणा को प्रोत्साहित करने में महेन्द्र का बड़ा हाथ था। उसने अनेक बार कल्पना को सुनाया कि जो नारी विधवा बनकर वैसा ही रूप धारण करती है, सती होती है; मरे हुए पति की याद में अपना जीवन दुःसह बनाती है, निःसन्देह, वह नारी अपने हाथों से अपना जीवन का गला घोंट देती है। इस विषय में कल्पना के पिता और माँ ने भी अपनी पुत्री को कम प्रोत्साहित नहीं किया। उन्होंने कल्पना को अच्छा खाने और अच्छा पहनने के लिये सदा ही उत्साहित किया। उनकी पुत्री सुन्दर कांच की चूड़ियाँ पहिने, अच्छे वस्त्र धारण करे, ऐसा निर्देश सदा ही, कल्पना को दिया गया। कल्पना अपने जीवन में हँसे, इसी मान्यता को पिता और माँ ने सदा स्वीकार किया। यही प्रवचन उन्होंने पुत्री को दिया।

उस दिन जब कुछ मन्दिरों को देख कर संध्या के धूमिल प्रकाश में सुधीर, कल्पना और महेन्द्र लौटे, तो वे बँगले पर पहुंच सीधे अपने २ कमरों में चले गये। कल्पना अपने कमरे में जाकर बिस्तर पर जा पड़ी। उस समय वह कुछ अधिक अशांत थी। वह रास्ते भर मौन रही। मानो उस दिन सुधीर ने और मन्दिर के पुजारी ने उसके समक्ष जीवन को एक नयी दिशा निर्मित कर दी थी। जिस समय कल्पना अपने बिस्तर पर पड़ी थी, तो तब, उसकी आँखों में वह दिव्य दर्शन मन्दिर का पुजारी जम गया था। निश्चय ही, ऐसा व्यक्ति कल्पना ने अपने जीवन में नहीं देखा था। यद्यपि उसके सिर और दाढ़ी के बाल मुँड़े हुए थे, परन्तु वह आयु का कम नहीं था। रास्ते में पुजारी ने बताया था कि

वह पुजारी एक सम्पन्न घराने का व्यक्ति था। जीवन भर अविवाहित रहा। विश्व के अधिकांश देशों का अनेक बार भ्रमण कर आया। तिब्बत में अधिक रहा। उसी प्रसंग में उसने बताया था कि यह पुजारी धर्मशास्त्रों का महान विद्वान है।

किन्तु रास्ते में कल्पना ने अपना कोई मत नहीं दिया। वह मौन बनकर सुधीर की बात सुनती रही। महेन्द्र रास्ते में आए पहाड़ों की ओर देखता रहा। वह आगे की सीट पर ड्राइवर के पास बैठा था, इसलिये सुधीर की किसी बात में भी, उसका ध्यान नहीं था।

लेकिन जब कल्पना बिस्तर पर पड़ी हुई उस मन्दिर के पुजारी के विषय में सोच रही थी, तो उसे लगा कि जैसे वह दिव्य-रूप पुजारी कमरे में उसके सामने खड़ा है। वह उसी की ओर देखकर मुसकरा रहा है। मानो उसे संकेतों द्वारा कोई उपदेश दे रहा है।

उसी समय नौकर वहाँ आया और बोला, 'बीबीजी, खाना तैयार है।'

कल्पना चौंक गयी और बोली—'हाँ हाँ, तुम्हारे साहब कहाँ हैं।'

'वे आपके लिये बैठे हैं। बुला रहे हैं।'

कल्पना खड़ी हो गयी। दूसरे कमरे में जाकर देखा कि सुधीर और महेन्द्र उसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं, देखकर सुधीर ने कहा—'क्यों नींद आ गयी थी, क्या ?'

कल्पना ने कहा—'नहीं थक गयी थी, पड़ी थी।

वह खाने के थाल पर बैठ गयी। वह उस खाने को देखकर बोली—'कल ही तुम्हारा नौकर कह रहा था कि साहब बहुत सादा खाना खाते हैं।' वह हंस कर बोली—'शायद नौकर का यह भी तात्पर्य था कि हम लोग देर तक रहें तो रसोई घर का सौभाग्य जागता रहेगा।'

इतनी बात सुनकर सुधीर भी हंस दिया। बोला—'ठीक तो कहता था बेचारा। मेरा खाना तुम कभी भी पसन्द न करोगी। कदाचित महेन्द्र बाबू तो देखें भी नहीं। इस प्रकार की अनेक सब्जियाँ, पूरी और

मीठाई मैं नहीं खाता। मन को अच्छा भी नहीं लगता। और जब मैं नहीं खाता, तो नौकर बेचारा भी कैसे खायेगा।'

महेन्द्र ने कहा—'लेकिन आप ऐसा करते क्यों हैं। क्या आप इच्छा मारते हैं।'

सुधीर ने बात सुनी, तो महेन्द्र की ओर देखा। तदनन्तर ही उसने कहा 'हाँ भाई ! मैं इच्छा को भी मारता हूँ।'

महेन्द्र बिना रुके बोला—'यह बुरा है। इस वसुधा पर जो वस्तु उत्पन्न हो, उसका उपयोग करना मनुष्य को सोहाता है। इच्छाओं का मारना भी पाप है।'

सुधीर बोला—'इस पाप-पुण्य की परिभाषा असीमीत है, मेरे भाई ! परन्तु इतना मैं सोचता हूँ, जो कुछ मैं खाता हूँ, वह मुझे पसन्द आता है।'

महेन्द्र ने कहा—'आपके पास यह इतना बड़ा बँगला है। खाली पड़ा है। भला आपका सामान क्या है। जितना सामान आपके समूचे घर में नहीं, उतना तो सफर करते हुए हम दोनों के पास है।'

सुधीर हंस पड़ा—'अरे, तुम बड़े आदमी हो महेन्द्र बाबू ! तबीयत के और भाग्य के धनी हो। कल्पना ने मुझे बताया है कि तुम्हारे पिता के पास बड़ी जायदाद है भला मेरी तुम्हारी समता क्या ! मैं एक गरीब किसान का लड़का ठहरा।'

महेन्द्र ने कहा—'लेकिन इस समय तो आप बड़े आफिसर हैं, भाग्य तो आपका अच्छा कि इतनी जल्दी आगे बढ़ गये। साधारण क्लर्क से इतने ऊँचे उठ गये। बताइये, इसका ही आपने क्या उपयोग किया ?'

उस समय सुधीर गम्भीर बन गया, उसने कहा—'भैया, तुम जिस उजले और अच्छे भाग्य की बात कहते हो, उसे मैंने कभी स्वीकार नहीं किया। मैं इसे अकस्मात् पाया हुआ अवसर मानता हूँ। भला इससे ही मुझे क्या मिला ! सरकार के एक दफतर का ही तो अफसर बन गया।

रुपया अधिक पाने लगा ! अरे, तुम इसी को इन्सान की उन्नति क्यों मान बैठे भैया। ऐसा है, तो इस देश में अनेक करोड़पति और अरबपति पड़े हैं। इस प्रकार तो ये सभी महान हैं। तुम उन्हीं को जीवन का देवता मनोगे ! पर मैं नहीं...........हाँ नहीं !'

मानों चकित बनकर, महेन्द्र ने सुधीर की ओर देखा और कहा—'तो आप पैसे को महत्व नहीं देते।'

सुधीर ने तुरन्त कह दिया— 'कदापि नहीं !' वह बोला—'पैसा तो जीवन यापन एक आधार है। वह शरीर की भूख मिटा सकता है, आत्मा की नहीं !'

'सुधीर बाबू !' महेन्द्र जैसे अपनी बात पर कीली की तरह खड़ा हो गया। उसने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'यह आपही कह सकते हैं, कोई और नहीं। अन्यथा, जिस पैसे से रोटी मिलती है, हवा मिलती है रहने को मकान मिलता है और शरीर पर धारण करने के लिये वस्त्र वह पैसा यों ही दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता ! मेरा मत है कि पैसा शरीर की भूख ही शान्त नहीं करता, आत्मा का भी पेट भरता है। भूखे शरीर के अन्दर बैठी आत्मा का चीत्कार आदमी को क्या चैन लेने देता है,—कदापि नहीं !'

सुधीर ने अपना भोजन समाप्त कर लिया था। कल्पना भी खा चुकी थी परन्तु महेन्द्र ने जिस बल के साथ अपनी बात कही, उससे सहज ही पता चला कि वह उसके विश्वास का अमिट बल था। उसका चेहरा भी लाल पड़ गया। यही देख कर, कल्पना ने भी मुसकरा कर कहा—'भोजन पहिले करो, बात पीछे।'

महेन्द्र बोला—'मैं भोजन कर चुका। उठो।'

सुधीर ने कहा—'नहीं, यह रसगुल्ला रखा है। और पूरी ! झूठन तो नहीं छोड़नी चाहिये। यह देखो, कल्पना ने भी छोड़ दी है।' वह

हँस कर बोला—'जिस अन्न की तुम लोग इतनी हिमायत करते हो, जीवन पाते हो, उसी का यों तिरस्कार भी करते हो।'

कल्पना ने कुछ अनमने मन से कहा—'खाना अधिक था।'

सुधीर बोला—'कम लेना था, लौटा देना था।'

वह बोली—'अच्छा, आज से झूठन न छोड़ा करूंगी।'

किन्तु उसी समय महेन्द्र ने रसगुल्ला खा लिया। उसने पूरी और आग भी समाप्त कर दिया। वह खड़ा हो गया। जब मुंह साफ करके कल्पना अपने कमरे की ओर जाने लगी, तो तभी, उसने महेन्द्र को रोक कर कहा—'सुधीर बाबू से बहस मत किया करो। मुझे ऐसा लगा कि उनका पथ और है, तुम्हारा और।

महेन्द्र ने बात सुनी तो हँस दिया। अपने कमरे में चला गया। कल्पना फिर अपने बिस्तर पर पड़ गयी। वह जल्दी सो गयी। रात में नौकर दूध का गिलास लाया और रख गया। किन्तु वह दूध वैसे ही रखा रहा। न कल्पना की आँख खुली, न उसने गिलास की ओर देखा। किन्तु जब लगभग आधी रात हो चली थी, तो तभी, एकाएक, कोई अजीब सा स्वप्न देखते हुए, कल्पना की आँख खुल गयी खिड़की से देखा तो बाहर चांदनी थी। दूर खड़ा पर्वत भी उस चाँदनी में बड़ा भयावना लग रहा था। जैसे कोई विशाल राक्षस, खड़ा हुआ उसी की ओर घूर रहा था। उस अवस्था में कल्पना की नींद टूटी, तो वह फिर एकाएक नहीं सो सकी। वह उठ कर बैठ गयी। उस अवस्था में उसे कमरे में गर्मी अनुभव हुई। इसलिये बाहर के मैदान में फैली हुई चांदनी को लक्ष्य कर वह बाहर जाने के लिये उद्यत हो गयी। किन्तु उसे अपने कमरे से बाहर जाने के लिये जो रास्ता था—वह सुधीर के कमरे में से था। निदान जब वह उठी, तो आहिस्ते से पैर उठा उस कमरे को पार करने लगी। किन्तु जैसे ही वह सुधीर की चारपाई के पास से निकली, तो उसे यह देखकर हैरानी हुई कि सुधीर अपने बिस्तर पर नहीं था। दरवाजा भी खुला था।

यह देख, विस्मय के साथ कल्पना उस कमरे से बाहर निकली। उसने दूर तक दृष्टि दौड़ाई तो सुधीर कहीं नहीं था। किन्तु उस अवस्था में कल्पना निश्चय ही उसे पाना चाहती थी। निदान, वह बंगले से दूर चली गयी। तभी उसे दिखायी दिया कि एक पथरीली चट्टान है और उसी पर सुधीर नीचे पैर लटकाये बैठा हुआ है। उसका मुँह चाँद की ओर उठा है। वहाँ जाते ही कल्पना ने समीप पहुंच कर कहा—'तो तुम यहाँ हो·········इस रात में !' यह कहते हुए, उसने नीचे खड़े-खड़े लटकते हुए सुधीर के पैरों को पकड़ लिया।

उस अवस्था में सुधीर चौंक गया। उसने अपना मुँह नीचे गिरा लिया और अपने पैरों के पास खड़ी हुई कल्पना को देखकर बोला—'अरे तुम·········ओह !' उसने कहा—'मैं तो प्रायः यहाँ आ बैठता हूँ। इस रात में शांति पाता हूं। देखती तो हो कि दिन में नौकरी का काम करता हूँ। एक बड़े कोलाहल से अपना सिर मारता हूं।' यह कहते हुए वह उस पथरीली शिला से नीचे कूद पड़ा। वह कल्पना का कन्धा पकड़ कर एक ओर बड़े पत्थर की ओर बैठने के अभिप्राय से बढ़ता हुआ बोला—'पर तुम कैसे उठ आईं। इतनी दूर चली आईं।' यह कहते हुए वह उस पत्थर पर बैठ गया। कल्पना को भी बैठा लिया। तभी उसने फिर कहा—'कल्पना जगत के बहुधन्धी समाज में रह कर आदमी कुछ सोच नहीं पाता। जिन्दगी की शांति सभी चाहते हैं, परतु उसकी खोज कोई नहीं करता। लेकिन मैं तो अनुभव करता हूँ प्रकृति के इस विराट सौंदर्य को देखकर जगत के ऐश्वर्य को भोगने की इच्छा करना भी उपहास है। यह सभी कुछ मिथ्या लगता है। जैसे वह कोरी आत्म-प्रवञ्चना है।' यह कहते हुए सुधीर ने कल्पना की ओर देखा। उसे लगा कि कल्पना का वह रूप, वह यौवन प्रकृति के उस रूप से होड़ लगा रहा रहा था। वह प्रतिस्पर्धा के क्षेत्र में उतरी थी। क्योंकि उस समय सचमुच कल्पना

नितान्त स्वाभाविक और अपूर्व सौंदर्य से पूर्ण थी। शरीर के उस यौवन पर कोई बनाव शृंगार नहीं था। रात की उस चाँदनी में वह गोरी कल्पना जैसे दमदम दमक रही थी। उसके कानों में जो ईयरिंग थे और उनमें हीरे जड़े थे, तो वे भी बार-बार चमक उठते थे। इस लिये कल्पना के उस रूप को देख, जैसे निरे आसक्त हुए व्यक्ति के सदृश सुधीर ने कुछ और निकट होकर अपनी बात कही—'कल्पना, कभी सोचा तुमने कि तुम्हारा यह रूप, यह अलौकिक यौवन इस प्रकृति माता की देन है...... इस धरती की देन है। सच, बुरा न मानना, तुम अत्यन्त सुन्दरी हो। नहीं जानता कि तुम मेरे किस जन्म जन्म के अच्छे संस्कारों के फल स्वरूप, मेरे निकट आ सकी हो। तुम्हें अपने समीप पाता हूं तो मैं खो जाता हूँ .....मैं तो इस जगत के सौंदर्य में——सच, तुम में——मा जगदम्बा का रूप पाता हूँ। तुम मेरे निकट रहो, तो मैं निश्चय ही, अपने तईं इस धरती पर स्वर्ग पा सकता हूँ।'

लेकिन उस अवस्था में, जिस सुगमता से सुधीर ने अपनी बात कही, उस सरलता के साथ स्वयं कल्पना उसे समझ न सकी। मानो उसके लिए वह अत्यन्त भारी बात थी। इस लिये जब उसने सुधीर से अपनी प्रशंसा सुनी, तो लाल पड़ गयी। उसकी आंखें झुक गयी और वह इतनी शर्मीली बनी, कि कटी डाल के समान, जैसे घायल पंछी की तरह, बरबस ही, सुधीर की गोद में गिरती हुई बोल पड़ी—मेरे, तुम...... तुम मेरे.........

१०



किन्तु उस समय सुधीर अत्यन्त गम्भीर था, जैसे पत्थर! जब उसने कल्पना को अतिशय भावुक और उसके प्रति ममता से भरी पाया, तो बरबस, सुधीर का हाथ उसके सिर पर चला गया। वह कल्पना के उन काले और घुँघराले बालों पर हाथ फेरने लगा। उसी अवस्था में उसने कहा—'कल्पना रानी, मैंने देर से सुना है, आज के पुजारी ने भी मुझसे एक बार कहा था कि इन्सान का यह जीवन एक बड़ी प्रयोगशाला है। सो, देखती हो न तुम, मैं भी प्रयोग कर रहा हूँ। इस इन्सान के जीवन का अध्ययन करने में लगा हूँ। क्या तुम ऐसा नहीं कर सकतीं! न, तुम भी ऐसी साधना में अपने को लगाओ, कल्पना!'

कल्पना ने सुधीर की गोद से अपना मुँह उठाया। उसकी आँखें साफ थीं। उनमें उद्वेग नहीं था। केवल ममत्व ही भरा था।

उन्हीं स्नेहमयी और प्रेरणामयी आँखों को देख, सुधीर ने फिर कहा—'कल्पना, माता-पिता ने तो मुझे पैदा किया, इसलिये उनके प्रति अपने कर्तव्य को पूरा करता हूँ। उनके आदेश का पालन करता हूं। परन्तु तुमने जो मुझे अपने कौमार्य में स्नेह प्रदान किया, वह तो मेरे जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण सोपान बन गया है। तुम्हारी जब भी मैं कल्पना करता हूँ तो मैं अपने विचारों की ऐसी दुनियां में पहुँच जाता हूँ

कि जहां समर्पण की कल्पना के अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं दिखायी देता। तुमने अपने वैवाहिक जीवन में पहुँच कर कदाचित सोचा होगा कि सुधीर पत्थर है.........जड़ है! न, कल्पना! इस सुधीर ने तुम्हारी कल्पना में जाने कितनी रातें जाग कर व्यतीत कर दी हैं। लेकिन उन रातों में, तुम्हारी कल्पना करते-करते मैं तुममें ही जिस अपूर्व ममतामयी देवी के दर्शन कर सका, वह क्या मैं यों सुगमता से शब्दों में व्यक्त कर सकता हूँ। उस अवस्था में ही, मैंने नारी और नर के अस्तित्व को समझा है। मैंने यह भी जानने का प्रयत्न किया कि दो प्राणी कि जो जगत के छोटे-बड़े सभी प्राणियों के समान, अपने शरीर का व्यापार करते हैं, शरीर की भूख मिटाते हैं, उसकी उपयोगिता क्या है। वह वासना की आग इस नर और नारी को किस प्रकार भस्म कर पाती है!......ए कल्पना! तेरा यह सुन्दर रूप, तेरे शरीर की यह कमनीय कांति मैं तो क्या, देवताओं को अपनी ओर आकर्षित कर सकती है। लेकिन मैं तुम्हारा सदा ऋणी रहूँगा कि मेरा मानसिक और चारित्रिक धरातल तुम्हारे बाल-जीवन की कथाएं याद करके कभी भी पराभव नहीं हुआ। उसने मुझे जीवन के रास्ते पर नहीं गिरने दिया। मैंने तुम्हारी कल्पना को छोड़ कभी भी किसी नारी की कल्पना नहीं की। मैं अपने माता-पिता को भी नहीं समझा पाता कि मेरा विवाह तो.........मेरी पत्नी...........'

एकाएक कल्पना चीख पड़ी और उसने अपना मुँह हाथों से ढक लिया।

किन्तु सुधीर ने फिर उसके सिर पर हाथ रखा और कहा—'परेशान न हो, कल्पना! तुमने मेरा कोई अहित नहीं किया। बस, इतनी ही तो बात कि बचपन में एक कल्पना नाम की लड़की मेरे जीवन में अपने आप ही आकर बैठ गयी। वह जैसे मेरी आत्मा में घुस गयी। अब मैं लाख चेष्टा करूं तो वह निकल सकती है! भला उसके स्थान पर कोई और नारी आकर बैठ सकती है,—न, कदापि नहीं। यह एक

जीवन के संकल्प की बात है। जो बार-बार नहीं होता। यह इन्सान का जीवन अध्यात्म की एक कसौटी है।

तभी कल्पना ने अपना मुँह उठाया और आँखों से रोकर कहा—'मैं तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत हूँ, सुधीर बाबू! मैं अब भी तुम्हारी हूँ।'

सुधीर ने भरी आवाज़ में कहा—'हां, हां, तुम मेरी हो। रहोगी, भला इसमें आश्चर्य कैसा! लेकिन जिस बचपन की साथिन कल्पना की मैं खोज में हूँ, वह तुम नहीं हो। तुम बदल चुकी हो। तुम तो अब वासना कीचड़ में फँस चुकी हो, कल्पना देवी! चाहो, तो मैं तुम से भिक्षा मांग सकता हूँ कि मेरी बचपन की साथिन कल्पना को मुझे दे दो। यह तुमने छुपा ली है। अब तुमने उससे उपेक्षा भी करनी आरम्भ करदी है। सचमुच, तुम्हें अब अपने बचपन की याद नहीं आती। वह पवित्र कल्पना तुम्हें भी नहीं दिखायी देती। पर मुझे दीखती है। वह सदैव मेरी आँखों में रहती है।' यह कहते हुए सुधीर ने जैसे घूर कर कल्पना की उन लाल-लाल आँखों को देखा कि जिनमें पीड़ा थी और आंसुओं की बूँदें भरी थीं। उसी प्रकार देखते हुए वह बोला—'कल्पना, किसी ने सच ही कहा है कि युवा और युवती जब वासना रूपी राक्षसी-वृत्ति की पूजा करने के लिये उद्यत होते हैं, तो वे बचपन की कोमल भावना का आदर नहीं कर पाते। मैंने अपने एक मित्र के पत्र से यह पा लिया था कि तुम्हारे दिवगंत पति शराबी थे, वे पैसे वाले थे, सो, ठीक ही है, वे महाशय तो असमय अपनी यात्रा समाप्त कर गये, परन्तु जिस आग में तुम्हें झोंक गये, वह कठोर है। तुम्हें जला रही है। देखता हूँ उस आग की पीड़ा तुम्हें यहाँ तक खैंच लायी है। क्यों, ठीक है न, सोचा होगा तुमने कि बचपन के प्यार का भागीदार सुधीर अभी अविवाहित है। अकेला है। पर मैं तुम्हें बताये देता हूँ, मैं कभी भी अकेला नहीं रहा। मेरे पास मेरी कल्पना सदा रही है। जो मेरे हृदय के बहुत ऊँचे आसन पर प्रतिष्ठित है। मैं उसकी पूजा करता हूँ। मैं यह

नहीं देखता कि कितनी सुन्दर है। उसका नखशिख कैसा है। अरे, वह तो मेरे जीवन का समूचा सौन्दर्य, सुख और चैन प्राप्त करने में समर्थ बन चुकी है। बोलो बचपन की कल्पना से श्रेष्ठ तुम हो सकती हो। मेरा मत है, तुम नहीं! चाहे तुम कितनी सजो, कितनी मनोरम लगो, पर बचपन की कल्पना के चरणों की धूल भी तुम नहीं प्राप्त कर सकतीं। तुम तो आज स्वयं अशान्त हो। रात जाग कर काटती हो। तुम यौवनमयी नारी हो न, तो तुम किसी सुन्दर नर की कामना करके ही, अपना जीवन बिताना पसन्द करती हो! बोलो, यह कैसी कषैली और विषैली भावना है, तुम्हारी! क्या कभी सोचा तुमने कि जीवन का यह नाम नहीं है। किसी क्षण भी तुमने इस बात का ध्यान किया कि तुम्हारे पति के समान तुम्हारा यह सुन्दर शरीर भी एक दिन राख हो जाना है। पति शराब पीता था और अनेक नारियों से सम्पर्क स्थापित करता था, पर तुम······हो, तुम! बोलो, कोई अन्तर है, दोनों की अवस्था में! तुम सोचती हो कि जिस प्रकार नित्य भोजन किया जाता है, तो उसी प्रकार नित-नये व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित कर वासना का भी पोषण किया जाय! अरी, कल्पना! कभी समझा तुमने कि मौत तुम्हारे समीप खड़ी हुई खिलखिला रही है। वह क्रूर मूरत अपने दाँत किटकिटा रही है। तेज आँखों से घूर रही है। वह इस शाश्वत प्राणों से भरी देह को निःशक्त कर देने वाली है······सच, चूसने वाली है!'

कल्पना की आँखों के आँसू अभी नहीं सूखे थे। अपितु वह बहे जा रहे थे। क्योंकि सुधीर जो कुछ कह रहा था, उससे, मानो कल्पना के मन का अहं भाव अपना स्वांस घुटता हुआ पा रहा था। उसका सम्मान चुटीला बन गया था। उस अवस्था में ही, उसे कई बार सुधीर को रोक देने का विचार आया। बात भी उसके मुंह पर आई, परन्तु हाय! उसे ऐसा साहस प्राप्त नहीं हुआ। मानो सुधीर के समक्ष उसका अस्तित्व क्षार-क्षार हो चुका था।

उसी समय सुधीर बोला—'देखती हो, इस सिर के ऊपर उजागर हुए चन्द्रमा की ओर, यह कितना उदार है कि स्वयं जलता है और समूचे जगत को यह शीतल प्रकाश प्रदान करता है। तुम आज यहाँ के जिस मन्दिर में गयीं और उसका पुजारी देखा, निश्चय ही, तुम्हें सभी कुछ अटपटा लगा हो। तुम्हारा इस उजाड़ जंगल में भी मन नहीं लग रहा होगा। मैं यह भी मानता हूँ कि मेरी बातों से भी तुम्हें कोई लगाव नहीं होगा। लेकिन जो बातें मैं किसी से नहीं कह सका, वह तुम से कह सकता था। समाज की दृष्टि में तुम भले ही दिवंगत नलिन बाबू की पत्नी बनीं, पर मैं तो समाज के ऊपर बैठे परमेश्वर को साक्षी बनाकर कह सकता हूं कि मन और वचन से तुम मेरी थीं और मैं तुम्हारा! परन्तु जैसा कि सत्य है, बहुधा होता है, परिस्थितियां सभी को विवश करती हैं। सो, तुम्हारे सामने भी यही प्रश्न आया। परन्तु मैंने अपनी उस साधना को कभी भंग नहीं किया। उसकी सदा पूजा की। याद है, उस झोंपड़ी में कहा था, अनेक बार गुड़िया-गुड्डे का खेल रचते हुए भी मैंने तुम्हारी बात का समर्थन किया था कि हां, हम दोनों का जीवन एक रहेगा······ गंगा-यमुना की धारा बन कर बहता रहेगा!'

कल्पना ने कहा—'तो मैं अब क्या करूं! मैं भी पुरानी याद को लेकर यहाँ आई हूँ।'

सुधीर बोला—'यह तुमने ठीक किया, कल्पना! मेरे समान अब तुम भी जिन्दगी के दूसरे मोड़ पर आ गयी हो। पर यह क्या, कि तुम मुझ से उसी वस्तु की अपेक्षा करती हो कि जो एक आदमी एक औरत को देता है। न, कल्पना ऐसी दुराशा अपने मन से निकाल दो। इस सुधीर की साधना को भंग मत करो। इसकी पूजा में योग दो। यह अब कल्पना के यौवन का पुजारी नहीं है, आत्मा का है। उसे तुम नहीं देख सकतीं, मैं देखता हूँ। पर जब तुम मेरे पास तक आई हो,

तो मैं सहज ही समझ सकता हूँ कि तुम भी मेरी भावना का आदर करती हो, उसे स्वीकार कर चुकी हो।'

कल्पना ने कहा—'सुधीर बाबू, मैं तुम्हें कभी नहीं भूल सकी। विवाह की रात में, मैं जागती हुई तुम्हारी प्रतीक्षा करती रही। सोचती थी, तुम आओगे। मुझे ले जाओगे। इस दुनिया के किसी भी छोर में ले जाकर छुपा लोगे!'

इतना सुना तो सुधीर कड़ुवे भाव से मुसकरा दिया—'न, न, वह तो मेरा तुम्हारा दोनों का ही बड़ा पाप होता, कल्पना! अरे, मैंने कहा न, यदि हम दोनों पति-पत्नी बनकर इन्द्रियों के भोग भोगते, तो सच, इस जीवन को गला देते। इसमें सड़ांद पैदा कर देते। सच, अपने हाथों से इस सुन्दर जीवन का गला घोंट देते। अहा! तुम सहज में नहीं समझ सकतीं कि इस अवस्था में मैंने तुम से क्या पाया है। मैंने क्या खोजा है!'

कल्पना ने आतुर बन कर कहा—'पर मेरा जीवन तो भारी है। शोक पूर्ण है। सच, संताप से भरा है।'

सुधीर ऊपर चाँद की ओर देखते ही मुसकराया—'मुझे पता है, कल्पना! तुम जिन्दगी के जिस चौराहे पर खड़ी हो, अपने जीवन में जिस चिंगारी को लगा चुकी हो, उससे तुम्हें जलना ही पड़ेगा। नलिन बाबू मरे तो, पर तुम्हें अशान्त बना गये। वे तुम्हें सड़ांद भरी दलदल में छोड़ गये। मुझे यह भी लगता है कि वे तुम्हारे शरीर में भयंकर गलित कुष्ठ की व्याधि उत्पन्न कर गये। जो उनकी थी। अब सचमुच ही तुम उस कोढ़ से पीड़ित हो। तुम अपनी आँखों से अपने शरीर का निकलता हुआ पीप देखर घबड़ा उठी हो। उससे तुम्हारा मस्तिष्क और मन भी सड़ गये हैं। वे तुम्हें वेदना दे रहे हैं।'

एकाएक कल्पना ने कहा—'हाँ, सुधीर बाबू!'

सुधीर ने तभी कल्पना की ओर देखकर कहा—'तो क्या वही कोढ़

मुझे देना चाहती हो। तुम अपने बचपन के सखा को नष्ट करना पसन्द करती हो ! न, कल्पना। इतनी क्रूर मत बनो ! ऐसी अन्धी नहीं।'

तभी कल्पना ने फिर अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'यह क्या कहते हो, सुधीर बाबू। तुम......मैं......'

सुधीर ने गम्भीर स्वर में कहा—'नर और नारी की वासना इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है, कल्पना देवी! वासना तड़पती है, मचलती है, तो उससे पीप चूता है! हाय! कैसा अन्धा है यह समाज,—यह पुरुष—यह नारी—कि शरीर को भोगने का नाम सुख रख दिया है। जिसकी प्रतिक्रिया ही इन्सान का अन्त है। यही तो पतन है।' वह बोला—'कल्पना, मेरी बात मानो तुम इस रास्ते को त्याग दो। उसे तुमने देख लिया। समझ लिया। आज मैं तुम्हें जिस रास्ते पर ले गया, अब जरा उस ओर भी देखो। तुम इस जगत की करुणा में अपने को विलीन करदो, कल्पना देवी! तुम तनिक समझो तो कि यह प्रकाश, यह चेतना जो तुम्हारे प्राणों में सन्निहित है, और जन्म-जन्मों से तुम्हारा आवाहन करती है, क्या तुम्हारे इस सुन्दर जीवन के सार से आज भी खाली चली जायेगी। न, कल्पना! उस अमर चेतना के द्वारा ही तुम्हें यह महान और अनुपम जीवन प्राप्त हुआ है। या-जगदम्बा ने तुम्हें अपने हाथों से निर्मित किया है। उसी के स्तनों का दुग्ध-पान करके तुम्हारा यह शरीर फला-फूला है।' यह कहते हुए सुधीर ने सांस भरी और कहा—'देखा न उस मन्दिर की प्रतिमा को, आज सहस्रों वर्ष बीतने के बाद भी महान बुद्ध लोगों के हृदय में प्रतिष्ठित हैं। वे उनके भगवान हैं। वे चेतन हैं। वे ही लोगों के प्राण! मैं कहता हूँ तुम भी उनके उपदेशों को हृदंगम करो। उनका महत्त्व समझो। यह शरीर का भोग तो तुम्हें रोग प्रदान करता है। लेकिन उस महापुरुष का योग तुम्हारे इस सुन्दर जीवन को अमरत्व का संदेश देता है। और बुद्ध का यह सन्देश उसीका नहीं, वह चिर-पुरातन है। वह तो इस धरती पर पैदा हुए

प्रत्येक देवता ने दिया। राम ने दिया, कृष्ण ने दिया! वह तो जगत के सभी महापुरुषों ने प्रदान किया, कल्पना देवी! सच, आज भी मैं जब तब तुम्हारे उस कौमार्य की कल्पना करता हूँ, तो सहज ही पाता हूँ कि, निश्चय ही तुम्हारे अन्दर मा-जगदम्बा का वास था। उसी की प्रेरणा से तो तुमने मुझ भूखे को अपना खाना खिलाना आरम्भ कर दिया था······बड़े घर की लाडली बेटी ने एक निर्धन और दुर्बल को अभयदान दिया। अपना साथी बनाकर उपकृत किया।' यह कहते हुए सुधीर का स्वर अवरुद्ध हो गया। सचमुच उसका ममत्व आँखों में उतर आया। वह आगे बोल नहीं सका। उसका स्वर भारी हो गया। यह देख, बरबस ही, कल्पना ने सुधीर का हाथ पकड़ कर निरे आहत और वेग सहित स्वर में कहा--'तुम भी रोते हो ·····तुम भी······'और कल्पना ने फिर स्वयं ही रोना आरम्भ कर दिया। उस अवस्था में ही, उसने अपना मुँह फिर पास बैठे हुए सुधीर की गोद में पटक दिया। लेकिन अजीब बात थी, उन दोनों की कितनी बड़ी असमर्थता थी कि सुधीर का ममत्व आँखों में उतरा, तो रुक नहीं सका। उसकी दबी हुई भावना एकाएक इतनी उद्वेलित हुई कि वह फफक कर रो पड़ा। कल्पना उसकी गोद में मुँह छिपाये रो रही थी, तो वह उसके सिर पर हाथ रखे रो रहा था।

और ऊपर आसमान की छाती पर डोलता हुआ चाँद हँस रहा था और मुसकरा रहा था।

११



मनुष्य जब ईर्षालु और दम्भी बनता है, तो वह दूसरे को तुच्छ समझने में अधिक विलम्ब नही करता। यह अवसर की बात थी कि उस रात में एकाएक महेन्द्र की भी आँख खुल गयी। जब वह बाहर आया, तो यह देखकर चकित रहा कि बंगले का मुख्य दरवाजा खुला था। तब उसने सुधीर के कमरे में, झांक कर देखा तो उसका बिस्तर भी खाली मिला। इस प्रकार सहज ही महेन्द्र की कॉंक्षा बढ़ गयी और उसने कल्पना को भी अपने कमरे में नहीं पाया। निदान वह आकर सभी ओर देखने लगा। इस प्रयत्न में ही उसने दूर पर देख लिया कि कल्पना और सुधीर बैठे थे। उस समय महेन्द्र के मन की स्थिति सचमुच ही दयनीय थी। कठोर भी हो चुकी थी। उसके मन में कई बार आया, कि वह उन दोनों के पास जाये और कल्पना को जाकर सुना दे कि तू भ्रष्टा है······कुल-कलंकिनी···

किन्तु महेन्द्र कुछ देर बाहर रह कर फिर अपने बिस्तर पर आकर पड़ गया। तदन्तर सो गया। जब प्रातः उठा और चाय के लिये वे सब एकत्र हुए, तो कल्पना ने महेन्द्र को देखते ही कहा—'तुम बहुत सोते हो, महेन्द्र बाबू! तुमने यहाँ का आनन्द नहीं लिया। रात की चाँदनी का भी नहीं। मैं रात देर तक बाहर बैठी रही। सुधीर बाबू भी।'

निःसन्देह, महेन्द्र कल्पना से ऐसी स्पष्ट बात सुनने की आशा नहीं कर सकता था। लेकिन जब चोर ने स्वयं चोरी करने की बात कह दी, तो तब मजिस्ट्रेट उसे सजा सुना दे, इसके अतिरिक्त और क्या हो। निदान, महेन्द्र ने बात सुन कर अपना मत तो कुछ नहीं दिया, परन्तु उसने कल्पना को एक सभ्य और अच्छी नारी के पद से गिरा दिया। उसने सहज भाव से सुधीर को भी लम्पटी और धोखेबाज समझ लिया। जब चाय समाप्त हो गयी, तो वह बोला—'हमें यहाँ आये काफी समय हो गया। अब वापिस भी जाना होगा।'

इतनी बात सुनी, तो सुधीर हँस दिया—'महेन्द्र बाबू का मन नहीं लगा।' वह बोला—'ठीक भी है। यहाँ मन लगाने का कोई साधन नहीं।' उसने कहा—'अभी कुछ और रहो, महेन्द्र बाबू! यहाँ के अन्य स्थान भी देखो।'

महेन्द्र बोला—'कल्पना जी रह जायेंगी। मुझे जाना होगा। पिताजी ने भी बुलाया था।'

इतना सुना, तो सुधीर ने कल्पना की ओर देखा। किन्तु कल्पना मौन थी, उसने एकाएक अपना मत नहीं दिया।

सुधीर बोला—'भाई जब तुम नहीं रहोगे, तो कल्पनाजी कैसे रहेंगी। साथ आई हैं, तो साथ जायेंगी।'

किन्तु कल्पना तुरन्त खड़ी हो गयी और बोली—'मेरे लिये ऐसी कोई पाबन्दी नहीं है। मैं अकेली भी जा सकूँगी।' यह कहते हुए वह अपने कमरे में चली गयी।

इस प्रकार क्षण भर में वातावरण बदल गया। उसमें विषैलापन आ गया। सुधीर अपनी जगह बैठा रहा। महेन्द्र भी मौन रहा। सचाई यह थी कि उसका पासा गलत पड़ गया। अन्यथा उसके मन में बात थी कि जब यह लौटने की बात कहेगा, तो कल्पना तुरन्त उसकी बात का समर्थन करेगी और कहेगी, अकेले क्या जा सकोगे। मुझे किस पर छोड़ोगे। किन्तु

जब वह स्वयं ही कठोर प्रतिकार कर बैठी, तो मानो महेन्द्र के लिये सभी रास्ते अवरुद्ध हो गये। क्योंकि वह नवयुवक जिस दिन से कल्पना की सीमा में जाकर लगा, तो सचमुच ही, जीवन का एक नया राग, एक नया स्फुरण उसके हृदय में डोल गया था। वह सदा ही उसे आँदोलित करता था। महेन्द्र के मन में एकबारगी भी यह बात समाधिस्थ हो चुकी थी कि एक दिन आयेगा कि वह कल्पना और उसके धन का स्वामी बनेगा। किन्तु उस समय सचमुच ही उसे हतप्रभ रह जाना पड़ा कि जब कल्पना ने संक्षिप्त और स्पष्ट उत्तर देकर उसके महत्व को अस्वीकार कर दिया। लेकिन सुधीर ने तुरन्त ही उस स्थिति में सुधार करने का प्रयत्न किया। वह कल्पना के कमरे में गया और बोला—'तुम्हें महेन्द्र बाबू से ऐसा नहीं कहना चाहिये, कल्पना! इस लौटने की बात पर इतनी नाराजी क्यों!'

कल्पना ने कहा—'मैं स्वयं परेशान हूँ, सुधीर बाबू! देखिये न जैसे मैं उनकी नौकरानी हूँ!'

सुधीर ने कहा--'नहीं, नहीं, अपनों से ऐसे भी कहा जाता है।' और वह तब महेन्द्र के पास आकर बोला—'देखिये महेन्द्र बाबू, आना आपके हाथ में था, जाना मेरे हाथ में। आप मेरे मेहमान हैं। अभी और रहना पड़ेगा।' यह कहते हुए उसने कोट पहन लिया। छड़ी उठाली और वह अपना काम देखने के लिये चला गया।

उसी समय महेन्द्र अपने स्थान से उठ कर कल्पना की ओर गया और बोला--'कल्पनाजी तुमने मेरे कहने का अर्थ गलत लगा लिया। मेरा मत है कि हमने यहाँ पाया क्या! इन पहाड़ जंगलों में रह कर तो हमें कुछ नहीं मिलेगा। सुधीर बाबू तो नौकर हैं। सरकार से बड़ी तनख्वाह पाते हैं। उनका यहाँ रहना ठीक है। परन्तु तुम यहाँ क्या पा रही हो।'

जैसे तुनक कर कल्पना ने कहा—'तो तुम हर जगह सौदा करना पसन्द करते हो। सच तुम कठोर हो।' वह बोली—'जानते हो, सुधीर

मेरे गाँव का आदमी है। बचपन का साथी है। आखिर वहाँ घर पर ही हमारे लिये क्या रखा है। कौन सा काम है कि जो हमारे बिना रुका है।

कल्पना से इस प्रकार की बात सुनने की महेन्द्र आशा नहीं करता था। बोला—'वहाँ तुम्हारा घर है। जमीन है, जायदाद है। आखिर सब कुछ नौकरों पर ही तो छोड़ा है। भला उनका भरोसा क्या!'

कल्पना ने कहा—'इस जगत में किसी का भरोसा नहीं किया जा सकता, महेन्द्र बाबू! मैंने आज तक नहीं समझा कि मेरा कौन अपना है, कौन गैर! मुझे तो लगता है कि स्वार्थ सभी के साथ बंधा है।'

एकाएक महेन्द्र के मुख से निकला—'ओह! अब तुमने दार्शनिकता का पाठ पढ़ा है। मैं ऐसे रहस्यवाद को नहीं मानता! इस धरती पर उतर कर वास्तविकता को समझना ही, इन्सान का काम है। कोरा अध्यात्म हमें रोटी नहीं देता। देखती हो आदमी को मशक्कत करके, संघर्षों के थपेड़े खाकर, इस जिन्दगी का रास्ता पार करना पड़ता है!'

चकित भाव में कल्पना ने महेन्द्र की ओर देखा। जैसे उसे समझना चाहा। उसने तुरन्त ही, आँखों से हँस कर कहा—'तो ऐसा तुम कहते हो! बताओ, तुमने आज तक क्या एक पैसा उपार्जित किया। देखती हूँ तुम्हारा अपना खर्च भी कभी कम नहीं रहा। तुमने इस धरती के इन्सान की व्याख्या तो की, परन्तु कभी अपना विषलेशण भी किया! कभी समझा, जो पैसा तुमने आज तक व्यय किया, उसे प्राप्त करने के लिये तुम्हारे पुरखां ने क्या कुछ नहीं किया!'

महेन्द्र ने इतनी बात सुनी तो हँस दिया। उसने सहज भाव से बात को उड़ा देने का भी प्रयत्न किया।

किन्तु कल्पना ने गम्भीर स्वर में कहा—'महेन्द्र बाबू, खेद है कि तुमने यहाँ आकर इस सुधीर बाबू से कुछ नहीं सीखा। परन्तु मैंने इन आठ-दस दिनों में इतना समझ लिया है कि यह सुधीर एक अलौकिक और पारदर्शी व्यक्ति बन रहा है। सुना आपने, सुधीर को डेढ़ हजार

रुपये के लगभग वेतन मिलता है। परन्तु वह अपने ऊपर सो रुपये से अधिक व्यय नहीं करता। उसका अधिक भाग संस्थाओं और कुछ गरीब विद्यार्थियों की सहायता में खर्च होता है। कहिये, कैसा व्यक्ति है, यह सुधीर बाबू! और तुम देखते हो न, इसका कार्य-क्रम! प्रातः चार बजे से रात के दस बजे तक वह मशीन की तरह चलता है। 'वह बोली—'सुधीर यदि धरती के आदमी का उल्लेख करे, तो ठीक, परन्तु तुम तो धरती पर चल कर भी नहीं देखते कि समाज कैसा है······कितना दीन······कितना याचक ······'

उस समय महेन्द्र बाहर की ओर देख रहा था। वह स्वयं गम्भीर था। जैसे कल्पना की बातों में डूब गया था।

कल्पना बोली—'मैं समझती हूँ कि तुमने क्यों लौट चलने की बात कही। निश्चय ही तुम्हारे अन्दर एक ऐसी दुर्भावना का जन्म हुआ है कि जिस का रूप घिनौना है, ईर्षा से युक्त·········'

उसी समय महेन्द्र चीख पड़ा—'कल्पना जी······'

कल्पना ने कहा—'मैं बच्ची नहीं हूँ, महेन्द्र बाबू। मैं किसी की गुलाम भी नहीं। मेरे समान आप भी स्वतन्त्र हैं। जब चाहें, जा सकते हैं। हम केवल विश्वास और सद्भावना पर टिके हैं। वह न रहे, तो क्या हमारा अस्तित्व रह सकता है,—न, कदापि नहीं।' यह कहते हुए कल्पना कमरे से उठ चली। वह वहाँ से सीधे बंगले के लान में चली गयी। वहाँ तेज धूप निकल आई थी। गुलाब, गेंदा और चमेली के फूल खिले हुए थे। उनकी महक भी चारों ओर फैल रही थी। दूर खुदाई का काम हो रहा था। उस समय कल्पना के मन में बात उठी और वह उसी ओर पग उठा कर चल पड़ी। वहीं रास्ते में कुछ कच्चे मकान और फूस के झोंपड़े थे। उनमें खुदाई करने वाले मजदूर परिवार रहते थे। जब कल्पना वहाँ से निकली, तो तभी एक घर के द्वार पर उसने एक सुन्दर बालक और सुन्दर बालिका को बैठे पाया। उस लड़की की

ओर कल्पना के आकर्षण की विशेष बात यह थी कि रात ही, सुधीर ने उस लड़की का उल्लेख किया था। जब कल्पना ने अकस्मात् ही बिना प्रयत्न के उसे पा लिया, तो वह वहीं ठिठक गयी और एकटक होकर उसे देखने लगी।

विशेष बात यह थी कि वह आठ-दस वर्ष की लड़की कि जो सचमुच ही विधाता ने बड़े मनोयोग के साथ निर्मित की, अत्यन्त सुन्दर होते हुए भी, आँखों से हीन थी। रात में ही, सुधीर ने कल्पना को सुनाया कि उस लड़की का उपचार कराने के लिये चिन्तित है। उसने एक यह भी अपने जीवन का लक्ष्य बताया है। अब वह उसी लड़की के लिये चिन्तित है।

उसी समय, लड़की की मां घर से बाहर निकल आई। वह कल्पना को खड़ी देख, तुरन्त सहम गयी। अत्यन्त दबे स्वर में बोली—'वो आप ही हैं बड़े साहब की कोठी पर!'

कल्पना ने कहा—'हाँ, मैं उन्हीं के यहाँ से आई हूँ। यह तुम्हारी लड़की है। अन्धी हो गयी है।'

उस स्त्री ने कहा—'हाँ, बीबी जी, यह अन्धी है। जन्म की नहीं।'

तभी कल्पना ने लड़की से पूछा—'अरी, तेरा नाम!'

लड़की ने कहा—'मंगनो।'

'तो मंगनो तू बंगले पर भी आया कर न! मेरे पास आया कर।'

उसकी माँ ने कहा—'बीबी जी, मगनो तो बंगले पर जाती थी, बड़े साहब तो देवता हैं। इसे बड़ा प्यार करते हैं। पर जब से तुम लोग आये हो, तो मैंने ही इसका जाना रोक दिया। सोचा यह अन्धी, गंवारिन, जाने क्या इसके मुँह से निकल जाय। क्या इसके हाथ से हो जाय!'

'नहीं, इस मंगनो को मेरे पास भेजा करो। लड़की सीधी है।'

उसकी मां बोली—'न, बीबी जी! बड़ी नटखट है। साहब की कोठी पर जाकर उनकी अनेक चीजें बिगाड़ आई है।'

कल्पना हँसी—'अभी बच्ची है ! अजान है। और बेचारी को दिखायी भी तो नहीं देता।' यह कहते हुए उसने मंगनो के सिर पर हाथ फेरा और कहा—'आ, चल। उठ।'

इतना कहना था कि मंगनो उठ खड़ी हुई। वह चलने लगी।

उसकी मां ने कहा— 'देख, शैतानी न करना। सुना, मंगनो!'

मंगनो ने कहा—'अच्छा, मा।'

बंगले पर पहुंच कर कल्पना ने मंगनो को अपने पास बैठाया। तभी उसने नौकर से कुछ मिठाई लाने के लिये कहा। उसी समय उसकी निगाह गयी कि मंगनो का सिर सुधारा हुआ नहीं था। बाल उलझे हुए थे। इस लिये कल्पना के मन में बात आई और उसने तेल की शीशी और कँघा उठा लिया। वह खुशबूदार तेल मंगनो के सिर में लगाया। फिर कंघे से उन बालों को संवारा, उन्हें गूंथा। उसने मंगनो की दो चोटियां बनादी। तभी नौकर तश्तरी में मिठाई ले आया। वह मंगनो का रूप देखकर हंसा। बोला 'वाह बीबी जी। इस मंगनो का रूप तो खूब बना दिया। सच, अब लगती है जैसे मूरत बना कर बैठा दिया। अब तो इसका रूप ही दूसरा हो गया।'

कल्पना ने कहा—'भगवान की माया है, भैया! जाने बेचारी के भाग में क्या आ गया।

नौकर ने तभी सांस भरी—'बीबी जी, भगवान की माया का कुछ पता नहीं। हमारे बाबू तो इसे बहुत प्यार करते हैं। इसे कुछ-न-कुछ खिलाते हैं।'

कल्पना बोली—'तो तुम्हारे बाबू बच्चों को बहुत पसन्द करते हैं।' उसने कहा—'पर तुम्हारे बाबू विवाह क्यों नहीं करते। बच्चों को प्यार करते हैं और फिर भी अकेले रहते हैं'

नौकर बोला—'बीबी जी, इतना तो तुम्हीं कह सकती हो। इतने दिन नौकरी करते हो गये, पर ऐसा मालिक मुझे आज तक नहीं मिला।

पिछले साल मेरी लड़की का विवाह था, तो बाबू जी ने विवाह का आधा खर्चा मुझे दे दिया था। पूरा पाँच सौ रुपया बाबू ने लगाया था। बारातियों की झूठी पत्तलें तक बाबू ने उठायी थीं। सच, देवता हैं हमारे बाबू!' उसने कहा— 'मजदूरों के बच्चों ने समझ लिया है कि कोठी पर मेहमान आये हैं, नहीं तो यहाँ बच्चों का झुण्ड लग जाता है। बाबू खुद मिठाई कम खाते हैं, पर इन बच्चों के लिये मंगा कर रखते हैं। हमारे बाबू तो कहते हैं कि मुझे जो कुछ मिल रहा है, वह अकेला मेरा नहीं है, सभी का है,— इन बच्चों का है!'

इतने बीच में मंगनो ने मिठाई खा ली थी, नौकर दूसरी ओर चला गया। तभी कल्पना के मन में बात आई, तो ऐसा है, यह सुधीर! इतना महान! ऐसा अपूर्व! सचमुच, उस क्षण उसके मन में एक अजीब प्रकार का भाव समुद्र के उफान की तरह उठा। उसने कल्पना को बरबस ही झकझोर दिया। कदाचित जीवन में पहिली बार कल्पना को अपना वह रूप, ऐश्वर्य तुच्छ लगा। उसकी इच्छा आई कि वह अभी सुधीर को पाये और उसके चरणों में लोट कर कहे, तुम मुझे प्राप्त करो, सुधीर बाबू! मुझे भी अपने पास शरण दो! मेरी रक्षा करो!

किन्तु समय की बात कि उसी समय महेन्द्र के साथ सुधीर वहाँ आ पहुँचा। वह जब कमरे के द्वार पर आया तो उस मंगनो को बैठी देख, हँस पड़ा। वह उधर ही बढ़ आया। जिसे देख कल्पना एकाएक नहीं बोल सकी। उसकी आँखें झुक गयीं। जैसे वह शरमा गयी! उसके गालों की लाली भी बढ़ गयी।

तभी सुधीर ने कहा—'अरी, मंगनो!'

मंगनो ने कहा—'जी, बाबू जी!'

'तू यहां कैसे आई! किसके साथ?'

मंगनो कुछ कहे कि कल्पना ने कहा—'मैं ले आई थी। उधर निकल गयी थी।'

'अच्छा ! तो तुम उसकी मा से जान-पहचान कर आई।'

तभी महेन्द्र ने कहा—'लड़की सुन्दर है। भाग्य की बात है।'

सुधीर ने कहा—'जनाब, इस संसार में सभी कुछ देखा जा सकता है। यहां इस धरती पर इन्सान का पतन भी अपूर्व ढंग से होता है और उत्थान भी! केवल देखने का अन्तर है। मनुष्य का संघर्ष, मनुष्य की कथा, इसी का तो इतिहास बना है! यह संसार! यहाँ इसके अतिरिक्त और क्या है।' वह बोला—'लेकिन यह इन्सान भी बहुरूपिया है। रोना और हँसना इसका बराबर चलता है। मानो दोनों में सगे-सहोदर का सम्बन्ध बना है। आदमी उसी में खो जाता है! किसी-न-किसी प्रकार इन्सान अपने अभाव की पूर्ति करता है। इसी लिये तो युग-चेतना का प्रतीक बन गया है, यह इन्सान······यह मजा हुआ इन्सान·········'

किन्तु महेन्द्र मौन था। वह बाहर की ओर दृष्टि उठाये था कि जहां इन्सानों का एक बड़ा काफ़िला धरती की छाती पर फावड़ा चला रहा था ·····उस छाती को फोड़ रहा था·········

१२

• • •

उसी सप्ताह कल्पना और महेन्द्र लौट गये। जब सुधीर उन दोनों को स्टेशन पर छोड़ने गया, तो वहीं पर उसने कल्पना को बताया कि वह जल्दी ही गाँव पहुँच रहा है। इस मास के अन्त में चला जायगा। तभी कल्पना ने स्वयं भी गाँव जाने का विचार व्यक्त किया। सुधीर और वह दोनों गांव में मिलेंगे, ऐसा दोनों का निश्चित प्रोग्राम बन गया।

नगर में पहुँच कर, अगले दिन ही, महेन्द्र ने सिनेमा के दो टिकट मंगा लिये। उसने कल्पना से कह दिया कि एक सुन्दर तस्वीर चल रही है। सिनेमा चलना है। उसे समय पर तैयार हो जाना है। कल्पना ने बात तो सुन ली, लेकिन मत नहीं दिया। महेन्द्र बाहर चला गया। जब वह सिनेमा चलने से दो घण्टा पूर्व लौटा, तो कल्पना को वह बिस्तर पर पड़ी देख कर बोला—'अरे, अभी पड़ी हो। तैयार हो जाओ। कपड़े बदल लो। देखो, समय हो गया।'

कल्पना उठ कर बैठ गयी और बोली—'क्यों ये कपड़े अच्छे नहीं हैं, मेरे!'

महेन्द्र बोला—'यह सुधीर बाबू का स्थान नहीं है। जानती तो हो कि यहाँ तुम्हारा स्थान ऊँचा है। लोग सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। आज के समाज में कपड़ा भी शोभा बढ़ाता है। प्रतिष्ठा का द्योतक है।'

किन्तु उस समय कल्पना के मस्तिष्क में दूसरी बात घूम रही थी। एक दिन सुधीर ने उसको सुनाया था कि नारी का आभूषण उसका चरित्र है। यदि किसी नारी या पुरुष के अच्छे विचार न हों, तो सुन्दर वस्त्र भी उसके शरीर पर लज्जा मारता है। तो, उस समय जब महेन्द्र ने कल्पना से कपड़े बदलने की बात कही, तो सचमुच उसके मन में उत्साह नहीं पैदा हुआ। उसे लगा कि उसका जीवन कमियों और हीन भावनाओं से भरा है। रसिकता ही उसके जीवन का अंग है। अतएव, उसने उन्मत्त भरे स्वर में महेन्द्र से कहा—'सिनेमा तुम चले जाओ। मैं नहीं।'

इतना सुनना था कि महेन्द्र आगे बढ़ आया। उसने प्रथम बार कल्पना का हाथ पकड़ कर कहा—'ओह! तुम भी अजीब हो! गंगा गयी गंगादास! जमुना गयी तो जमुनादास! भई, क्या अभी सुधीर बाबू की बातों का रंग चढ़ा है। पर यह भी सोचा किसी क्षण कि जिस स्थान पर वे महाशय रहते हैं, वहाँ इसी प्रकार के विचार मन में उठ सकते हैं। सच, मेरा तो वहाँ रहते दम घुट गया। और तुम यह भी भूल जाती हो कि तुम्हारे और सुधीर बाबू के संस्कारों में भी जमीन आसमान का अन्तर है। तुम एक धनिक जमींदार की बेटी और वे महाशय विभिन्न छोटे से किसान के लड़के······समझो बचपन के इन संस्कारों का भी जीवन के भविष्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।'

कल्पना ने अनमने ढंग से कहा—'मैं तुम्हारी इस दलील की कायल नहीं।'

किन्तु महेन्द्र ने तुरन्त ही कल्पना की बात को पकड़ लिया—'हाँ, यह मैं जानता हूँ कि तुम मेरी बातों से सहमत नहीं बनोगी। लेकिन एक बात कहता हूँ कि जीवन का यों गला घोंटना किसी अवस्था में भी उचित नहीं। इससे तो वे नारियाँ अच्छी थीं कि जो पति के मरने पर उसके साथ ही अग्नि की शैया पर सो जाती थीं। लेकिन आज के इस वैज्ञानिक युग में सभी को इस बात की प्रेरणा दी जाती है कि समय का और इस मानव

शरीर का सुन्दर उपयोग हो। भौतिक जगत के जो तत्व हैं वे सभी हमें अपनी ओर आकर्षित करते हैं। यह सौन्दर्य भरा संसार हमारा आवाहन करता है। वह प्रेरणा देता है कि हम इस जगत की भावना में खो जायें। उसके रूप में मिल जायें।'

कल्पना ने आँखों से हँसते हुए महेन्द्र की ओर देखा और कहा— 'तुम्हारी यह दलील भी अजीब है। पुरानी है। भला बताओ कितने बार कही है।'

महेन्द्र कुछ आकुल बन गया। वह तुरन्त ही बोला—'कल्पनाजी, यही अमिट सत्य है। जब पैसा है, तो उसके उपयोग के साधन भी इस धरती पर निर्मित किये गये हैं। जिस योनि सम्बन्ध की और शरीर की भोग की भावना हमारे तार्किक और धार्मिक नेता सदा विरोध करते हैं, उसे चरित्र-हीनता का द्योतक बताते हैं, मैं कहता हूँ, आज उसका कोई महत्व नहीं रह गया। कहो तो तुम्हें गिना दूँ ऐसी पचासों नहीं सैकड़ों नारियाँ कि जिन्होंने अनेक पति चुन कर भी अपने समाज में अपूर्व प्रतिष्ठा प्राप्त की। उन्होंने अपने समाज को बल दिया। उसके नैतिक और चारित्रिक स्तर को बनाने में योग दिया। योरोप में आज ऐसी अनेक नारियां हैं। वे उस देश में पूजनीय हैं। मरने के बाद भी वे अपने समाज में आदरणीय बन गयीं हैं। पेट की भूख की तरह जो इन्द्रियों की भूख है, उसे अब अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता। देखती हो, आज के वैज्ञानिक युग में मर्द के साथ नारी भी दौड़ रही है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ी जा रही है। और एक हैं हमारे सुधीर बाबू, तुम्हारे बचपन के साथी, कि जो योग की कल्पना करते हैं। इच्छाओं को मारते हैं। विवाह न करने की बात कहते हैं। न शऊर से खाते हैं, न पहनते हैं। मैं कहता हूं ऐसा व्यक्ति हमारे देश के लिये अब उपयुक्त नहीं हो सकता। उससे समाज को बल प्राप्त नहीं हो सकता।' यह कहते हुये उसने

साँस भरी और कहा—'चलो, उठो, देर न करो। तुम आज की तस्वीर देखो भी, तो मन और मस्तिष्क को शांत बना सकोगी। कुछ खूराक दोगी।'

कल्पना ने किंचित हँसा—'सच, महेन्द्र बाबू! सुधीर की बातों से मेरा मानस हिल गया! लगा कि मैंने कुछ दिन के लिये किसी और देश में पदार्पण किया था।......'

महेन्द्र बोला—'तुम अपनी बात कहती हो, पर मैं कहता हूँ मेरा वहाँ एक-एक दिन दूभर हो गया। भला यह हुआ कि मैंने सुधीर से कुछ नहीं कहा। अन्यथा, मन में कई बार आया कि उसे फटकार दूँ। साफ कह दूँ कि तुम्हें सरकार जितना देती है, नहीं देना चाहिये। भला कैसी बात कि वह व्यक्ति सहस्रों वर्ष की पूर्व की कथा का वर्णन करता है। और भला आदमी यह नहीं देखता कि तब एक व्यक्ति के विचार वर्षों में यहाँ से वहाँ पहुँचते थे। परन्तु आज तो आदमी बोलता है और समस्त विश्व को अपनी वाणी का चमत्कार सुना देता है। अब तो संसार उस बोलने वाले को भी देख लेता है। देखती हो कि आदमी हवा में उड़ता है। तो आज एकान्त में या जंगलों में बैठकर योग की बातें करना किसी प्रकार भी शोभनीय नहीं।' उसने कहा—'तब तो यह समाज मर जायेगा। पूँजी का विनिमय भी नहीं होगा। वितरण रुक जायेगा। कारखाने बन्द हो जायेंगे। जब तुम रेशमी साड़ी के स्थान पर मोटा टाट पहनोगी, तो क्या आवश्यकता रहेगी, बड़ी-बड़ी मील खोलने की! बताओ फिर, देश के आदमी को कैसे काम मिले......रोटी......कपड़ा......'

कल्पना ने बक्स से पहनने के लिये एक सूती साड़ी निकाली। देखकर, महेन्द्र ने कहा—'नहीं, वह गुलाबी रंग की रेशमी!' वह बोला—'तुम्हारे बदन पर वह अच्छी लगती है। खूब फबती है।'

कल्पना हंस पड़ी—'वाह-वाह! तो मुझे दिखाना है किसी को।'

महेन्द्र ने कहा—'नहीं तो क्या ! आदमी जो कुछ पहनता है, उसे देखकर जहाँ अपना मन प्रसन्न करता है, वहाँ दूसरे भी उसे देख कर, सराहें, यह भाव अवश्य ही, सभी के पास होता है।'

कल्पना ने कहा—'मैं समझी तुमने मनोविज्ञान पढ़ा है।'

'और देखो, पहिले सिर में कंघा तो कर लो। मुंह भी धो डालो। वह तुम्हारा श्रृंगार का डिब्बा जैसा गया उसी तरह वापिस लौट आया। देखो तो शीशे में, वहाँ की खुली हवा ने तुम्हारा रंग भी बदल दिया।'

कल्पना ने बड़े अजीब भाव से महेन्द्र की ओर आँखों से तरेरा। जिसका अभिप्राय कदाचित यही था कि वह बड़ा शोख है।

कल्पना ने मुंह धोया। बालों में खुशबूदार तेल लगाया। आदमकद शीशे के सामने खड़ी होकर उन बालों में कंघा किया। फिर मुंह पर पाउडर मला। होठों पर लिपस्टिक लगाई। रेशमी गुलाबी साड़ी पहन ली। उसी के रंग के अनुरूप गुलाबी ब्लाऊज धारण कर लिया। जब वह तैयार हो गयी, तो महेन्द्र के पास पहुँची। देखकर, महेन्द्र खड़ा हो गया और हँस पड़ा ! वे दोनों चल दिये। बाजार में ताँगा पकड़ लिया और सिनेमा घर में पहुंच गये। चित्र अभी आरम्भ नहीं हुआ था। रिकार्ड बज रहा था। उसी अवस्था में कल्पना ने देखा सिनेमा के उस हाल में सचमुच ही, अपूर्वता थी। प्रत्येक नारी दर्शनीय बनी थी। जिसे देखो वही अपने पति के साथ हाथ में हाथ डाले उस हाल में प्रविष्ट हो रही थी। मानो वह छोटा-सा रंग-बिरंगा मेला था। उस समूह में मानो सभी जीवन की चाह लिये थे। उसके सौंदर्य में डूब गये थे।

उस दिन महेन्द्र ने अपना नया सिला हुआ सूट पहना था। वैसे भी वह स्वस्थ्य और सुन्दर युवक था। कल्पना के पास बैठ कर कोई नहीं कह सकता कि वह उसका पति नहीं था। वह जोड़ी उस हाल में अधिकाँश के लिये ईर्षा और आकर्षण का विषय बनी थी। बहुतों की उन पर आँख उठी हुई थी। उसी समय चित्र आरम्भ हुआ !

किन्तु यह कैसी अजीब बात हुई कि उसी समय जब चित्र की प्रधान नायिका अपने प्रेमी को आकर्षित करने के लिये गा रही थी और सुन्दर भावना का प्रदर्शन कर रही थी, तो तभी, कल्पना के मन में एक बात उठी। उसे याद आया कि एक दिन की रात में चन्द्रमा के प्रकाश के नीचे बैठे हुए, प्रकृति के उस विराट जंगल में सुधीर ने कल्पना से कहा कि नारी का यह यौवन भरा जीवन महकना चाहिये। इसमें दुर्गन्ध नहीं उठनी चाहिये। यह कहते हुए ही, सुधीर ने कल्पना को बताया था कि इस नर और नारी की दुर्गन्ध वासना है! यही इन दोनों की जड़ता है। इस भौतिक जीवन में हमने यही पाया है······जीवन खोया है, मौत का आलिंगन किया है······

और तभी, जाने कहाँ से, मानो दूर से किसी ने एक पत्थर उठाकर कल्पना की छाती पर दे मारा। सचमुच, कल्पना को एक बड़ा झटका-सा लगा। उसका मस्तिष्क चकरा गया। मानो उसकी निगाह में सिनेमा का वह हाल बरबस ही घूम गया।

उसी समय, महेन्द्र ने कल्पना को झकोर कर पूछा—'क्यों प्रसन्द आया चित्र! देखो नायिका का अभिनय कितना सुन्दर रहा! नायक का पार्ट भी उपयुक्त बन गया।'

सुना, तो कल्पना ने केवल हूँ कर दिया। उसने आगे कुछ नहीं कहा।

महेन्द्र बोला—'काश, मैं भी ऐसा जीवन पाता! ऐसी ही भावना में डूबा रहता!' उसने कल्पना की ओर देखा और कहा—'ममत्व हीन जीवन क्या चीज है! न वह तो सर्वथा हेय है, कल्पना जी!'

इतनी बात सुनकर भी, कल्पना ने फिर कह दिया—'हूँ।'

यह सुनकर महेन्द्र चौंक गया और बोला—'वाह ऐसी चित्र में डूबी हो! आज जाने कितने दिन बाद तुम अपूर्व सुन्दरी लग रही हो, कल्पना! सच, जैसे रूप की रानी!'

कल्पना ने कहा—'कविता न करो। बात करो।'

तभी महेन्द्र ने कल्पना की ओर देखा और कहा—'मैं बनावटी बात नहीं करता, कल्पना ! मैं जब भी तुम्हें देखता हूँ, तो सच, मैं अपने प्राणों में बरबस ही, कोई मीठा स्वर बजता हुआ पाता हूँ। मैं अपने आप तरंगित हो उठता हूँ। जानती तो हो कि भगवान की इस फुलवाड़ी में जो रंग-बिरंगे फूल खिले हैं, उन्हें देखकर सभी आकर्षित होते हैं। तोड़ कर सूंघना चाहते हैं।'

इतनी बात सुनी, तो कल्पना खिलखिलाकर हंस पड़ी। मानो वह बरबस ही, महेन्द्र की बात के अन्तराल में पहुँच गयी। उसने सहज ही समझ लिया लिया कि यह महेन्द्र क्या चाहता है। अपने किस रूप का प्रदर्शन कर रहा है। इस लिये, तुरन्त ही, उसने कहा—'चित्र देखो, महेन्द्र बाबू ! बातें न करो।'

यह सुनते ही, महेन्द्र जैसे ऊँचाई पर चढ़ता-चढ़ता फिसल गया और धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। उसे चोट लग गयी। वह व्याकुल और पीड़ित बन गया। उसी अवस्था में उसने कराह कर दूर खड़ी हुई कल्पना की ओर देखा, जो उसकी ओर देख, खिलखिला रही थी। मानो गिरने वाले के प्रति नितान्त उपेक्षित बनी थी। यह देख महेन्द्र को अच्छा नहीं लगा। वह मौन बनकर चित्र को देखने लगा, परन्तु उसे लगा कि यह कल्पना भी जड़ है, पत्थर है। मानो रहस्य से पूर्ण !

खेल समाप्त हुआ और वे दोनों निरा मौन भाव लिये घर आ गये। कल्पना ने अपने कमरे में जाकर साड़ी बदल दी। वह विस्तर पर पड़ गयी। उस रात महेन्द्र और उसकी कोई बात नहीं हुई। महेन्द्र ने अपना खाना कमरे में मंगा लिया और खाकर सो गया। जब प्रातः हुआ, तो कल्पना ने उसके कमरे में जाकर कहा—'महेन्द्र बाबू, मुझे आज यह बता दीजिये कि गाँव में फार्म की जमीन से कितना पैदा हुआ और क्या आमदनी हुई। शहर के मकानों की आमदनी का लेखा भी

दे दें। मुन्शी आये तो मेरे पास भेज दें।' यह कहते हुए, कल्पना फिर दूसरी ओर चली गयी। वह किसी पर क्रोध नहीं करती थी। किन्तु उसी समय महेन्द्र को उसकी आवाज सुनायी दी कि कल्पना नौकर को सुनाकर कह रही थी, तुम इस घर के पैसे की कीमत नहीं समझते, तो न रहो। चले जाओ। मुझे किसी की आवश्यकता नहीं। मानो यह सब कल्पना ने उस नौकर के ऊपर डाल कर महेन्द्र से कहा था। उसी को सुनाया था। इसलिये वह बात सुनकर स्तब्ध रह गया। जैसे जमीन में गड़ गया। किन्तु बात यही समाप्त हो जाती, तो भी उचित था। वह और आगे बढ़ गयी। उसी समय वहाँ पर दर्जी आया और उसने कल्पना को सामने खड़ी देख, नम्र स्वर में कहा—'बीबी जी छोटे बाबू हैं।'

कल्पना ने पूछा—'क्यों कोई बात ?'

दर्जी ने जेब से बिल निकाला और कल्पना के आगे करके बोला—'सिलाई का बिल है। देर से रुका है।'

कल्पना ने बिल देखा, तो वह पूरा ढाई सौ रुपये का था। उसे देखते ही, कल्पना ने पूछा—'यह कितने दिन का है ?'

दर्जी ने कहा—'यही चार महीने का। जो अभी कपड़े सिल कर आये हैं, उनका अभी नहीं दिया। कपड़े भी बाकी हैं।'

कल्पना ने कहा—'अच्छा, फिर आना।'

दर्जी चला गया। कल्पना सीधी महेन्द्र के कमरे में पहुँची और बिल उसकी मेज पर रखकर बोली—'दर्जी दे गया है।' तभी उसने कहा—'महेन्द्र बाबू, तुम विधवा बनी हुई कल्पना की सहायता करने आये थे। पर देखती हूँ, तुम्हारे खर्चों ने इस पर बोझ डाल दिया है। मेरा मत है कि तुम लौट जाओ। मुझे ऐसी खर्चीली सहायता की आवश्यकता नहीं है।' कल्पना ने इतना कहा और तेजी के साथ कमरा छोड़ दिया।

उसी दिन महेन्द्र अपने घर लौटने के लिये तैयार हो गया। इतना उसके पास सम्मान का भाव था कि वह उसकी रक्षा करे। किन्तु यह ग्लानि और क्षोभ भी उसके अन्दर समाविस्थ हो गया कि उसने जल्दी में, आतुर बन कर कल्पना के समक्ष, अपने को गलत रूप में उपस्थित कर दिया। परन्तु तीर तो वह छोड़ चुका, अब वापिस नहीं आ सकता था,— —कभी भी नहीं।'

१३

• • •

अप्रत्याशित रूप से कल्पना ने जिस प्रकार का प्रदर्शन किया, वह न केवल महेन्द्र के लिये, अपितु उस के अन्य नौकरों के लिये भी, आश्चर्य का विषय था। कल्पना जब रात को सिनेमा से लौटी, तो उसका मिजाज ठीक नहीं था।

जब महेन्द्र के पास से लौट कर कल्पना अपने कमरे में पहुंची, तो उसके कुछ देर बाद ही, घर का पुराना नौकर मंगतू कल्पना के पास आया और बोला—'बहू भावी, क्या झगड़ा हो गया, महेन्द्र बाबू से! कपड़े बाँध रहे हैं, अपना सामान बटोर रहे हैं। मैंने उनसे जानना भी चाहा, तो कोई जवाब नहीं दिया। बताओ, क्या तुमने कुछ कह दिया?'

कल्पना उस समय अशांत थी, उसे स्वयं इस बात का खेद था कि उसने महेन्द्र से कठोरता का व्यवहार किया। किन्तु जिस समय मंगतू ने आकर उसे टंकोरा, तो उसका गुस्सा फिर ऊँची डिगरी पर चढ़ गया। उसने तपाक से कहा—'तो मैं क्या करूं! कोई जाता है, तो अभी! जब मैं अपनों को नही रख सकी, तो पराये का क्या भरोसा?'

मंगतू से फिर भी नहीं रहा गया, उसने कहा—'बहू, इस समय अनाज कट रहे हैं। उसकी निगरानी की जरूरत है। साल भर से जितना लगाया, अभी तो उसकी वसूली का समय है।'

इतना सुनते ही, कल्पना तुनक गयी। वह तेज स्वर में बोली—'तो तुम परायों से यह उम्मीद करते हो ! जो इस घर को अपना नहीं समझते, उन से क्यों ऐसी आशा करते हो !'

लेकिन हुआ यह कि जिस समय महेन्द्र सामान बांध रहा था, तो उसी समय, एकाएक मकान के द्वार पर तांगा रुका और कल्पना की फूआ आ गयी। मानो वह एक दैवी बात थी। उस घर में जो एकाएक विवाद उपस्थित हुआ, तो शिव के समान, फूवा ने उस विष को एक ही चुल्लू में पी लिया। संध्या होते-होते फूवा ने उन दोनों को फिर एक दूसरे के पास बैठा दिया। उस अवस्था में ही, महेन्द्र के कमरे में जाकर फूवा ने उससे कहा 'पगला न बन, तू ! यहां की अवस्था का ध्यान कर ! इस कल्पना का बाप विक्रम बड़ा चालाक है। तू न रहेगा तो वह इस बड़ी दौलत पर आकर बैठ सकता है। तुझे यहाँ जिस लिये रक्खा, उसका उद्देश्य बड़ा है। घर की वस्तु घर में रहे, मुझे यही शोभता है। इस कल्पना की बात सुनना और टालना, तेरे लिए जरूरी है।'

किन्तु महेन्द्र युवक था। उसके पास भी सम्मान का भाव था। वह तुरन्त बोला—'मैं कल्पना का नौकर बनकर नहीं रह सकता।'

फूआ एक रहस्यमयी हँसी से बोली—'साँप के जहरीले दाँत निकालने के लिये, उसे पहिले खिलाया जाता है। सपेरा बीन बजाकर उसे अपने वश में करने का प्रयत्न करता है। देखता नहीं यह नयी उम्र की कल्पना इतनी बड़ी जायदाद पाकर कुछ भी कर सकती है। लुटा सकती है। मेरे भाई की दौलत अपने बाप को भी दे सकती है। बेटा, बुद्धि से काम कर। कल्पना की बात को मन में मत रख। तुझे गुस्सा भी आये तो हँस कर टाल दे।'

और तभी, उस दिन फूवा ने कल्पना से कहा—'ऐ बहू ! तू कहे तो मैं इस महेन्द्र को साथ ले जाऊं। देख, स्वार्थ तेरा है। तुझे एक अपना आदमी चाहिये।'

कल्पना ने कहा—'फूवा, इतना आता नहीं, जितना जाता है।'

फूवा ने कहा—'यह तो ठीक है। तुझे महेन्द्र से कहना भी चाहिये, उसे रोकना चाहिये। तुझे अधिकार है। वह तेरा अपना है।' उसी समय फूवा ने महेन्द्र को बुलाया और कहा—'क्यों रे, तू इतना बड़ा हो गया और यह भी नहीं सोचता कि यहाँ इस बहू की मदद करने आया था या राजा की तरह खर्च करने!'

कल्पना ने कहा—'इन्होंने कई हजार रुपया खर्च कर दिया! आज ही मुन्शी ने मुझे बताया कि जो रुपया आता है, इनके हाथों से खर्च होता है। पूछो तो इनसे कि वह रुपया कहां गया! ऐसे तो एक दिन यह घर भी नहीं रहेगा!'

फूवा ने कहा—'रे, महेन्द्र! तू तो इतना पढ़-लिख कर भी बेकार रहा! बता तो, इतना पैसा कहाँ से आयेगा? कहे देती हूँ, आज से तुझे सौ रुपया प्रतिमास जेब खर्च के लिये मिलेगा। इससे आगे एक पैसा भी नहीं मिल सकेगा।'

कल्पना ने कहा—'मैंने आज मुन्शी से कह दिया है कि बिना मेरी अनुमती के एक पैसा भी खर्च न किया जाय।'

फूवा ने काहा—'ठीक!' वह बोली—'यह तो तुझे पहिले से करना चाहिये था। अपना नफा-नुकसान स्वयं समझना चाहिये।'

'अच्छा जा! काम देख!' फूवा ने महेन्द्र से कहा—'और देख, इस फसल का अनाज ठीक भाव से बेंचना। दस जगह मालूम करना। नौकरों पर भी निगाह रखना।'

कल्पना ने कहा—'जी, बस कर ली इन्होंने निगाह! मैं पूछती हूँ साल भर में कितनी बार ये फार्म पर गये? इन्हें तो शहर अच्छा लगता है। सिनेमा······नाटक······' यह कहते हुए कल्पना ने बड़े अजीब भाव में अपना मुँह बिचका दिया।

महेन्द्र बोला—'नहीं, ताई! यह दोष मेरा नहीं, इनका है। जब भी मैंने जाने को कहा, तो इन्होंने रोक दिया। कह दिया, वहाँ भी तो आदमी हैं। सभी भले हैं।'

फूवा बोली—'न, बहू! आदमियों पर भरोसा न करना। नलिन यही तो करता था। 'नौकर की खेती, खसम सेती' की बात तो तूने सुनी होगी। इस तरह मालिक को क्या-कुछ मिला है। नौकर मजदूरी के पैसे भी लेता है और खेत का माल भी चुरा कर ले जाता है।'

यों बात सुबह चली और संन्ध्या तक भुला दी गयी। दो-चार दिन रह कर फूवा चली गयी। जब गयी, तो कल्पना और महेन्द्र को समझा गयी। न लड़ने की बात पर कसम दिला गयी।

किन्तु उन्हीं दिनों कल्पना को गाँव से उसके पिता का पत्र मिला। जिसके अन्त में यह भी लिखा था कि शिवदास का लड़का सुधीर भी गाँव आया हुआ है। उसकी मा बीमार है।

कल्पना ने पत्र पाते ही गाँव जाने का विचार कर लिया। महेन्द्र फार्म पर चला गया था। वह नगर से लगभग २० मील बाहर था। मुन्शी को तथा अन्य नौकरों को सभी बातें समझा कर कल्पना गाँव की ओर चल दी। उसी दिन वह गाँव पहुँच गयी। उस समय संन्ध्या आ गयी थी। चौपाये जंगलों से लौट आये थे। कल्पना का तांगा घर के सामने जाकर रुका। घर के प्राणियों ने कल्पना का स्वागत किया। मा ने उसे छाती से लगा लिया।

तभी कल्पना ने मा से पूछा—'सुना है कि सुधीर की मा बीमार है?'

मा बोली—'हाँ, उसकी हालत खराब है। सुधीर भी आ गया है। वह तार देकर बुलाया है।'

कल्पना ने चंचल बनकर कहा—'मा, मैं देख आऊँ। मिल आऊँ, सुधीर की मा से।'

मा ने कहा—'तो मुँह झुँठला ले। कुछ खा ले।'

कल्पना ने खड़ी होकर कहा—'मा, अभी नहीं।' वह सुधीर के घर की ओर चल पड़ी।

वहाँ जाकर उसने देखा कि सुधीर मा के पास बैठा है। पिता कहीं बाहर गया है। कल्पना को देखते ही, सुधीर खड़ा हो गया और बोला—'अरे तू······कब······?'

कल्पना ने सहज भाव से हंस कर कहा—'अभी-अभी आई हूँ।'

'अच्छा, अच्छा, बैठ। सुना, सब ठीक।'

कल्पना ने कहा—'कृपा है।' और उसने तभी सुधीर की मा को लक्ष्य करके कहा—'मा को क्या तकलीफ है? क्या बुखार?'

सुधीर ने कहा—'सब-से बड़ा रोग बुढ़ापा है। मा का बुखार बिगड़ गया है। आरम्भ में इलाज नहीं कराया। अब तो वात, पित्त और कफ तीनों का कोप बढ़ा है।'

चिन्ता व्यक्त करते हुए कल्पना बोली—'स्थिति अच्छी नहीं है। शायद बोला भी नहीं जा रहा।'

उसी समय सुधीर की मा ने कल्पना की ओर देखा। कल्पना ने कहा—'चाची, नमस्ते! मैं हूँ कल्पना।'

किन्तु चाची नहीं बोली। कदाचित बोल नहीं सकी।

सुधीर ने पूछा—'तुम्हारे महेन्द्र बाबू का क्या हाल है? ठीक हैं? अब कहां हैं?

कल्पना ने उदास स्वर में कहा—'हजरत आजकल फार्म पर गये हैं। खेतों का अनाज कट रहा है।'

सुधीर बोला—'महेन्द्र अच्छा युवक है। प्रतिभा सम्पन्न है। वह आज के समाज में फिट बैठता है।'

कल्पना ने उस समय अपना मत व्यक्त नहीं किया। उसने अपना मुँह बीमार की ओर उठा दिया।

सुधीर ने पूछा—'तो कुछ दिन रहोगी? मैं तो एक मास रहूँगा।'

कल्पना ने कहा—'नहीं, मैं चली जाऊँगी। पिता जी का पत्र मिला था। उसी में तुम्हारी मा की बीमारी और तुम्हारा आना लिखा था।'

उसी समय सुधीर ने कहा—'उस अन्धी लड़की को कलकत्ते भेज दिया। वहाँ उसकी आँखों का इलाज होगा। डाक्टर ने कह दिया है कि आँखों में ज्योति आ जायेगी। परन्तु समय लगेगा।'

कल्पना ने कहा—'बड़ा अच्छा होगा। लड़की गरीब है। स्वभाव की भी मधुर।'

सुधीर बोला—'कम्बख्त, जाती नहीं थी। मुझे साथ ले जाने को कहती रही। उसने तो मुझको ही अपना पिता समझ लिया था।'

कल्पना ने उसी समय ऊपर आकाश की ओर देखा। जहाँ उसे लगा और अनुभव किया कि इस आसमान के समान यदि इन्सान भी उदार हो, तो सभी कुछ दे सकता है और पा सकता है। तभी सुधीर का पिता शिवदास वहाँ आया। कल्पना को देख, उसने कहा—'अरे, बिटिया, तू! अच्छा, अच्छा! कब आई?'

कल्पना ने अपने सिर की साड़ी ठीक करके कहा—'चाचा, अभी एक घण्टा पूर्व आई थी।'

शिवदास ने कहा—'मैंने सुना कि तू भी सुधीर के यहाँ गयी थी। कुछ दिन उन पहाड़ों में बिता आई।'

कल्पना ने बात सुनी और मुसकरा कर रह गयी।

शिवदास ने कहा—'यह तेरी चाची तो अब जाने वाली है। ऐसे बेचारी कब तक रह सकती है! सुधीर आ गया, यह अच्छा हुआ। मा-बेटे का मिलन तो हो गया। नहीं तो कहती थी, मेरा सुधीर मुझसे रूठ गया है। नाराज हो गया है। और मैं बहुत कहता था कि अरी, पगली, बेटा भी कहीं मा से नाराज होता है। पर यह क्या कभी मानती थी, मेरी बात!'

कल्पना ने कहा—'चाची को अभी रहना चाहिये। अब सुधीर बाबू आ गये हैं, तो इनका विवाह कर दो। बहू ले आओ।'

शिवदास ने बात सुनी, तो अचम्भे के साथ कल्पना की ओर देखा। उसे लगा कि जैसे कल्पना की बात केवल उसकी नहीं है, सुधीर की है। इसलिये उसने हर्ष भरे स्वर में कहा—'बेटी, अब तो भगवान जाग गये हैं, इस घर के! एक बहू क्या, दस आ सकती हैं। पर सुधीर कहे तो! यह तो सदा इन्कार करता रहा है। हमें समझाता रहा है कि बेटा ही मा-बाप की सेवा कर सकेगा, बहू नहीं।'

इतना सुनकर, कल्पना ने कनखियों से सुधीर की ओर देखा। मानो उसने यह समझना चाहा कि अपने पिता की बात सुन कर उसके ऊपर किस प्रकार का प्रभाव पड़ रहा है। उसके चेहरे पर क्या आ रहा है। किन्तु सुधीर उस समय हरे आसमान की ओर निगाह उठाये हुए था। उसके माथे में कुछ सलवटें पड़ी थीं। वह गम्भीर बना था।

कल्पना ने पूछा—'चाची की दवा कौन कर रहा है?'

शिवदास ने कहा—'शहर का डाक्टर है। सुबह आता है। सुधीर ने एक और डाक्टर को भी दिखाया। पर लाभ अभी कुछ नहीं हो रहा। मुझे तो ढंग खराब लग रहा है।'

कल्पना ने साँस भर कर कहा—'भगवान भला करेगा।'

उसी समय सुधीर ने कल्पना की ओर देखा। वह उठ खड़ा हुआ। कल्पना भी उठ चली। उसने देखा कि मकान में दूसरी ओर एक औरत बैठी है। वह संध्या के भोजन की तैयारी कर रही है। उसे देख, कल्पना ने जानना चाहा। पर तभी सुधीर ने स्वयं बता दिया कि वह उसकी मामी है। विधवा है। बेचारी गरीब है। अब यहीं आकर रहने लगी है। मा ने बुला ली है।'

कल्पना ने कहा—'चलो, दोनों का अभाव पुर गया है। चाची भी अकेली थी। बुढ़िया थी।'

सुधीर ने साँस भरी और कहा—'हाँ, कल्पना ! इस संसार का सम्बन्ध इसी प्रकार चलता है। कोई कुछ देता है, कोई कुछ लेता है। इसी से तो स्वार्थमय संसार बना है।'

कल्पना बोली—'लेकिन जब स्वार्थ अन्धा बनता है, तो बुरा लगता है। मैं अनुभव करती हूँ कि आज का इन्सान देता कम है, लेता अधिक है।'

सुधीर रूखे भाव से मुसकरा दिया—'यह तो क्षमता की बात है। आज ऐसी ही परम्परा है।'

मकान के द्वार पर दोनों पहुँच गये। अन्धेरा भी बढ़ गया। सुधीर अपने घर से निकल, कल्पना के साथ-साथ चल दिया।

उसी समय कल्पना ने कहा—'देखते हो, इस रास्ते को और उस पाठशाला को, मुझे भरोसा नहीं था कि जीवन में फिर कभी, तुम्हारे साथ, मैं अपनी पुरानी स्मृति की याद कर सकूँगी। ऐसे ही अन्धेरे में, इसी गलियारे में, हम-तुम खड़े होकर बातें किया करते थे।'

सुधीर ने कहा—'मैं जब गाँव में आया, तो इस गलियारे और पाठशाला को देख, तुम्हारा स्मरण हुआ था। खेत-खलिहान को देखकर भी, पुराना समय याद आया था।' यह कहते हुए उसने साँस भरी और बोला—'पर सभी-कुछ बदल गया ! देखता हूँ हमारे समान इस गाँव का समाज भी बदल गया। मेरे देखे-सुने व्यक्तियों में से बहुत से अपनी यात्रा समाप्त कर गये। जो रहे, वे भी बदल गये। बच्चे, जवान बन गये। जवान बूढ़े हो गये। गाँव की गरीबी ने सभी में परिवर्त्तन कर दिया।'

कल्पना ने कहा—'शहर की दुनिया और गाँव की दुनिया में बड़ा अन्तर है। सच, यहां तो अन्धेरा है ! दरिद्रता है !'

सुधीर जैसे कड़ुवे भाव से मुसकराया—'हाँ, कल्पना ! यहां अन्धेरा है ! अशिक्षा है ! दरिद्रता है ! देखती हो, जिनके कच्चे मकान थे, वे भी टूट गये हैं। कुछ ने अपने पक्के मकान बनवा लिये हैं।'

कल्पना ने हँस कर कहा—'जिनके पास पैसा है, वे उसका प्रदर्शन करते हैं। बताते हैं।'

सुधीर बोला—'मेरे पिता ने पक्का मकान बनवा कर अच्छा नहीं किया। सच, मुझे लगता है कि दिखावा किया। इन गरीबों में अपनी मूँछें ऊँची करने का प्रयत्न किया।'

उसी समय कल्पना का मकान आ गया, वह बोली—'आओ अन्दर! मा से मिल कर जाओ।'

सुधीर बोला—'एक दिन आया था। मिल-बोल गया था। तुम जाओ। कल आऊँगा।'

कल्पना अन्दर चली गयी। सुधीर लौट गया।

किन्तु जब दूसरा दिन आया, तो उसके प्रातः में ही कल्पना ने सुन लिया कि सुधीर की मा का देहावसान हो गया। वह उसी समय वहाँ पहुँचना चाहती थी। परन्तु मा ने उसे रोक दिया। कह दिया, अब न जा। देर हो गई है, उसकी मा की अर्थी को घर से उठा लिया होगा।'

लेकिन जब दोपहर के समय कल्पना उस घर पहुँची, तो सुधीर सिर मुँडाये और एक अंगोछा पहिने नीचे धरती पर बैठा था। वह अत्यन्त गम्भीर था। जब उसने पास बैठी हुई कल्पना की आँखों में आँसू देखे, तो बोला—'इस संसार का यही नियम है, कल्पना! यही चिर-परम्परा है!

१४



कल्पना के मन में यह बात अनेक बार आई कि यह सुधीर कैसा है और किस धातु से निर्मित हुआ है। क्योंकि जिस स्थान पर सुधीर नौकरी कर रहा था, वहाँ पर एक बार क्या, अनेक बार कल्पना को यह देखने का अवसर मिला कि सुधीर बड़ा अफसर बन कर न तो अपने सहायकों पर और मजदूरों पर अपनी अफसरी का कोई प्रदर्शन कर पाता था; न किसी का अहित कर सकता था। कल्पना के लिये यह भी कम असमञ्जस का विषय नहीं था कि सुधीर सम्पन्न बन कर भी, विवाह सरीखे महत्त्वपूर्ण विषय के प्रति उदासीन था। गाँव में आकर भी उसने अपने उसी स्वभाव का प्रदर्शन किया। कल्पना की इच्छा थी कि वह जल्दी शहर लौट जायेगी। परन्तु जब सुधीर की मा का देहावसान हो गया, तो उसे रुकना पड़ा। उसने शहर अपने मुन्शी को पत्र लिख दिया कि अभी वह ठहर कर आयेगी। तभी एक दिन देखती है कि महेन्द्र गाँव में आ धमका। आते ही जब उसने सुधीर के आने और उसकी मा के मरने का समाचार सुना, तो उसका माथा ठनक गया। उसने सहज ही समझ लिया कि कल्पना क्यों गाँव में आई है। यद्यपि, सुधीर के पास जाकर महेन्द्र के मन में यह बात घर कर गयी थी कि यह कल्पना जो अब विधवा बन

चुकी है, अपने दिवंगत पति को भूलकर, बचपन के साथी, सुधीर की सीमा में आते ही, लोप हो जाती है।

निदान, महेन्द्र के मानस का वह राक्षस जो देर से सोया हुआ था, कल्पना के गाँव में आते ही, जाग उठा। वह अपना प्रदर्शन करने के लिये मचल गया। क्योंकि सुधीर के पास से लौट कर कल्पना ने जिस प्रकार की चोट महेन्द्र के मर्मस्थल पर मारी थी, उसका घाव अभी भरा नहीं था। उसने भी इस बात को समझ लिया था कि वह प्रहार, कल्पना ने सुधीर के प्रभाव में आकर किया। वह सुधीर के पास से लौट आई, किन्तु उसका मन और मस्तिष्क अभी उसी दिशा में घूम रहा था।

लेकिन, कल्पना के गाँव में ही,—उसके मां-बापों के समक्ष—महेन्द्र उसे अपमानित करे, ऐसा सुयोग उसे सुगमता से नहीं मिला। परन्तु वह स्वयं भी गाँव का वासी था। गाँव की राजनीति से पूर्ण परिचित था। इसी के बल पर, उसने सर्व प्रथम यह जानने का प्रयत्न किया कि गांव में ऐसे कितने और कौन-कौन व्यक्ति हैं कि जो कल्पना और सुधीर के पिता से ईर्षा करते हैं। कदाचित् यह जानने का एकमात्र कारण यह था कि गाँव की परम्परा में, बल्कि समूचे मनुष्य समाज की सीमा में, वह व्यक्ति-समूह, उस व्यक्ति के प्रति कभी सद्भाव्य और कृपालु नहीं बन सकता कि जो उसी के समक्ष वैभव का प्रदर्शन करता हो। अधिक पैसा प्राप्त करके अच्छा खाता हो, अच्छा पहनता हो और अच्छे मकान में रहता हो। वह मनुष्य-वर्ग में प्रतिष्ठित कहलाने की क्षमता भी उपार्जित कर सका हो।

चतुर महेन्द्र ने गांव के उस जीवन में सहज ही ऐसे व्यक्तियों को खोज लिया और उनसे जल्दी ही सम्पर्क स्थापित कर लिया। लेकिन उसने अपना प्रथम लक्ष्य सुधीर के पिता को बनाया। उसके विरोधियों को खोजा। क्योंकि उस व्यक्ति के पास नया पैसा आया था। नया मकान और नयी जमींन बनी थी। उसके कुटुम्बी अब भी गरीब थे।

जिनमें उससे पहिले से ईर्षा रखने वाले व्यक्ति मौजूद थे। क्योंकि महेन्द्र का एक यह भी मत था कि भूखे लोग कुत्ते के समान भोंकते हैं। उनके हृदय भी क्षुद्र होते हैं।

यों, महेन्द्र को उस गाँव में आये एक सप्ताह हो गया। इतने बीच में उसने देखा कि कल्पना का अधिक समय सुधीर के घर बीतता था। सुधीर अधिकतर अपने मकान के ऊपरी कमरे में बैठता था। संन्ध्या समय नदी पर पहुँच जाता। तब भी कल्पना उसके साथ होती। किन्तु इसके विपरीत महेन्द्र या तो सोता या अकेला ही खेत-खलिहानों में चला जाता। वह गाँव के किसानों के पास जा बैठता। चूँकि महेन्द्र विक्रम का सम्बन्धी था, पूरा बाबू बना हुआ था, इसलिये जहाँ भी जाता, उसका आदर किया जाता। महेन्द्र बातें करने में भी चतुर था, फलस्वरूप. वह जल्दी ही, बहुत से आदमियों से परिचित बन गया।

गाँव में शिवदास के कुटुम्बियों में ऐसे कई व्यक्ति थे कि जो शिवदास की बढ़ौतरी देख कर मन-ही-मन आग के अँगारे के समान दहक रहे थे। यद्यपि जब से सुधीर गाँव में आया, तो वह सभी व्यक्तियों से मिला। अपने घर के विरोधियों से भी उसने सम्पर्क स्थापित किया। उनके दुःख-दर्द की बात पूछी। कदाचित यही कारण था कि वे विरोधी बरबस ही सुधीर की उस सज्जनता के कायल बन गये। उन सभी ने उसे आशीष प्रदान किये। किन्तु जब उन्हीं व्यक्तियों की सोयी हुई राक्षसी वृत्ति को महेन्द्र ने आकर जगाया और कहा कि देखो, यह सुधीर पूरा बगुला भगत बना है। जमींदार की लड़की कल्पना को और उसके माल को हड़पना चाहता है, तो तब, उन लोगों ने सहज ही भरोसा कर लिया कि हाँ, बात तो ठीक है। यह विधवा लड़की क्यों इसके पास आती-जाती है। क्या यह ठीक है! ऐसा भला आदमी बना है और ऐसी नीयत रखता है, राम-राम!

गाँव की बात थी कि जो चार आदमियों में उठी, तो सहज ही चार सौ में फैल गयी। महेन्द्र ने गाँव के जिस फूँस के ढेर में आग लगायी थी,

वह फूँस का झोंपड़ा जलने लगा। उसमें धुँआ उठने लगा। बस, केवल हवा के एक झोंके की दरकार थी। हवा चले, तो वह झोंपड़ा क्या, गाँव-का-गाँव जल उठेगा!

लेकिन, महेन्द्र ने एक ही समूह में इस भावना का प्रचार नहीं किया, उसने विक्रम के विरोधियों को भी पकड़ लिया। उनके कानों में भी इस बात को पूर दिया कि जमींदार दूसरों पर उँगली उठा सकता है, परन्तु अपनी आँख का तिनका नहीं देख सकता। देखो न कलपना को, सुधीर के साथ नदी पर जाती है······दिन भर उसके घर में बैठती है। क्या यही इस गांव की परम्परा है! यही है, जमींदार के घर का चरित्र! और इतना देख कर गांव में कोई मुँह भी नहीं खोलता। कोई भी यह नहीं समझता कि गरीब किसानों के पास यदि पैसा नहीं, महल नहीं, राजाओं की पोशाक नहीं, तो चरित्र तो है। बहिन-बेटियां भूखी रह कर भी अपनी लाज की रक्षा करती हैं।

इस चिंगारी को लगा कर और एक सप्ताह गाँव में बिता कर, महेन्द्र शहर चला गया। वह अपने प्रयत्न की प्रतिक्रिया देखने के लिये गांव में नहीं रहा। बल्कि उसने गाँव में कुछ ऐसे व्यक्ति चुन लिये कि जो उसे शहर में जाकर बता सकें कि उनके प्रयत्न का क्या फल हुआ। महेन्द्र ने ऐसे आदमियों को पेशगी रुपया भी दे दिया। उसने गाँव में उन व्यक्तियों से अधिक सान्निध्य बनाने के लिये खिलाया-पिलाया। जिसका सीधा अर्थ यह था कि महेन्द्र एक ऐसे स्तर पर उतर गया कि जहां इन्सान के मन की गन्दगी को छोड़ सात्विक पदार्थ का नाम नहीं था। इसलिये, जब महेन्द्र गाँव से लौटा, तो उसके पीछे ही, गाँव में एक ऐसा विवाद उठ खड़ा हुआ कि जिसका प्रभाव सुधीर के मस्तिष्क पर अच्छा नहीं पड़ा। वह इसकी कल्पना भी नहीं कर सका कि महेन्द्र उस गन्दे वातावरण को तैयार कर गया। जिस दिन सुधीर की मा के मरने पर गाँव का भोज रखा गया, तो उससे एक दिन पूर्व गाँव में कुछ लोग एकत्र हुए। उन्होंने

विक्रम और सुधीर के पिता को भी बुलाया। उनसे कहा गया कि आप दोनों इस गाँव की परम्परा को बिगाड़ रहे हैं। एक व्यक्ति ने कहा कि ठाकुर विक्रमसिंह की लड़की विधवा है और वह शिवदास के लड़के के पास आती-जाती है। गाँव में यह चर्चा है कि वह दोनों जिन्दगी में साथ रहना चाहते हैं। ऐसी अवस्था में गांव चाहता है कि आप दोनों इस बात का उत्तर दें।

सुधीर का स्वभाव यद्यपि काफी नम्र था, परन्तु जब उसने यह बात सुनी, तो वह अत्यन्त गम्भीर बन गया। उसने तुरन्त ही, उठ कर कुछ कहना चाहा, परन्तु ठाकुर विक्रम ने उसे रोक दिया और स्वयं अपनी ओर से कहा —'वे कौन-कौन हैं नाक वाले और लाज वाले, मुझे जरा अपनी सूरत तो दिखायें।'

एक जवान लड़का खड़े होकर बोला—'वे हम हैं। यहाँ पर बैठे सभी हैं। यह गाँव का और बिरादरी की इज्जत का मामला है। यह शहर नहीं है।'

विक्रम स्वभाव का क्रोधी और शिकारी व्यक्ति था। उसने तुरन्त ही, सामने खड़े आदमी को आदेश दिया—'जरा मेरी बन्दूक तो लाना! बताऊँ इस इज्जत वाले को!'

किन्तु उस बन्दूक का नाम लेते ही, चौपाल पर शोर मच गया। लाठियां उठ गयीं और एक लाठी विक्रम पर पड़ने वाली थी कि उसी समय जैसे ही सुधीर खड़ा हुआ कि वह भरा हाथ उसके सिर पर पड़ गया। सिर फट गया। सुधीर के कपड़े खून में भर गये और वह वहीं कटी डाल की तरह गिर पड़ा। वह गाँव की चौपाल थी, जहाँ आदमी एकत्र थे। एक ओर से लाठियाँ उठीं, तो दूसरी तरफ से भी आ गयीं। वे क्रूरता और बर्बरता के साथ चल पड़ीं। कई आदमियों के सिर फट गये। किन्तु उसी समय कल्पना दौड़ी हुई वहाँ आई। वह चीख कर बोली—'अरे, राक्षसो! मुझे मार दो! लो, मेरा सिर······मेरा प्राण······'

कल्पना का वहाँ आना एक दैवी घटना थी। जैसे आग पर पानी पड़ गया। लाठियां नीचे गिर गयीं। उसी समय विक्रम बन्दूक और गोलियाँ लेकर वहाँ आ पहुँचा। किन्तु कल्पना ने अपने स्वर पर पूरा जोर देकर कहा—'पिता जी मुझे मारो······मेरा खून करो······'

विक्रम क्रोध में था। गाँव ने उसका क्रोध पहिले भी कई बार देखा था। कल्पना को भी पता था। इसलिये, वह तुरन्त ही अपने पिता से लिपट गयी और उसने बन्दूक छीनने की चेष्टा की। तभी गांव के एक बुजुर्ग ने पास आकर कहा—'विक्रम, अन्धे मत बनो! जिनके सिर फूट गये हैं, उन्हें सम्भालो। बन्दूक दे दो। देखो सुधीर ·····'

सुधीर को लोगों ने चारपाई पर लिटा दिया था। कुछ लोग उसकी सम्भाल में लग गये थे। तभी कल्पना ने पास जाकर देखा, तो जैसे उसकी आँखों में अन्धेरा छा गया। वह वहीं सुधीर के पास बैठ गयी। विक्रम को लोग पकड़ कर ले गये और उसे घर पहुँचा दिया गया। सुधीर का खून बन्द हो चुका था। उसके सिर में रेशम जला कर भर दिया गया। पट्टी बाँध दी। तभी उसने आँख खोलीं। देखा कि गाँव के बहुत से व्यक्ति उसकी चारपाई के पास खड़े हुए थे। वे सभी उसकी ओर देख रहे थे। तभी उसने कल्पना की ओर देखा। उसे पास बुलाया और बोला—'अपने पिता से जाकर कहो, पुलिस को न बुलायें। दोष मेरा है। गाँव का नहीं। और किसी का भी नहीं।'

कल्पना ने चीख कर कहा—'लेकिन क्या·····क्या किया तुमने!'

सुधीर ने फिर आँख मूँद लीं। वह मौन बन गया।

एक व्यक्ति ने कहा—'कई आदमियों के चोटें आ गयीं। सच, आज इस गाँव पर बुरी गिरह आई।'

कल्पना उसी समय उठी और घर की ओर चल पड़ी। वह कितनी दुर्भागी और हीन जीवन की साथिन बन गयी, यह उसकी बुद्धि में नहीं आ रहा था। सचमुच, वह मरना चाहती थी। उसने घर पहुँच कर देखा

कि पिता ने घोड़ी पर जीन कसवा कर एक आदमी थाने भेज दिया था। इतनी देर में तो वह आधा रास्ता पार कर चुका होगा। यह देख, कल्पना को और अधिक क्षोभ हुआ। बैठकखाने में उसके पिता के पास अनेक व्यक्ति बैठे हुए थे। वे सभी गम्भीर थे। वह क्षण उस गांव के लिये अत्यन्त दुसःह था। मार्मिक बना था। क्योंकि इस बात का भी सभी को पता चल गया कि अब पुलिस आयेगी। वह गिरफ्तारी करेगी। जाने किस-किसको पकड़ेगी। इसलिये घर-घर में परेशानी थी। यह सबको पता था कि सुधीर सरकार का बड़ा अफसर है। उसके पास पैसा है। विक्रम का भी पुलिस से मेल है। उसे खिलाता-पिलाता है। वह भी पैसेवाला है।

सुधीर घर पहुँच गया था। उसने डाक्टरी उपचार कराने के लिये मना कर दिया था। क्योंकि जो चोट उसके सिर में लगी, वह उचटती लगी थी। उससे खून तो निकला, परन्तु घाव मर्मान्तिक या अधिक गहरा नहीं था। लेकिन जो चोट उसके दिल पर पड़ी, वह अवश्य तीव्र थी। उसकी पीड़ा भी असह्य थी।

संध्या हुई और विक्रम के साथ, थानेदार, दो सिपाही सुधीर के पास पहुँचे। सुधीर उस समय आँख बन्द किये पड़ा था। पास में कई आदमी बैठे हुए थे। आहट पाकर सुधीर ने आँख खोलीं और सर्व प्रथम उसने थानेदार को देखा। तभी उसने विक्रम की ओर अपनी आँखों को उठा दिया। वह बोला—'आपने पुलिस बुलाई? भला क्यों?'

विक्रम ने कहा—'सुधीर बाबू, इस गांव में बदमाशी बढ़ गयी है! भले आदमियों पर कीचड़ उछाली जाती है!'

सुधीर ने कहा—'जब भले आदमी गाँव की परम्परा का निर्वाह न करें, तो तब क्या हो? जो कुछ हुआ, आप उस पर धूल डाल दीजिये। दोष मेरा है, आपका है। आप क्यों नहीं अपनी लड़की को रोकते कि वह मुझसे न बोले। मैं क्यों नहीं आपकी पुत्री से यह कह देता कि वह मेरे पास

न आये। यदि आप अपने को सत्य पर खड़ा मानते हैं, तो समझिये कि गाँव की बात में भी संगति है।'

थानेदार ने कहा—'आपके बहुत ऊँचे विचार हैं, सुधीर बाबू!'

विक्रम बोला—'यह असम्भव है कि मेरी लड़की तुम्हारे पास न आये। यह उसकी इच्छा का प्रश्न है, वह स्वतन्त्र है। अब मेरा उस पर कोई अधिकार नहीं है।'

'तो फिर आप गाँव की भी बात सुनने के लिये तैयार रहिये। आप क्या लोगों को इतना भी अधिकार न देंगे कि वे जबान से कुछ कह सकें। मैंने दोष किया, तो सजा पा गया।'

विक्रम ने थानेदार को इशारा किया और वह उसे लेकर चौपाल पर चल दिया। जब वे सब चौपाल पर पहुँचे, तो वहाँ जो व्यक्ति बैठे हुए थे, विक्रम ने उनमें से कइयों की ओर इशारा किया कि वे सब उस गिरोह में थे।

थानेदार ने उन सबकी ओर देख कर कहा—'तुमने जो कुछ किया, अच्छा नहीं किया।' वह बोला—'मुझे अफसोस है कि सुधीर बाबू तुम पर कानूनी कार्यवाही नहीं करना चाहते। पर मैं बताये देता हूँ अगर आज के बाद तुम्हारी कोई शिकायत मिली, तो लम्बी सजा पा जाओगे। और कहाँ हैं वे लोग जिन्होंने झगड़ा किया था?'

किसी ने कहा—'सब चले गये। भाग गये। कुछ चुटीले बन गये।'

थानेदार बोला—'इस बुद्धि का भी कोई मूल्य है कि तुम झगड़ा भी उनके साथ करना चाहते हो, जो तुमसे बलवान हैं। जिसके पास पैसा है, प्रतिष्ठा है। बोलो, लिखाओ तुम सब अपने-अपने नाम!' और उसने कागज-कलम लेकर उनके नाम लिखने आरम्भ कर दिये। जो वहाँ नहीं थे, उनके भी नाम लिखाये गये।

यों पुलिस आने की बात गाँव भर में फैल गयी थी। कौन-कौन गिरफ्तार होगा, इसकी आशंका और कानाफूसी भी हो रही थी। किन्तु

थानेदार तो नाम लिख कर लौट गया। संध्या आ गयी, अन्धेरा बढ़ गया। उसी समय जब कल्पना नौकरानी के साथ गाँव का अन्धा गलियारा पार करके सुधीर के घर पहुँची, तो वह यह देखकर चकित हुई कि गाँव का एक जवान लड़का सुधीर के पैरो में सिर रखे बैठा था और कह रहा था—'मुझे क्षमा कर दो, सुधीर बाबू! मेरी ही लाठी ने तुम्हें घायल कर दिया।' तभी उसने बताया कि जो आग आज भड़की उसे ठाकुर विक्रम का सम्बन्धी वह शहर से आया महेन्द्र बाबू ही लगा गया था।'

कल्पना ने जब इतनी बात सुनी, तो सन्न रह गयी। एकाएक उससे बोला नहीं गया। जैसे उसका स्वाँस रुक गया······प्राण आँखों में उतर आया, उस कल्पना का!

१५

• • •

कल्पना अभी सुधीर के द्वार पर खड़ी थी। उसने बात सुनी तो उल्टे-पैरों मुड़ गयी। रास्ते में नौकरानी ने पूछा भी, खड़ी-खड़ी कैसे लौट आईं, बीबी जी! किन्तु कल्पना ने कुछ नहीं कहा। उसने तेज चाल चल कर रास्ता पार किया और घर पहुँच गयी। देखते ही, मा ने पूछा—'अरी, क्या हाल है, सुधीर का, ? तू बड़ी जल्दी लौट आई!'

किन्तु कल्पना ने मा से कुछ नहीं कहा। वह अपने कमरे में चली गयी। तब नौकरानी ने सारी स्थिति बता दी। यह सुन, मा कल्पना की ओर चली, तो देखा कि वह अपनी साड़ियों की तह करके बक्स में रख रही थी। मा ने वहाँ जाते ही कहा—'अरी, कल्पना—'

कल्पना ने कहा—'मा, उस बदमाश महेन्द्र ने मेरा नाश कर दिया। वह मुझे अपनी औरत बनानी चाहता है, समझी! एक दिन यही उसने मुझसे सिनेमा में बैठ कर कहा था। कम्बख्त फूवा ने उसे क्या लाकर बैठाया, मेरा हजारों रुपया बिगाड़ दिया। मैं सुबह ही जाऊँगी। पिता जी साथ जायेंगे। मैं उस महेन्द्र को अब एक मिनट भी नहीं रखूँगी।' यह कहते हुए कल्पना की आँखें भर आईं।

मा ने कहा—'फिर भी बात क्या! उसने यहाँ क्या किया?'

उसी अवस्था में कल्पना बोली—'उसने ही गाँव के आदमियों को फुसलाया। षड़यन्त्र रचा। वह सुधीर से जलता है। उसके पाँव की धोवन तो है नहीं और जैसे समझता अपने को लाट साहब का बच्चा है! रामपत के लड़के की तो लाठी सुधीर को लगी। वही अब उसके पैर पकड़े रो रहा था। असली बात भी बता रहा था।' कल्पना ने कहा—'मैंने इतनी बात सुनी, तो द्वार से लौट आयी। सुधीर के सामने पहुँचने की हिम्मत भी नहीं कर सकी।' वह कहने लगी—'मा, मैंने तो इस सुधीर को अब देखा। इसके काम करने की जगह देखी। सच, सुधीर देवता है। और आज तुमसे यह भी कहती हूँ मा कि सुधीर मुझको विधवा देखकर अपना विवाह भी नहीं कर रहा है। मैं यह भी जानती हूँ कि वह मुझे पाने की इच्छा नहीं करता। वह इस जिन्दगी में ऐसा नहीं कर सकता। जाने किस जन्म के अच्छे भाग्य बटोर कर लाया शिवदास कि ऐसा पुत्र पा गया। वह तो भगवान का चिन्तन करने के अलावा कुछ भी नहीं चाहता। इन्सान के दर्द की जाने कितनी बड़ी पीड़ा यह सुधीर अपने हृदय में समेटे फिरता है। मैंने तो उसे भरी रात में जाग कर रोते देखा है।'

मा बोली—'बेटी, यह गाँव है। सुधीर देवता भले ही हो, पर पहिले इन्सान है। जवान स्त्री-पुरुष का अकेले में रहना क्या शोभता है! आज जैसा लोगों ने कहा और समझा, गाँव ही क्या, शहरों में भी क्या अच्छी नजर से देखा जाता है। महेन्द्र ने ऐसी बात लोगों से कही, सचमुच बुरा किया।' यह कहते हुए मा ने साँस भरी और कहा—'मुझे तो तेरा ही दुःख खाये जा रहा है, कल्पना! तू भरी जवानी में न लुटती, तो ऐसा क्यों सुना जाता! आज तो जाने क्या होने को था। तेरे पिता को क्रोध भी बहुत चढ़ा था। मैं तो समझी नहीं, आये थे बन्दूक लेने, सो न लेने देती। पर चलो, भगवान ने खैर की। किसी के चोट भी गहरी नहीं आई। पर कहे देती हूँ तेरे पिता को यह बात भूलेगी नहीं। दीमक की तरह चाटेगी। मैं कहती हूँ किसी दिन कुछ कर न बैठें, अब मुझे यही डर रहेगा।'

कल्पना बोली—'मा, पिता जी तो शायद भूल भी जायेंगे। पर सुधीर नहीं भूलेगा। जरूर वह इस गाँव से शीघ्र चला जायेगा। वर्षों में आया था कि इतनी बड़ी लाञ्छना का शिकार बन गया!'

उसी समय कल्पना का पिता वहाँ आया। कल्पना की मा कमरे से बाहर निकल गयी। पति को देख कर उसने कहा—'कुछ सुना तुमने, यह आग उस महेन्द्र ने लगायी थी!'

पति ने कहा—'यही मैंने सुना है। उसने यहाँ कुछ लोगों को शराब और सुल्फा भी पिलाया। कुछ पैसे भी दे गया। ओल, कह तो साले को जेल भिजवा दूँ। मैं मरवा भी सकता हूँ।'

पत्नी बोली—'न, न, खुद ठोकर खायेगा।'

ठाकुर विक्रम ने कहा—'कल्पना की मा, वह महेन्द्र तो मेरी बेटी और इसके धन का मालिक बनना चाहता है। कल्पना की फूवा ने उसे इसलिये रखा है।'

पत्नी बोली—'कल्पना सुबह जा रही है। तुम्हें भी ले जाने को कह रही है। और मुझे भय है कि कहीं तुम······'

विक्रम ने कहा—'हाँ, यह ठीक है। मैं मुन्शी मेहताबराय को भेज दूँगा। एक ठाकुर का लड़का साथ कर दूँगा। वह जाते ही बाबू जी का सामान न फेंक दे, तो बात क्या!'

पत्नी ने कहा—'ऐसा करना भी क्या ठीक है! और दुश्मनी निकालेगा।'

विक्रम ने तेज स्वर में कहा—'क्या दुश्मनी निकालेगा, मुझसे! मेरी लड़की अब बच्ची नहीं है। अपना भला-बुरा समझती है। अपनी इच्छा की मालिक है।'

पत्नी बोली—'सुधीर से कहो कि वह विवाह कर ले। जानते तो हो, इन दोनों का पुराना मेल है। कहने वाले तो झूठ बात को भी बढ़ाते हैं। पर जब सच हो, तो क्या उसे झूठ कहा जा सकता है। जो देखेगा, वह

कहेगा। जो करेगा, वह सुनेगा। तुम तो आव देखो-न-ताव, झट बन्दूक कन्धे पर उठाते हो। पर मैं कहती हूँ, ऐसे तुम ही किसी दिन मारे जाओगे। घर भी बरबाद कर दोगे। तुम सोचते होगे, इस बन्दूक से जैसे चिड़िया मार दी जाती है, वैसे ही इन्सान! कोई जानवर मर कर क्या बदला लेगा। पर इन्सान के साथ तो सरकार है, समाज है, धर्म है। न्याय है और कानून है। मेरी बात मान लो।'

विक्रम बोला—'कल्पना की मा, मैं सहमत हूँ। पर मुझे यह सम्बन्ध होता नहीं दिखता। अब तो लगता है कि यह सुधीर······'

पत्नी बोली—'मैं इस बात को नहीं मानती। सुधीर ऐसा योगी बन गया कि औरत की इच्छा नहीं करता! मैं कहती हूँ कल्पना के लिए वह जान देता है। उसे बचपन से प्यार करता है।'

'तो वह विधवा समझ कर तैयार नहीं होता होगा। दकियानूसी होगा। वैसे बातों से तो ऐसा लगता नहीं। बड़ा उदार और नव-चेता बनता है।' विक्रम ने सांस भरी और ऊपर काले आसमान की ओर देख कर कहा—'मैं लड़की की अवस्था देखता हूँ तो छाती पर साँप-सा लोटता पाता हूँ। मैंने तो सोचा था कि वह महेन्द्र······'

पत्नी ने कहा—'नहीं, नहीं, अब महेन्द्र से कल्पना किसी प्रकार भी सम्बन्ध नहीं रखेगी। मैं कहती हूँ कि उसे भी नहीं रहना चाहिये। जिसने गाँव में इस तरह की बात फैलायी, वह किसी तरह भी अच्छा नहीं हो सकता। वह तो लम्पटी है। उसने तो यहां ऐसा काम कि बस···यह कहो कि गिरह टल गयी। गाँव की बरबादी बच गयी। जाने कितने घर तबाह हो गये होते, आज!'

विक्रम ने चिन्तातुर बन कर कहा—'बेशक! बात बड़ी थी, पर दब गयी। कल्पना न पहुँचती, तो बात बहुत बढ़ गयी थी।'

साँस भर कर पत्नी बोली—'मैं कहती हूँ न कि आदमी बड़ा खूँखार है! निरा भेड़िया है। यह जाने कब, कैसा बन जाये, क्या सहज में समझा

जा सकता है ! सचमुच, मैंने तो तुम्हें भी आज तक नहीं समझ पाया।'

बात सुनी तो बलात् विक्रम ने हँस दिया। वह वहां से चला गया।

किन्तु जब प्रातः होने पर कल्पना जाने लगी, तो तभी सुधीर के घर से आदमी आया और समूचे घर को मृतक भोज का बुलावा दे गया। उसी समय कल्पना की मा ने आदमी से कह दिया, सुधीर से कहना, कल्पना जा रही है। किन्तु वही आदमी फिर आध घण्टे बाद आया और बोला—'मा जी, सुधीर बाबू ने कहा है, कल्पना आज न जाय।'

माजी ने कहा—'कल्पना अपने कमरे में है, जाकर कह।'

निदान, आदमी ने सुधीर का संवाद कल्पना को जा सुनाया।

उस समय कल्पना तैयार थी। ताँगे की प्रतीक्षा में थी। तभी मा उसके पास पहुँच कर बोली—'बिटिया, सुधीर की मा का श्राद्ध है, तुझे उसके यहाँ जरूर जाना चाहिये। सुनती हूँ, जिस-जिसने रात को झगड़ा किया, वे सभी उसके यहाँ जायेंगे। समूचे गाँव को बुलावा दिया है। कस्बे से हलवाई आया है। कल से भट्टी चला रहा है। सुधीर ने गांव के भंगी-चमारों को भी बुलाया है।' उसकी मा ने कहा—'भगवान ने पैसा भी और दिल भी दिया है, इस सुधीर को। आज तक गाँव में क्या किसी ने ऐसा किया है।' वह कहने लगी—'मैंने आदमी से पूछा था कि सुधीर की कैसी हालत है, तो उसने कहा चारपाई पर पड़े हैं। सो, तू जा न उसके पास। रात गई भी और लौट आई।'

कल्पना बोली—'मा, मेरा मुँह काला हो गया है। मेरे कारण ही सुधीर बाबू को इतना आघात पहुँचा है। भला बताओ, अब मेरा मुँह क्या उन्हें दिखाने योग्य रहा है।' किन्तु उसी समय द्वार की ओर देख, कल्पना चौंक गयी। वह छूटते ही बोली—'अरे, तुम······हाय!' उसी समय मा ने भी देखा कि सुधीर सिर से पट्टी बाँधे उस कमरे के द्वार पर

खड़ा हुआ है। वह कुछ कहती कि तभी कल्पना लपक कर आगे पहुँच गयी और सुधीर का हाथ पकड़ कर बोली—'भला क्यों आये, तुम !'

सुधीर कमरे में आ गया। कल्पना ने तुरन्त अपना बिस्तरा खोल दिया। पलंग पर बिछा दिया। सुधीर पड़ गया। उसी अवस्था में उसने कहा—'यहाँ तक आ तो गया, परन्तु मुझे अनुभव हुआ कि बड़ी कमजोरी आ गयी। रात खून अधिक निकल गया।' उसने कल्पना की ओर देखकर कहा—'सुना, तुम रात मेरे घर गयी थीं। कमरे के द्वार से लौट आईं। भाभी ने मुझसे कहा था। अब सुना कि तुम,——' सुधीर बोल नहीं सका। उसकी आँखें भर आईं।

कल्पना ने कहा—'अब मैं नहीं जा रही, सुधीर बाबू ! देखिये, आप''''''सच,''''''

सुधीर ने कहा—'कल्पना, यह मेरी भावना का प्रश्न है। ऐसे भोज मैं पसन्द नहीं करता। परन्तु पिताजी के सदृश मेरी मा भी पसन्द करती थी। कुटुम्बी भी पसन्द करते हैं। सो, तुम अपनी मा के साथ चलो और वहाँ का प्रबन्ध करो। पूरे गाँव का भोज है। कुछ सम्बन्धी भी आ गये हैं। उस काम को अपने हाथों से निबटा दो। किसी को कोई शिकायत न हो। अपने पिता जी को भी ले चलो।'

इसी बीच कल्पना की मा कमरे से बाहर चली गयी थी। जब वह आई, तो उसके हाथ में दूध का गिलास था। परन्तु वहाँ आते ही उसने देखा कि सुधीर के समान कल्पना की आँखों में भी आँसू हैं। वे आँसू उसके गालों पर बह आये हैं। यह देख, उसने कल्पना को झिड़क कर कहा—'पगली कहीं की ! देखती नहीं कि यह सुधीर''''''

कल्पना ने कहा—'मा, ये जाने क्या समझते हैं। मेरे कारण ही तो आज इस अवस्था को पहुँच गये हैं।'

सुधीर ने आतुर बन कर कहा—'न, न, दोष तुम्हारा नहीं कल्पना ! मेरा है।'

कल्पना बोली—'मैं कल सुन आई थी कि यह उस हरामजादे महेन्द्र ने……'

सुधीर और अधिक आकुल बन गया। वह तुरन्त बोला—'अरी, नहीं कल्पना! महेन्द्र बड़ा अच्छा लड़का है। तू समझ कि इस दुनिया की रीति ही यह है। पुरुष के लिये नारी और धन सदा ही ईर्षा का विषय रहे हैं। इन्हीं के लिये झगड़े चले हैं। पर मैं किसी से नहीं झगड़ूँगा।' वह बोला—'हम दोनों शापित हैं। हमारे लिंग जुदा-जुदा हैं। सामाजिक दृष्टि से भी विपरीत हैं। दोष मेरा और तुम्हारा है। सच ही तो कहते हैं लोग, हम क्यों इस प्रकार मिलते हैं। तुम विधवा हो, युवा हो, और मैं क्वारा, अभी अविवाहित! तो भला, लोग ऐसा न सोचें, तो और क्या सोच सकते हैं। जो बात लोगों के दिमाग में थी, महेन्द्र ने उसे तनिक प्रोत्साहन ही तो दिया। और उस बेचारे ने क्या किया।'

उसी समय, कल्पना की मा कुछ कहने चली थी कि तभी सुधीर का पिता शिवदास वहां आ गया। उसके साथ एक आदमी और था। सुधीर को देख, उसने कहा—'अरे, बेटा! यहाँ आ गया तू! चल घर पर आराम कर।'

सुधीर खड़ा हो गया। उसने कल्पना और उसकी मा को चलने के लिये कहा।

मा बोली—'तुम चलो, हम आती हैं। अभी पहुँची जाती हैं।'

सुधीर लौट गया। घर आकर वह फिर बिस्तर पर पड़ गया। नीचे घर में स्त्री पुरुषों को भीड़ लगी थी। चारों ओर शोर था। घर के बाहर एक शामियाना लगा था। जिसके नीचे कस्बे से आये कुछ व्यक्ति बैठे हुए थे। थाने के दोनों थानेदार भी आ गये थे। उसी समय विक्रमसिंह भी आ गये। उनकी पत्नी और लड़की भी आ पहुँचीं। कल्पना और उसकी मा ने आते ही, कोठार की व्यवस्था अपने हाथ में ले ली। देर से पण्डित श्राद्ध-पिण्ड का पूजन कराने के लिये तत्पर था, परन्तु उस

की तैयारी नहीं हो रही थी। कल्पना की मा ने उस तैयारी को पूर्ण किया। एक थाली में पूजन का सभी सामान सजा दिया। चूँकि वह एक नारी का श्राद्ध था, इसलिये जो भी पोशाकें एक नारी की हो सकती थीं, वे सब एक सजी हुई शैया पर रख दी गयीं। तभी सुधीर को पूजन पर बैठाया गया। सहारे के लिये एक आदमी उसके पास बैठ गया। लेकिन सुधीर तो अशक्त था। उसकी आँखों में बार-बार अन्धेरा आता था। इसलिये, जब उसे अधिक देर बैठे हो गयी, तो एकाएक वह बैठे-बैठे गिर पड़ा। यह देख, दूर खड़ी कल्पना दौड़ आई और बोली—'पण्डितजी, इन्हें छोड़ दीजिये। आप पूजन कर दीजिये।' यह कहते हुए उसने सुधीर को सहारा दिया और कमरे में ले गयी। सुधीर बिस्तर पर पड़ गया। उसी अवस्था में उसने कहा—'कल्पना, मैं मा का पूजन नहीं करा सका। मैं असमर्थ रहा।'

कल्पना ने कहा—'तुमने पूजन करा दिया। तुम्हारा काम पूरा हो गया।'

सुधीर ने फिर सांस भरी और कहा—'कल्पना, मेरी मा ने बड़े कष्ट उठाये थे। मुझे पता है कि मा मेरे लिये भूखी रहती थी। जाड़ों में ठिठुरती थी।'

कल्पना ने कहा—'यह तो घर की अवस्था की बात थी।'

सुधीर बोला—'यह ब्रह्मभोज, यह जातिभोज मैं पसन्द नहीं करता। पर गाँव की परम्परा का मैंने भी आदर किया है। जानता हूँ मरी हुई मा का इससे कोई सम्बन्ध नहीं।'

कल्पना बोली—'मैंने तुम्हारी भावना को समझा है।'

'तो देखो, आज इस गाँव का कोई आदमी बिना खाये न रहे। मैंने यथेष्ठ सामान बनवाया है। चाहता हूँ कि इस गाँव का बच्चा-बच्चा मेरी मा की स्मृति में यहाँ भोजन करे। कोई भिखारी भी न बाकी रह जाये।'

कल्पना ने कहा—'तुम शान्त रहो। आराम से पड़े रहो। यही होगा। पहिले तो ब्राह्मणों को खिलाया जायेगा।'

तभी सुधीर मुसकराया—'मैंने अब किसी विशेष जाति को महत्व देना पसन्द नहीं किया। पर मेरी मा को यही पसन्द था। पिता भी इसी पर विश्वास करते हैं। वे ब्राह्मण को देवता मानते हैं।'

कल्पना बोली—'यह आज के युग की परम्परा नहीं रही। ब्राह्मण जाति ने स्वयं अपना महत्व खो दिया।'

'यही तो!' सुधीर बोला—'यह जो कुछ हो रहा है, उसमें मेरी तनिक भी आस्था नहीं है। परन्तु समाज में रहकर सभी बातें अपने मन की नहीं की जा सकतीं। एक यही देखो न, तुम अपनी और मेरी बात। मैं कहता हूँ, अब तुम्हें मेरे पास नहीं आना चाहिये। हम बचपन में मिले, बोले और साथ खेले, अब उसका कोई अर्थ नहीं रह गया है! तुम विधवा बन गयी हो और मैं, हे राम! सच, मैं सोच ही नहीं पाता कि क्यों, मेरा मानस इतना आकुल और द्रवित बन गया है। जब तुम मेरे सामने होती हो, तो सोचता हूँ कि मैं तुम्हें इसी रूप में क्यों नहीं देख पाता कि जैसी तुम हो······सुन्दर नारी ···यौवन के भार से पुर······'

वह आतुर बन गया और बोला—'पर मुझे तो वह बचपन की कल्पना चाहिये। मैं उसी को देखता हूँ। उसी भावना का पूजन करने के लिये मेरा हृदय आज भी छटपटाता है। मुझे तो तुम्हें देखकर अचरज होता है कि कैसे तुम्हारा मन बदल गया······तुम्हारा वह बचपन कहां चला गया! उसकी जगह यह प्रमाद और यौवन का भार आ गया। जो तुम्हें बोझीली बनाने के अतिरिक्त भला और क्या दे सका है। प्रत्येक की दृष्टि में तुम्हें कौतुक और सन्देह की वस्तु बना चुका है······यह रूप··· तुम्हारा वह जीवन······'

एकाएक आहत बनकर कल्पना मुँह झुक गया। मानो उसने सुधीर की बात को स्वीकार कर लिया। परन्तु अपना मत देने का साहस उसने नहीं पाया,—उस अवस्था में नहीं······

१६

• • •

महेन्द्र चतुर था। जब कल्पना गाँव से शहर पहुँची, तो उससे पूर्व ही, वह उस घर से अपना सम्बन्ध तोड़ चुका था। कल्पना के लिये सन्तोष की बात यह थी कि मुन्शी के सावधान रहने के कारण महेन्द्र कोई विशेष हानि उस घर को नहीं पहुँचा सका। जब कल्पना नगर में आई, तो उसी सप्ताह सुधीर भी वहाँ आ गया। वह कुछ तीर्थों पर जा रहा था। कल्पना को वचन दे चुका था कि वह उसे भी साथ ले जायेगा। निदान उसके पहुंचने पर कल्पना ने सफर की तैयारी की और मुन्शी को सभी काम व्यवस्था से देखने का आदेश देकर सुधीर के साथ चल पड़ी। उनका पहिला पड़ाव हरिद्वार था। कभी बचपन में कल्पना ने गंगा में स्नान किया था। हरिद्वार अथवा कोई तीर्थ उसे कभी देखने को नहीं मिला। किन्तु जब वहाँ पर उपस्थित भिखारियों और साधुओं के झुण्ड को कल्पना ने देखा, तो बलात्, उसके मन में बात आई कि यह तो बुरा है! क्या संगत है! आदमी यों पंगु और अर्थहीन बनता है। निठल्ला लगता है। इसी बात को जब उसने सुधीर के समक्ष रखा, तो वह एकाएक अपना मत नहीं दे सका। बात को टाल गया। किन्तु एक दिन उसने प्रातः ही कल्पना को बताया कि हम लोग यहाँ से कुछ दूरी पर चलेंगे। पहाड़ पर चढ़ेंगे। तुम्हें कष्ट तो नहीं होगा?

कल्पना ने सहज भाव से बात स्वीकार कर ली और सुधीर के साथ चल पड़ी। वे दोनों जब पहाड़ पर चढ़ने लगे, तो कुछ दूर जाकर ही, कल्पना थक गयी। वह सुधीर से पीछे छूट गयी। उसके बदन पर पहनी हुई ब्लाऊज पसीनों से भीग गयी। यह देख, सुधीर मुसकराया। जब कल्पना उसके पास आयी, तो बोला—'क्यों, थक गयी।' उसने कहा—'इस जिन्दगी की साधना पाना आसान नहीं है, कल्पना! लोहे के चने चबाना और जिन्दगी की ऊँचाई पर चढ़ना एक बात है। आओ, चलो धीरे-धीरे!' उसने कहा—'शहर में रह कर तुमने कभी पैदल भी नहीं चला। ऐश्वर्यपूर्ण जीवन में कभी कष्ट का रूप नहीं देख पाया। ऐसी साधना करने का तुम्हें कभी भी अवसर नहीं प्राप्त हुआ।'

कल्पना बोली—'सच, यह मार्ग संकट से भरा है। चारों ओर झाड़-झंखाड़ हैं!'

सुधीर ने कहा—'मैं इस रास्ते पर कई बार आया हूँ। जहाँ हम जायेंगे उस स्थान पर मैं कई-कई रातें बिता चुका हूँ। एक बार जब इस रास्ते पर चढ़ रहा था, तो एक खूँखार जानवर से बच पाया था। वह लकड़बग्घा था। शायद अपने शिकार को देख, तीव्रता से भागता हुआ निकल गया। निःसन्देह, वह मुझे देख नहीं सका था। वैसे वह मेरे समीप से निकला था।'

कल्पना ने कहा—'हमारा लक्ष्य अभी कितनी दूर है?'

सुधीर बोला—'बस, चढ़ाई समाप्त हो गयी। पर कुछ उतार और बाकी है। देखती हो न उन पेड़ों के और पहाड़ों के झुरमुट में, वहाँ एक कुटिया है। वहीं पहुँचना है। वहाँ पर जिस साधु को तुम देखोगी, वह अब युवा नहीं हैं। वृद्ध हैं। परन्तु जब वे प्रौढ़ावस्था में आये, तो उन्होंने सन्यास ले लिया था। उनका जन्म भी एक बड़े घर में हुआ। लेकिन उन्होंने उस घर का मोह छोड़ा और विशाल सम्पदा से भी सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। जानती हो, मैं उस व्यक्ति के पास तुम्हें ले जा रहा हूँ कि जो

एक समय अपने प्रान्त में माना हुआ कानून का पण्डित था। जज था। वही व्यक्ति आज धर्म-शास्त्रों का भी महान ज्ञाता है। वह जीवन का महत्व, जीवन का दर्शन बड़ी सुगमता से बता सकता है।'

कल्पना ने प्रश्न किया—'तो ऐसे व्यक्ति ने सन्यास क्यों स्वीकार किया ?'

सुधीर बोला—'यह तो आदमी की इच्छा और संस्कारों की बात है, कल्पना जी!' वह कहने लगा—'जिस ऋषि की कुटिया में तुम प्रवेश करोगी, उसने एक दिन अपने ज्येष्ठ-पुत्र को खूनी अपराधी की स्थिति में फाँसी की सजा दी थी। इस घटना के बाद वह नौकरी भी छोड़ दी। फाँसी पर चढ़े हुए पुत्र का दाह-संस्कार कर, वे घर नहीं लौटे। वे सदा के लिये उस घर से, स्त्री-पुत्र और धन से सम्बन्ध विच्छेद कर आये। आज इस घटना को वर्षों बीत गये।'

कल्पना ने सांस भर कर कहा—'विचित्र व्यक्ति हैं।'

सुधीर ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'विचित्र नहीं, महान हैं। वे अपनी आत्मा का साक्षात् दर्शन कर चुके हैं।'

उसी समय पहाड़ का उतार आधा पार कर लिया था। कुटिया साफ दिखने लगी थी। शेष पथ पार कर जब वे दोनों वहां पहुंचे, तो देखा कि कुटिया के चारों ओर लगी हुई फुलवारी के फूल मँहक रहे थे। वे सुन्दर दिख रहे थे। कुटिया के द्वार पर पहुँच कर, कल्पना ने देखा कि एक श्वेत-रंग का साधु खड़ा है। वह उन्हीं की ओर देख कर मुसकरा रहा है। उसके सिर के बाल सफेद हैं। डाढ़ी भी सफेद है। मानो कोई सतयुग का ऋषि उस भूमि पर उतर आया है। सुधीर ने साधु के चरण-स्पर्श किये। कल्पना ने हाथ जोड़कर अभिवादन किया। तभी साधु ने कहा—'मैं देख रहा था कि तुम आ रहे हो। ये कौन ?' उसने कल्पना का परिचय लिया।

सुधीर ने कहा—'यह कल्पना है। मेरे गाँव के एक जमींदार की लड़की।'

'अच्छा, अच्छा, आओ बैठो। रास्ता चल कर आये हो, कुछ सुस्ता लो। फिर कुछ जलपान करो।'

सुधीर ने कहा—'जी, हम खाकर चले थे।'

तभी साधु अपने आसन पर बैठ गये। सुधीर और कल्पना भी वहीं पास में बैठे। उसी समय साधु ने कहा—'तुम्हारा पत्र मिला था। तुम्हारी माता के देहावसान का समाचार भी पा लिया था।' तभी उन्होंने कल्पना की ओर देख कर पूछा—'इनके पति भी जमींदार हैं?'

सुधीर ने कहा—'जी, जमींदार थे। दैव की बात कि पिछले वर्ष वे दिवगंत हो गये!'

'ओह! तो वज्रपात हुआ, इस बेचारी पर! सच, बुरा हुआ।' साधु ने उसी समय कल्पना को लक्ष्य किया—'तो बेटी, कुछ पढ़ी हो?

कल्पना ने कहा—'जी, हाँ।'

साधु बोले—'ज्ञानार्जन करना भी तुम्हारे लिये श्रेयस्कर रहेगा। कार्य की व्यस्तता भी उपयोगी है। क्या जमींदारी है, घर पर? पैसा तो सुगमता से आता होगा।'

सुधीर ने कहा—'जी, पैसा काफी आता है। खेद इस बात का है कि उस घर में यह अकेली है। केवल नौकर हैं।'

साधु ने कहा—'भैया, पहिली कठिनाई तो यह है इस बेटी की आयु कम है। यह तो अभी युवती है। अब तो हमारे समाज में दूसरे विवाह की रीत चल पड़ी है।'

तभी सुधीर ने कहा—'महाराज, इस अवस्था की भी क्या कोई सीमा है। दूसरा पति भी जल्दी मर सकता है।'

साधु ने गम्भीर भाव में बाहर की ओर दृष्टिपात किया और कहा—'सुधीर बाबू, यह मनुष्य दुर्बल प्राणी है। नारी की भी यही अवस्था है।

फिर इस बेचारी के पास तो कोई सन्तान भी नहीं है।' बोले—'भला इसके पास क्या सहारा है ! अवलम्बहीन प्राणी क्या सुगमता से इस जिन्दगी का रास्ता पार कर पाता है !'

उस समय कल्पना सिर झुकाये हुए थी। वह एक तिनके को उठा कर उससे जमीन कुरेदने लगी थी। किन्तु जब साधु ने अपनी बात कही, तो उसी समय सुधीर कुछ कहने चला, तभी कल्पना ने अपना मुँह उठाया। सुधीर बोला—'भगवन्, यह तो संसार की माया है ! यह तो इन्सान की ऐसी भूख है कि जो कभी मिट नहीं सकती। न धन से तृप्ति होती है, न सन्तान से !'

साधु ने मुसकराया—'तो तुम्हारा कहना है कि······'

सुधीर आतुर बन कर बोला—'महात्मा जी, मेरा तो मत है कि पुरुष हो या स्त्री, यह सन्तान का मोह······यह अवलम्ब······कष्ट के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे पाता ! इस कल्पना को शान्ति मिले, ऐसी ही मैं कामना करता हूँ।' उसने कहा—'महाराज, इस बेचारी ने दाम्पत्य-जीवन में भी सुख का अर्जन नहीं किया। पति सुन्दर था, सुशिक्षित था, परन्तु शराबी था। वह स्त्री-लोलुप भी बन गया था ! आज वह नहीं इसलिये ऐसा कहना संगत नहीं लगता; परन्तु यह तथ्य है कि इस कल्पना को आत्म-सुख प्राप्त नहीं हुआ। बताइये, जिस रास्ते पर चल कर इसे बेचैनी प्राप्त हुई, तो क्या फिर उसी पर चलना, इसके लिये शांतिदायक हो सकेगा !'

साधु ने कहा—'सुधीर बाबू, यह जगत बड़ा असन्तोषी है। सन्तोष कभी प्राप्त नहीं होता। वैसे यह इन्सान की जिन्दगी एक जुए का दांव भी है। यह अवसरवादी खेल है। यह जरूरी नहीं कि यदि पहिले विवाह में इस बिटिया को चैन नहीं मिला, तो दूसरे में न प्राप्त हो। यह सम्भव हो सकता है।'

सुधीर बोला—'और अधिक दुःखदायी भी।'

साधु ने मुसकराया—'हां, यह भी !' वह बोले—'तुम्हारा क्या तात्पर्य है ? यह बिटिया क्या चाहती है ? बोलो, बेटी !'

कल्पना ने कहा—'महाराज, मेरे मन में कुछ नहीं है।'

सुधीर बोला—'भगवन्, यह कल्पना कुछ न कह सकेगी। परन्तु मैं आपके पास इसे लाया हूँ, केवल इस आधार पर कि यहां की भूमि को यह देखे। पसन्द आये, तो कुछ दिन यहां रह भी सके।'

साधु ने कहा—'तुम संन्ध्या तक रहो, तो पाओगे कि एक विद्वान नारी जो देर से साधु है, यहां आयेगी। वह आज प्रातः ही समीप के एक गाँव में गयी है। वहां एक व्यक्ति मर गया। उसकी पत्नी कई दिन से रो रही है। उसी को वह समझाने गई है।' यह कहते हुए साधु ने कल्पना की ओर देखा और कहा—'बेटी, इस जीवन के दो ही मार्ग हैं, एक स्वार्थ का मार्ग एक त्याग का मार्ग। त्याग के मार्ग पर चलकर आदमी परमार्थ भी कर पाता है। वासना की पुकार सुनकर जीवन के सत्य से आँख फेर लेना, उचित नहीं लगता। वह अधिक पुष्टकर भी सिद्ध नहीं होता। लेकिन तुम्हारा यह जीवन तो काफी सरल है। अभी तरल बना है। भला तुम किस प्रकार ज्ञान का पाठ पढ़ सकती हो ! सहज ही तुम इस कठोर पथ का अनुसरण नहीं कर सकतीं।'

सुधीर ने कहा—'भगवन् मेरे जीवन का अब यही संकल्प है।'

साधु हँसे—'तुम तो भाई, योगी बनने की कल्पना करते हो ! तुम कहां-कहां जाते हो, मुझे और भी कई लोगों ने यह बताया है। सचमुच, तुम साधु वृत्ति पसन्द करते हो।'

कल्पना ने तभी कहा—'लेकिन महाराज, इनका साधु बनना क्या अच्छा है ! अब घर में केवल बूढ़े पिता हैं। आप तो जानते होंगे कि कि इन्होंने······'

साधु ने बीच में ही कहा—'हाँ, मुझे पता है बेटी कि सुधीर बाबू ने विवाह नहीं किया। कदाचित् अब तो करने का विचार भी त्याग दिया।'

कल्पना बोली— 'परन्तु सामाजिक जीवन के साथ, इस परम्परा की संगति कहां है! समाज में इसे कभी भी स्वाभाविक नहीं माना गया। ऐसा व्यक्ति तो भार बनता है······कहूँ कि समाज का कलंक!'

बात सुनी, तो सुधीर हँस दिया। किन्तु उस वृद्ध सन्यासी ने गम्भीर बनकर कहा—'बिटिया, तुम ठीक कहती हो! मैंने ऐसा बहुधा देखा-सुना है।'

कल्पना ने कहा—'महाराज, इस प्रकार की नारी भी समाज के लिये श्राप है!'

'निःसन्देह!' संन्यासी ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'ऐसे नर और नारी ने ही समाज में पाप की रचना की है।'

कल्पना बोली—'महाराज, मुझे कहने की आज्ञा दीजिये कि विधुर या अविवाहित पुरुष-वर्ग ने समाज में वेश्या की रचना की। उसकी दूषित प्रणाली को जनता ने सहज ही स्वीकार कर लिया। जिस प्रकार शराबी, शराब पीकर नाली में गिरता है और उस गन्दे पानी को चाटते हुए शराब का आनन्द पाता है, तो उसी तरह, क्या एक गन्दे और कामेच्छुक पुरुष ने नारी का जीवन गन्दा और भ्रष्ट नहीं बना दिया है··· उस औरत को उसी पुरुष-समूह ने समाज की सड़ांद कहा है······गन्दा पानी उलीचने वाली नारी······'

वह वृद्ध सन्यासी कल्पना की बात सुनते हुए उसकी ओर देख रहा था। स्वयं सुधीर भी चकित था कि कल्पना क्या कह रही है। एक साधु की कुटिया में कैसा घिनौना प्रसंग ले बैठी है। परन्तु वह मौन था। सन्यासी की गम्भीरता को देख, वह कल्पना को नहीं रोक सका। लेकिन तभी साधु ने सुधीर को लक्ष्य करके कहा—'यह कल्पना बेटी आसान नहीं है। यह अशांत है। निर्भीक है। तो हाँ, बिटिया! जब तुम इतना भर जानती हो, तो अपने लिये भी मार्ग प्रशस्त करो। यह जीवन का मध्याह्न तुम्हारे सिर पर खड़ा है। यह तेज सूर्य तुम्हें तपा

रहा है। तुम्हारे इस सुन्दर जीवन में जो कुछ हो, वह सुव्यवस्थित ढंग से हो। उसमें तुम्हारा अध्ययन और ज्ञान भी तल्लीन हो। बात छोटी सी है, परन्तु वही जीवन के चारों ओर घूमती है। कर्म-भोग और वासना-भोग दोनों ही, समाज को आकर्षित करते हैं। वे नर और नारी की धुरी बने हैं। समझती हो न, कर्म का दूसरा नाम ही ज्ञान है। वह बुद्धिपरक है। वासना केवल शरीर की भूख मिटाती है; सुन्दर भोजन इस जिह्वा को पसन्द आता है। सुन्दर पुरुष, सुन्दर नारी एक-दूसरे के प्रति आकर्षण रखते हैं। यह सब अजीब भूख है। सृष्टि के समूचे जीव-जगत को सताती है। जिसकी अन्तिम रेखा भी कहीं नहीं है। और देखती हो तुम कि संसार इसी में डूबा है। जितने भौतिक तत्व हैं, सभी वासना रूपी चुम्बक से चिपटे हुए हैं। यह जगत उसी में खो गया है।'

एकाएक कल्पना ने प्रश्न किया—'महाराज, यह आत्म-चेतना क्या है? उसका रूप क्या है?'

सुना तो वृद्ध सन्यासी ने कल्पना की ओर देखा। उन्होंने कहा—'बेटी, बड़ा विस्तृत रूप है, आत्म-चेतना का। परन्तु यदि सूक्ष्म रूप से देखो, तो समझो कि सत्य का स्वरूप पहचानना ही आत्म चेतना है। और कहोगी कि सत्य क्या है? तो बेटी, क्या कभी पढ़ा 'आत्मवत् सर्व भूतेषू' जगत तुम्हारे अन्दर समाधिस्थ है। उसकी पीड़ा तुम्हारी है। उसका हर्ष तुम्हारा हर्ष है। माता वसुन्धरा के गर्भ से जो कुछ मनुष्य प्राप्त करता है, उसमें सभी का साझा है। भगवान ने अनेक स्थलों पर कहा है, जगत मुझमें है, मैं जगत में हूँ। मैं और तुम दो नहीं हैं, एक हैं। एक ही पिता की सन्तान हैं। शक्ति रूपा परमेश्वरी ने हम सबका एक ही भावना से निर्माण किया है।'

कल्पना ने उसी समय बाहर की ओर देखा। उसके सामने फूल खिले थे। वे हवा के साथ हिल रहे थे। उन्हीं को लक्ष्य कर कल्पना

बोली—'तब फिर इस जगत में इतना अन्तर क्यों है! इतना राग-द्वेष क्यो! खून क्यों! चोरी और लूट क्यों!'

संन्यासी ने कहा—'इन्हीं दूषित परम्पराओं को बढ़ने से रोकने के लिये, भगवान की पूजा का नियोजन किया गया है। स्त्री-पुरुष संन्यासी बनते हैं। घर-घर प्रचार करते हैं। धर्म-ग्रन्थों की रचना हुई है। समय-समय पर महापुरुषों का उद्गम हुआ है।'

सुधीर बोला—'तुमने पिछले दिनों भगवान बुद्ध, महावीर आदि के मन्दिरों के दर्शन किये थे। योगीराज कृष्ण और उदारमना भगवान शिव के भी मन्दिर देखे थे। वे महान आत्मायें इस भूतल पर इसीलिये अवतीर्ण हुईं। उनके उपदेशों ने जन-जन की आत्मा को जागरित किया।'

कल्पना बोली—'मैं ऐसा नहीं देख पाती, सुधीर बाबू!'

सुधीर मुसकराया—'अभी तो तुम अपने को नहीं देख पाती हो, कल्पना! अपना अस्तित्व भी नहीं समझ पाती हो।'

कल्पना ने बात सुनी, तो मत नहीं दिया। जैसे उसने सुधीर की बात को पसन्द नहीं किया।

सुधीर बोला—'यह जगत है। इसका क्षेत्र विशाल है। यह कर्मभूमि है। यहाँ अधिकार और भोग ही सर्वोपरि है। परन्तु युग-चेतक इन्सान कुछ और सोचता है और करना चाहता है। वह जन-साधारण में खो जाना पसन्द करता है। उसी की भलाई में वह अपना त्याग कर देता है।'

उस समय संन्यासी हँसे और बोले—'लो, आ गयीं, महामाया।'

तभी कल्पना ने देखा कि एक सन्यासिनी गेरुवे वस्त्र पहिने कुटिया के द्वार पर आई हैं। वह दिव्य रूपा नारी अपूर्व तेजोमयी हैं। निःसन्देह वह कल्पना के यौवन से ऊपर उठी हैं।

१७

• • •

लगभग एक मास तक अनेक तीर्थों की यात्रा करने के बाद, सुधीर गांव लौट गया। कल्पना अपने घर पहुंच गयी। वह यात्रा कल्पना के जीवन की एक अभूतपूर्व और अनिवर्चनीय देन थी। निश्चय ही, उस यात्रा में कल्पना ने बहुत बड़ी साधना की थी। वह कई-कई दिन तक पहाड़ों पर पैदल चली थी। उसके पैर सूज गये थे। अनेक स्थलों पर वह जंगल के विषैले और क्रूर जानवरों से भी बाल-बाल बची थी। उसे कहीं नाले फाँदने पड़े, कहीं नदी पैदल ही पार करनी पड़ी। रास्ते में कल्पना बीमार भी पड़ी। परन्तु ये सब कष्ट इसलिये नहीं अनुभव किये गये कि सुधीर उसके साथ था। जब कल्पना के सिर में दर्द होता, तो सुधीर उसके सिर में तेल लगाता और माथा दबाता। यद्यपि कल्पना ने इतने कष्ट पाकर भी जिन देवालयों में जाकर भगवान की मूर्तियों के दर्शन किये, तो वहाँ केवल पत्थर की प्रतिमा को सजी-सजायी देख पाने के अतिरिक्त, कदाचित ही कल्पना को और कुछ प्राप्त हुआ। सुधीर जिस मन्दिर में जाकर दर्शन करता, तो कल्पना को उस देव-प्रतिमा का महत्व बताता। उसके जीवन का और कार्य-कलाप का वर्णन करता। जिसे कल्पना सुनती तो, लेकिन साथ ही, वह अनुभव करती कि यह सुधीर कितना तन्मय है और उस देव-दर्शन के प्रति कितना श्रद्धायुक्त है। तब वह भगवान की ओर देखकर

और उसे हाथ जोड़ कर भी, सुधीर से कह देना चाहती कि मेरे लिये तो तुम्हीं देव हो······तुम्हीं सच्चे मानव······!

घर के नौकरों ने देखा सच, कल्पना का रंग बदल गया था। वह दुर्बल भी हो गयी थी। लावण्य फीका पड़ गया। मुन्शी ने कहा—'बहू-रानी, तुमने तो अपने को बदल दिया। शरीर भी दुर्बल हो गया!'

कल्पना बोली—'मुन्शी जी, यात्रा लम्बी थी। कठोर भी कम नहीं थी।'

'राम-राम! तुम्हारा यह शरीर भला इस योग्य कहाँ था! लाड़-प्यार से पाला-पोसा बदन क्या पत्थरों में भटकने योग्य था!'

किन्तु घर लौट कर, कल्पना को जो सबसे अधिक अपनी ओर आकर्षित कर सका, वह था, महेन्द्र का पत्र। वह एक अच्छी जगह नौकर हो चुका था। अपने उस पत्र में महेन्द्र ने अपने दोष के लिये क्षमा माँगी थी। साथ ही कहा था कि वह अपराध केवल मेरा नहीं था, उस गाँव के समाज का भी था। वह दोष तुम्हारा और सुधीर का भी था। महेन्द्र ने अपने पत्र में जिस अलंकारिक भाषा का प्रयोग किया, वह सचमुच ही, लावण्यमयी थी। एक प्रेमी अपनी रूठी हुई प्रेमिका को पत्र लिख रहा था। वह स्पष्ट कह रहा था कि मेरा दोष केवल इतना है कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। उस पत्र द्वारा महेन्द्र ने यह कहने में संकोच नहीं किया कि कल्पना सरीखी सुन्दर और मृदु युवती के समीप रह कर, जो समर्पण और प्यार की भावना अपने मानस में हिलोर लेती हुई न पाये, वह मानस हाड़-माँस का नहीं, पत्थर का है। उसका दिल भी कठोर है। इतना लिखते हुए महेन्द्र ने यह भी कहने में संकोच नहीं किया कि तुम्हारी दृष्टि में सुधीर अवश्य ही देवता हो सकता है, लेकिन वह कभी कल्पना के मर्म को भी समझ सकेगा, मैं भरोसा नहीं करता। इस धरती पर उतर कर इन्सान केवल भावनावादी और आदर्शवादी बन कर जीवित नहीं रह सकता। वह न स्वयं कुछ पा सकता है, न दूसरे

को कुछ दे सकता है। अतएव उस भावनावादी सुधीर से तुम जीवन में क्या-कुछ पाओगी, मैं सहज में इसकी कल्पना नहीं कर सकता। परन्तु भरोसा रखो, यह महेन्द्र तुम्हें सदा प्यार करता रहेगा। तुम्हारा वह सरल स्नेह और मधुर सामीप्य इसे सदैव याद रहेगा।

घर आकर ही कल्पना ने ठीक से स्नान किया। शरीर पर साबुन मला। उसके पाऊडर और क्रीम के डिब्बे जिस प्रकार गये, तो उसी प्रकार लौट आये थे। उस दिन उनका भी प्रयोग हुआ। दोपहर का भोजन करके सुन्दर मसहरीदार पलंग पर सो गयी। तीसरे पहर वह उठी तो नौकरानी चाय ले आई। फल और मिठाई भी लाई। तभी कल्पना को महेन्द्र की याद आई। उसके मन में यह इच्छा भी उठी कि वह सन्ध्या का सिनेमा देखे। क्योंकि देर से उसने कोई अच्छी तस्वीर नहीं देखी थी। इसलिये कल्पना ने सिनेमा जाने की तैयारी की। उसने नौकरानी भेज कर अपनी एक सहेली को बुलाया। वह एक डाक्टर की पत्नी थी। उसका पति एक चतुर और अनुभवी डाक्टर था। जब वह प्रमदा आई, तो कल्पना को देखते ही बोली—'अरी, तू! ओह, क्या रूप बना आई है! बता तो किस जंगल में पहुँच गयी थी?'

कल्पना बोली—'तीर्थ स्थानों में गयी थी।'

'ओहो! तो यों कहो, विधवा नारी के सभी गुण अपनाने लगी। यों इस सुन्दर जिन्दगी का गला घोंटने लगी, तू!'

कल्पना ने जैसे अनमने ढंग से कहा—'विधवा नारी को ऐसा ही बनना चाहिये।'

प्रमदा बोली—'मैं इस सिद्धान्त को नहीं मानती।' उसने कहा—'मैंने तो पीछे सुना कि महेन्द्र भी चला गया। कितना अच्छा युवक था। बड़ा हँसोड़ और एक की चार बातें करने वाला।'

कल्पना बोली—'वह अब नौकर हो गया है। हवाई जहाज में उड़ता है।'

प्रमदा ने कहा—'वह भाग्य का धनी रहेगा। सदा मौज के दरिया में बहेगा।' उसने कल्पना के कन्धे से सिर के बाल ठीक करते हुए प्रश्न किया—'तो अब क्या प्रोग्राम है? क्या कहीं घूमना?'

कल्पना ने कहा—'नहीं, सिनेमा।'

प्रमदा ने कहा—'तुम्हें अपनी नौकरानी से कहना था। मुझे घर पर कहना पड़ेगा।'

कल्पना बोली—'अब कह दिया जायेगा। बिना साथी के सिनेमा क्या अच्छा लगेगा।' यह कहते हुए उसने नौकर को आवाज दी और कहा—'डाक्टर साहब से दुकान पर कह आना कि बहू जी के साथ ये सिनेमा गयी हैं। अभी चले जाना।' यह कहते हुए कल्पना ने साड़ी बदल ली। मुँह पर पाउडर लगा लिया। जब वह चलने लगी, तो प्रमदा से बोली—'कुछ दिन के लिये एक नये और नीरस संसार में चली गयी थी मैं, सो अब लौट आकर कुछ अजीब सा लग रहा है! कई दिन में दिल और दिमाग ठीक बनेगा। वहां तो पहाड़ देखे। झरने देखे। साधु-संन्यासी देखे। मन्दिरों में गयी तो पत्थर के बने विभिन्न नामधारी देवता देखे।' यह कहते वह हँस पड़ी। उसने प्रमदा के कन्धे पर हाथ रखा और इठलाते हुए कहा—'सच, बहिन! बड़ा अजीब शान्ति से भरा वातावरण था, वह! वहाँ न मोटर की भों-भों, न आदमियों का शोर! इस दुनिया से बिलकुल निराला जीवन था वह!'

प्रमदा ने साँस भर कर कहा—'पर उसके लिये भी साधना चाहिये। समय चाहिये। वैसी परिस्थिति भी बननी चाहिये। भला तेरा उससे क्या मेल! तू ठहरी शहर की चिड़िया! तेरे परों में इतना दम कहां कि उन पहाड़-पर्वतों को लाँघे! वहां किसी पेड़ की डाल पर जा बैठे।'

आतुर बन कर कल्पना ने कहा—'न, बाबा! भर पाया मेरा मन! मैं भली और मेरा यह घर भला। यहाँ का काम भी चौपट हुआ पड़ा है। कल हिसाब देखूँगी तो ज्ञात होगा कि घर में क्या आया और क्या गया।'

दोनों चल दीं। ताँगे में बैठ कर सिनेमा पहुँच गयीं। कल्पना ने दो टिकट ले लिये। जब वह सिनेमा में जाकर बैठीं तो तभी कल्पना को ध्यान आया कि यहीं पर महेन्द्र ने अपने मन की बात कही थी। वह निश्छल युवक इसी जगह बैठकर इतना कहने का साहस कर सका था कि ऐ कल्पना! मैं तुझे प्यार करता हूँ! मैं तेरे रूप और यौवन के समक्ष अपना समर्पण करता हूँ।

तस्वीर आरम्भ हो चुकी थी। प्रमदा ने कहा—'इस जीवन में प्यार और समर्पण के अतिरिक्त और क्या है री, कल्पना! एक दिन डाक्टर साहब तेरा उल्लेख करके कह रहे थे कि कल्पना अभी कली है। कोंपलें फूटी हैं। उसे जरूर अपना विवाह कर लेना चाहिये। महेन्द्र को चुन लेना चाहिये।' यह कहते हुए उसने साँस भरी और बोली—'पर तूने तो उसे भी भगा दिया। जंगलों का रास्ता पकड़ लिया। पर कहे देती हूँ कि वे जंगलों में बैठे हुए कुटीधारी साधू-संन्यासी भी पूरे रंगे सियार होते हैं। वे बगुले की तरह से आँख मूँदे पानी की मछली को चोंच में ले लेने की साध लिये रहते हैं। धर्म और भगवान के नाम पर इस देश में बड़े गुल खिलते हैं। ये साधु जाने कितनी भोली सुकुमारियों के सतीत्व नष्ट करते है। मैं कहती हूं साधु समाज की जोंक हैं और धर्म दैसेवालों का नशा है। आज के युग में भला उसका क्या महत्व रह गया है! मनुष्य रोटी, कपड़ा और रहने को मकान चाहता है। जो वस्तु उसे दिखायी नहीं देती, भला उसे कैसे प्राप्त कर सकता है!'

कल्पना ने कहा—'प्रमदा, मेरा भी ठीक ऐसा ही मत बना है। बाहर जाकर मैंने कुछ नहीं पाया। मुझे तो लगा कि समय और स्वास्थ्य चला गया। सच, मेरे शरीर का चूरा-चूरा हो गया!'

'पर बता तो, वह सुधीर कौन है? सुना, तेरे गाँव का है। कोई बड़ा आदमी है। क्या सच है?'

प्रमदा बोली—'हाँ, इतना तो सच है।'

'सुनती हूँ, उसने विवाह भी नहीं किया। तेरा उससे ह नाता ?'

कल्पना ने बात सुनी, तो मत नहीं दिया। उसने फिर तस्वीर देखने में अपना मन लगाने का प्रयत्न किया। उस समय एक मधुर गाना चला था। उसका भाव भी अच्छा था। कल्पना को पसन्द आया। उसे लगा कि जैसे उसके मानस में किसी ने कुछ हूल दिया। तभी उसे फिर महेन्द्र का ध्यान आया। कल्पना को उस समय यह भी प्रत्यक्ष अनुभव हुआ कि जब-जब वह महेन्द्र के साथ सिनेमा आई, तो तभी-तब दर्शकों ने उस युगल जोड़ी को जैसे आँखों-ही-आँखों से देखकर कुछ कहा था। मानो लोगों को वह जोड़ा पसन्द आया। किन्तु वही महेन्द्र अब उससे दूर था। कल्पना को पाने के लिये ईर्षावश वह गाँव जाकर बड़ा भयंकर काण्ड रच चुका था। उससे सुधीर का तो नाश होता ही, कल्पना के घर का भी पतन हो जाता।

तभी प्रमदा ने कल्पना को टँकोर दिया—'देख न, कितना सुन्दर अभिनय है। सच कितना सत्य ! कितना अमर ! भला बता तो, प्रेम के अतिरिक्त इस संसार में और क्या है ! समर्पण ही इस जात का—नर नारी के जगत का—एकमात्र नारा है।' वह बोली—'यह मनुष्य-समाज क्या, समर्पण की भावना का रूप जीव-जीवान्तरों में भी मिलता है। परिन्दों में भी इसकी उपासना होती है। हमारे ही घर में तोते का जोड़ा था। जब एक बार मादा मर गयी, तो नर तोता भी चार दिन के अन्दर अपने शरीर रूपी पिंजरे को तोड़ कर उड़ गया था। उसे खांसी हुई न खुरी, पर अपना शरीर छोड़ गया।'

कल्पना ने सांस भर कर कहा—'मैं जानती हूँ। ममत्व का चीत्कार यह प्राणी देर से करता आया है। इसी भावना को पुकारता रहा है, यह जगत !'

तस्वीर समाप्त हुई, तो दोनों अपने-अपने घर पहुँच गयीं। कल्पना

ने कमरे में जाकर साड़ी बदल दी। नह पड़ गयी। तभी मिसरानी ने आकर कहा—'खाना लाऊँ, बहू जी?'

कल्पना ने कहा—'ले आओ।'

जब खाना आया, तो तभी कल्पना ने उस मिसरानी की ओर देखा। कल्पना को पता था कि उसका पति उसी शहर में किसी कारखाने में नौकरी करता है। वह कम कमा पाता है, इसलिये उस बेचारी को भी काम करना पड़ता है। चार बच्चे हैं। लड़का पढ़ता है। लड़की के विवाह की चिन्ता है। मन में आई इसी बात को लेकर कल्पना ने मिसरानी से पूछा—'तो तुम्हें लड़का मिला, लड़की के लिये?'

मिसरानी ने कहा—'कहाँ मिला, बहू! उसी की चिन्ता है। पैसे की भी चिन्ता है।'

कल्पना बोली—'चिन्ता न करो, भगवान सब पूरा करेगा। लड़का देख लो। पहिले विवाह तय कर लो।' उसने कहा—'आज तुम्हें यहां देर हो गयी। अब तुम जाओ।'

मिसरानी चल पड़ी। कल्पना खाना खाकर मेज के पास कुर्सी पर जा बैठी। वहीं उसके पीट पीछे आदमकद शीशा लगा था। बलात् कल्पना ने उसी ओर अपना मुँह किया। तभी कल्पना को लगा कि सच, उस पर रूप है। माधुर्य्य है। उसकी आंखें भी बड़ी हैं। कलात्मक हैं। यह देख उसे अनायास ही, जैसे अपने-आप पर लज्जा का आभास मिला। आँखें झुक गयीं। कई पत्र उसके सामने रखे थे। वे सम्बन्धियों के थे। कल्पना के पति के एक निकट के सम्बन्धी बैरिस्टर थे। वे दूसरे प्रान्त में रहते थे। उनकी लड़की का विवाह था। उसका भी निमन्त्रण-पत्र कल्पना की मेज पर रखा था। वहाँ जाना अवश्य था। नलिन के मरने में उनका समूचा परिवार आया था। कल्पना को उन्होंने विविध प्रकार की सान्त्वना दी थी। जीवन का रहस्य भी बताने का प्रयत्न किया था। उन पत्रों में फूवा और फूफा के पत्र भी पड़े थे। जिसमें कल्पना को भीठी

और कड़वी ताड़ना दी गयी थी। अतएव, उस समय कल्पना फिर एक बार सभी पत्रों को पढ़ने लगी। उसे लगा कि जैसे सभी ओर से कल्पना को उपदेश दिये गये थे। केवल एक पत्र महेन्द्र का ऐसा था कि जिसमें कोई उपदेश नहीं था। उस पत्र में याचना थी। मांग की गयी थी। कुछ लेने और देने का सोदा किया गया था। जब कल्पना ने एक बार फिर महेन्द्र के पत्र को पढ़ा, तो उसे लगा कि सच, जैसे महेन्द्र उसके पास ही खड़ा था। बोल रहा था। वह कोई भारी बात कह देने के लिये उत्सुक हो रहा था। फलस्वरूप, कल्पना उस अवस्था में इतनी तन्मय हुई कि भूल गयी, उसकी स्थिति क्या है! तभी मंगतू नौकर वहाँ आया और बोला—'दूध लाऊँ, बहू रानी?'

कल्पना चौंक गयी। जैसे डर गयी। वह विस्मय के साथ मंगतू की ओर देखने लगी। उसी अवस्था में जब वह क्षण भर उसकी ओर देखती रही, तो बोली—'क्यों बाबा, पीछे सब ठीक-ठीक ही चला न?'

बाबा ने कहा—'हाँ, बहूरानी, सब ठीक ही चला। तुम बताओ, कैसी कटी तुम्हारी यह यात्रा? सुना, बड़े बड़े तीर्थों पर गयीं। सच, बड़े पुण्य की बात कर आईं, बहूरानी!'

कल्पना ने पूछा—'तो तुम्हें अच्छा लगा? कुछ का तो कहना है कि वहाँ क्या रखा है! पत्थर हैं!'

तुरन्त ही, मंगतू ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा--'न, बहूरानी! जिन्दगी तो वहाँ है। शान्ति और सुख वहाँ। यहाँ क्या रखा है। अशान्ति है। बेईमानी और लूट है। यह तो पैसेवालों की दुनिया है, बहूरानी! कहीं हँसी का ठहाका है, कहीं आंसुओं की बाढ़! आदमी और औरत का व्यापार इसी दुनिया में दिखायी देता है! यह भी दीख पड़ता है कि इन्सान कुत्ता बना है ·· औरत कुतिया······

एकाएक कल्पना के मुँह से निकला—'बाबा!'

बाबा ने कहा—'सच कहता हूँ बहूरानी, इस जिन्दगी में मैंने यही समझा है ! कहीं औरत आदमी को ठगती है और कहीं आदमी औरत का दीन और ईमान लूटता है······सभी ओर तो जिन्दगी का सट्टा लगा है······खरीदारों की बाजार में भीड़ लगी है······कोई ठगा जा रहा है और कोई ठग रहा है······'

सांस भर कर कल्पना ने कहा—'तुम ठीक कहते हो, बाबा !'

बाबा बोला—'साठ वर्ष से मैं इस जिन्दगी की डगर पर चला हूँ । अब थक गया हूँ । मैं तो इस जिन्दगी में सभी कुछ देख पाया हूँ, बहूरानी !'

अनमनेपन से कल्पना ने अँगड़ाई ली और कहा—'दूध ले आओ ।'

बाबा लौट गया । तभी कल्पना ने एक पत्र लिखा । वह महेन्द्र के लिये था । जिसमें अन्य बातों के साथ उसने लिखा था—'एक बार मिल जाओ । यहाँ हो जाओ ।'

तुम्हारी वही—कल्पना

१८

• • •

उन दिनों सुधीर की मनोदशा भी अच्छी नहीं थी। उसने एक मास का अवकाश और ले लिया था। जब वह कल्पना से छूट कर गाँव पहुँचा, तो कई दिन तक घर में ही बैठा रहा। उसने गाँव में घर पर ही एक बड़ा पुस्तकालय खोल रखा था। आरम्भ में जब नौकरी से छुट्टी लेकर आया, तो वह अपना अधिकांश सामान ले आया था। जिसके साथ किताबें भी थीं। सुधीर को आरम्भ से ही किताबें पढ़ने का शौक था। उसने किताबें खरीदने में काफी पैसा व्यय किया था। जब तीर्थाटन करके वह गाँव लौटा, तो अध्ययन करने में उसने अधिक समय दिया।

एक दिन सुधीर प्रातः के समय दूध पीकर अपने पढ़ने के कमरे में पहुँचा, तो उसी समय उसकी विधवा मामी वहाँ आई। सुधीर देर से उस मामी का सम्मान करता था। उस समय भी मामी को पास आई देख, वह बोला—'कैसे आयीं, मामी?'

मामी ने क्षण भर सुधीर को देखा, तो कहा—'लल्लू, मैं एक बात कहने आई हूं। बोलो कहूँ? बात मानो, तो जबान खोलूं।'

इतना सुन कर, सुधीर ने चकित भाव में मामी की ओर देखा। वह बोला—'हां, हां, कहो न!'

'तुम विवाह कर लो। एक लड़की मैंने देख ली है। मेरे सम्बन्धी

की है। घर तो गरीब है, पर लड़की हजारों में एक है।'

सुधीर बोला—'मामी, क्यों मुझे झगड़े में फाँसती हो। मेरी इच्छा नहीं है।'

मामी ने कहा—'लल्लू, उस लड़की का भला होगा। तुम्हारा भी अभाव पुर जायेगा।'

इतनी बात सुनी, तो सुधीर हँस दिया। वह बोला—'वह तुम्हारे सम्बन्धी की लड़की है, गरीब है, तो उसके पिता से कहो कि वह कहीं लड़का देख लें। कुछ रुपया मैं लगा दूँगा। विवाह करके तो मैं अपना ही स्वार्थ पूरा करूँगा, मामी। उस बेचारी का जीवन भी जंजाल बना दूँगा।'

मामी ने कहा—'मैं कहती हूँ, तुम क्यों नहीं विवाह कर लेते। क्या कल्पना के लिये नहीं करते?'

सुधीर जैसे चौंक गया! वह अवाक् बन कर मामी की ओर देखने लगा।

किन्तु मामी ने कहा—'इस एक महीने में जाने कितनी गाँव की औरतें यहाँ आयी हैं। वे सभी मेरे मुँह पर कह गयीं हैं कि सुधीर इसलिये विवाह नहीं करता कि कल्पना को प्यार करता है। क्या यह ठीक है?'

सुधीर मुसकराया। वह कुर्सी से खड़ा हो गया। कमरे में घूमने लगा। उसी समय, कमरे के बीच में खड़े होकर उसने मामी की ओर देखा और बोला—'जो सत्य है, उसे मैं भी असत्य नहीं कह सकता, मामी! कल्पना का और मेरा बचपन से साथ रहा है। औरतों की बात क्या, जब मर्दों ने इसी बात पर मेरा सिर फोड़ दिया। इस बात पर तो कईयों को चुटीला बन जाना पड़ा मामी!'

मामी ने कहा—'पर लल्लू, जब ऐसी बात है, तो उसी को क्यों न मान लिया जाय। जब कल्पना भी यही चाहती है, तो तब, उस को यह घर सौंप दिया जाय।'

सुधीर हँसा। वह बोला—'इस दुनिया में बहुत सी बातें ऐसी हैं कि जो अनुभव की जा सकती हैं, परन्तु व्यवहार में नहीं आ सकतीं। मामी, तुम्हारी सेवा करने के लिये तो मैं प्रस्तुत हूं, फिर तुम्हें बहू क्यों चाहिये ? भरोसा रखो, मैं अभी विवाह नहीं करूँगा। जब आवश्यकता होगी, तो कर लूँगा। अभी तो जवान हूँ।'

मामी तुनक गयी—'तुम यही कहते हो ! अपनी बात रखते हो !'

सुधीर बोला—'नहीं, मामी ! मैं तुम्हारा सेवक हूं।'

मामी कमरे में लौट चली, तो सुधीर ने उसकी पीठ पर ही कहा—'तो मामी, तुमने उस लड़की से भी कहा होगा ? उसके बाप से भी ?'

मामी ने मुड़ कर कहा—'हाँ, भैया ! मैं तो एक तरह से पक्की बात कर आई थी। लड़की सयानी है। अपने मां-बाप की विवशता पहचानती है। मैंने तो उसे बताया था कि वह महलों की रानी बनेगी। पर तुम··· हाँ, अब क्या ! भाग्य बेचारी के ! बाप लड़की का विवाह तो तब करे, वहां पेट भरने का ही टोटा है। वह लड़की मुझसे कहती थी, मेरा मर जाने को मन करता है। बोलती थी, मैं ऐसी बदनसीब कि मां-बाप को अपने लिये परेशान कर रखा है।'

सुधीर ने अत्यन्त भावुक बन कर कहा—'हां, मामी ! मैं उस लड़की के विवाह में पैसा खर्च कर दूँगा। तुम उसके बाप पर खबर भेज देना, जल्दी !'

मामी ने वहां से जाते हुए कहा—'अच्छी बात है। तुम्हारा यह भी पुण्य होगा। लड़की का भला हो जायेगा।'

सुधीर ने नीचे जाती हुई मामी को सुना कर कहा—'न, मामी ! इसमें पुण्य और भलाई की कोई बात नहीं। जब उस लड़की को तुमने इतना भरोसा बँधाया, तो उसे अब यह तो मालूम होगा कि मैंने उससे विवाह नहीं किया तो क्या, सम्बन्ध अब भी मानता हूँ। मेरे ही समान

उसका भी प्राण है, भगवान है। दोनों को एक ही पिता ने पैदा किया है।'

मामी ने नीचे उतरते हुए जीने में मुड़ कर सुधीर की ओर देखा, और कहा—'तुम भी अजीब हो, लल्लू! भला इस दुनिया में इतना कौन सोचता है? अपना स्वार्थ ही सबको बड़ा लगता है!'

सुधीर ने फिर अपने स्वर पर बल दिया और कहा—'न, मामी! मुझे यही अच्छा लगता है। दुनिया में जो कुछ है, वह गौण है। मुख्य तो हमारी भावना है,······जीवन का सत्य!'

मामी ने बात सुन ली और नीचे उतर गयी। निश्चय ही, उसे सुधीर की बात न संगत लगी, न सत्य दिखायी दी। उसने अनायास ही समझा कि यह लल्लू पागल बन गया है। कल्पना की खातिर इतनी बदनामी पायी, पर उसे भी अपने घर में नहीं बैठानी चाहता। जाने क्या चाहता है, यह! क्या सोचता है! यह लल्लू जाने किस आँख से इस दुनिया को देखता है। सच, जैसे निरा भोला······निरा अजान······

उसी समय शिवदास घर में आया। सुधीर की मामी ने सभी बातें कह सुनायीं। तभी उसने अपना मत देकर कहा—'मैं कहती हूँ, तुम्हारा सुधीर व्याह नहीं करेगा। लोग कल्पना की बात कहते हैं, पर मैं तो समझती हूँ कि सभी झूठ है। बस, दोनों में बोलचाल है। कल्पना भले ही चाहती हो, पर सुधीर······'

शिवदास ने बीच में ही बात रोक कर कहा—'बहू, तुम्हें न छेड़नी थी, ऐसी बात! मैं समझता हूँ कि सुधीर विवाह की बात सुन कर प्रसन्न नहीं होता। जो लोग कल्पना से प्रीत की बात कहते हैं, वे भी अपने-आप समझ जायेंगे। अपनी भूल मान लेंगे।'

'तो मैं कहती हूँ कि इस घर का भागीदार कौन होगा? तुम बूढ़े हुए, लड़का विवाह नहीं करता, तो क्या, एक दिन यह घर बन्द न हो जायेगा!'

'बला से हो जाये, यह घर बन्द !' शिवदास ने कहा—'जब हाड़-मांस के घर नहीं रहते, तो ये ईंट-पत्थर के घर भला कब तक बने रहेंगे ! मैं सुधीर के दिल को ठेस पहुँचाना पसन्द नहीं करता। मेरे तो गाँव में दुश्मन होंगे भी, पर सुधीर का कोई नहीं है। सुधीर के सिर में चोट मार कर आज गाँव-का-गांव पछता रहा है। मेरा पुत्र मेरी आँखों के सामने ही, दूसरों से आदर पाये, इससे बड़ा सुख मुझे और क्या मिल सकता है। सुधीर की मा ने भी यह सुख प्राप्त किया। मैं कहता हूँ, उसका अन्त भी बुरा नहीं हुआ।' यह कहते हुए शिवदास बाहर चला गया।

किन्तु उसी समय अपने कमरे में बैठा हुआ सुधीर, कुछ देर पूर्व मामी से हुई बात को भले ही भूल गया, लेकिन, उसे यह बार-बार याद आ रहा था कि उसने एक मास तक कल्पना को अनेक तीर्थों का पर्यटन अवश्य कराया, किन्तु जो उद्देश्य था, वह पूर्ण नहीं हुआ। कल्पना का अभाव वे तीर्थ कर पूर्ण नहीं कर सके। अनेक साधु-सन्यासियों की संगति और विमल उपदेश भी कल्पना के मानस में अपना स्थान नहीं बना सके। और ऐसा क्यों था ? किस कारण ? निःसन्देह, सुधीर के मन का चोर बार-बार यही प्रश्न करता। लेकिन सुधीर के पास इसका कोई उत्तर नहीं था। उसी समय सुधीर को याद आया कि उसने एक दिन कल्पना से कहा था कि वह विवाह कर ले। इस वैधव्य को मिटा दे। तब एकाएक सुन कर उस वाक्य में कल्पना खो गयी। वह तुरन्त सुधीर से कुछ नहीं कह सकी।

तभी सुधीर ने कहा—'ऐ कल्पना ! जीवन का यह क्षेत्र अत्यन्त कठोर है। आपत्तियों से भरा है। तू कोमल है। भावनामयी है। तेरा स्थान इन पहाड़ और झाड़-झंकाड़ों में नहीं, महलों में है। तू तो रानी बनी थी, वहीं रह। साफ और निष्कण्टक पथ पर चल।'

इतना सुन कर ही, कल्पना ने कहा—'और तुम''''''तुम क्यों

नहीं इस पथ से दूर होते ! बताओ, तुम क्यों नहीं कुछ और देख पाते ?'

उस समय, सुधीर ने रात की काली अँधियारी को देखा। उसी ओर देखते हुए वह बोला—'कल्पना देवी, आज एक बात कहता हूँ, मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता यदि कुछ है, तो वह नारी है। मनुष्य इस नारी में ही देर से खोता आया है। क्या कहूँ तुमसे कि मैं भी उसी में खो गया हूँ। उसी श्राप का प्रायश्चित करने के लिये मैं इस कठोर पथ पर चढ़ा हूं।'

कल्पना बात सुनते ही तमक गयी। वह खो गयी। तुरन्त ही, वह अपने स्वर में क्षोभ लेकर बोली—'तो तुम औरत को हीन समझते हो··· पाप······इन्सान के जीवन का श्राप !' यह कहते हुए कल्पना का मुंह लाल बन गया। वह क्रोध से काँपने लगी। उसका रोम-रोम कम्पित हो उठा।

किन्तु कल्पना की उस अवस्था को देख, सुधीर मुसकराया। वह फिर बाहर अन्धेरे की ओर देखने लगा। मानो उसने जो कुछ कहा, उसकी दृष्टि में वह तब भी असंगत नहीं था। वह कल्पना से यही कहना चाहता था। चूँकि वह एक तीर्थ स्थान पर टिका था, जहाँ अनेक देवालय थे, इसलिये उस समय भी उन देवालयों में घन्टे-घड़ियाल बज रहे थे। भगवान की आरती उतारी जा रही थी। सुधीर का ध्यान उस ओर भी गया। तभी उसने कल्पना की बात को सुना। उसकी ओर देखा।

—और कल्पना कह रही थी—'सुधीर बाबू, तुम और कुछ हो या नहीं, पर इन देवालयों की मूर्त्तियों के समान पत्थर अवश्य हो। मुझे लगता है कि तुम इन पत्थरों में कुछ खोज करते-करते स्वयं पत्थर बन चुके हो। हाय ! कैसी बात है यह तुम्हारी कि जिस नारी ने तुम्हें पैदा किया, तुम उसी को इन्सान के जीवन का श्राप मानते हो ! मैं ऐसा समझती, तो तुम्हारे साथ न आती। इतना समय भी बरबाद न करती। यह कठोर कष्ट भी न उठा पाती।'

सुधीर ने कहा—'चिन्ता न करो, हम कल लौट चलेंगे। अपनी यात्रा को इसी स्थान पर समाप्त कर देंगे।' यह कहते हुए सुधीर ने साँस भरा और बोला—'हां, कल्पना! मैंने अपराध किया है। तुम्हारे साथ अन्याय किया है। भला मुझे ऐसा अधिकार कहां था। और तुम जिस मा की बात कहती हो, उसके प्रति मुझे कुछ नहीं कहना। उससे यदि कोई शिकायत किसी को थी, तो वह पिता जी को हो सकती थी। पर जब तुमने बात कही है, तो सुनो, उस मा ने भी मुझसे क्या लिया और क्या दिया। जिस नेह की और ममता की बात तुम कह सकती हो, उसे तो किसी ने भी अनुभव नहीं किया। जीवन का एक कठोर पश्चात्ताप, दुःख और क्षोभ सदा ही उस नारी के मन पर रखा रहा। एक शाश्वत जीवन पाया था उस नारी ने, पर उसे मिला क्या! उसने कभी भी स्वान्तः सुखाय का अनुभव नहीं किया। आज सोचता हूँ मैं कि मैंने उस नारी के स्तनों का दूध क्या पीया, खून पीया था! मैं खूनी हूँ, निर्दयी हूँ, मैं भी उसकी मृत्यु का कारण बन गया था। पुत्र के लिये उसने अपना सर्वस्व दे दिया था। और यह पुत्र, कुछ चाँदी के ठीकरे मार कर, यह सोचता है कि उसने मा-बाप का ऋण चुका दिया। भला कैसा प्रमाद है यह! कितना मिथ्या और कितना क्रूर! सचाई यह है, मैंने अपने माता-पिता को कुछ नहीं दिया।'

कल्पना उस समय सचमुच ही सहम गयी कि जब उसने देखा, सुधीर बात कहते हुए अतिशय गम्भीर और लाल बन गया है। मानो उसके मानस का रोष वाणी में फूट आया है। सुधीर का वह रूप, कल्पना ने पहिले नहीं देखा था। उस अन्धेरी रात में उसने एक नया और अनोखा सुधीर देख पाया। जिसके ब्रह्मचर्य का तेज आग की तरह मुँह पर उतर आया था। आँखें सुर्ख हो उठीं और मानस की वेदना से उसके होंठ कांपने लगे थे। यह देख, बरबस ही, कल्पना का सिर झुक गया। उससे कुछ भी नहीं कहा गया।

लेकिन सुधीर ने जब कहना आरम्भ किया, तो वह कहता चला। वह

आगे बोला—'री, कल्पना ! तू मेरी बचपन की साथिन है। तूने अपने बालपन का स्नेह मुझे दिया था। उसी के ऐवज में मैं भी तुझे कुछ देना चाहता हूँ। मैंने लोक-लाज की चिन्ता नहीं की। गाँव में अपना सिर फुड़वाया। लोगों ने मेरे मुँह पर कहा, तेरे पिता की आंखों के सामने कहा कि तू और मैं ···· हाँ, हम दोनों ही भ्रष्ट हैं। पतित हो गये हैं। देखा तूने कि इसी अपराध में लोगों ने मेरा सिर फोड़ दिया। मुझे खून में शराबोर कर दिया। मैं कहता हूँ, मुझे ठीक दण्ड मिला। मैं तुमसे पूछता हूँ, क्या लोगों का कहना झूठ था ? इस तीर्थ क्षेत्र में बैठ कर बताओ, गाँव के उन लोगों को क्या ऐसे ही मूर्ख बनाया जा सकता था······क्या हमारा नैतिक पतन नहीं हो चुका था······गाँव के व्यक्तियों की जिह्वा पर वह देव वाणी प्रस्फुटित हुई थी। मैं उस महेन्द्र का भी ऋणी हूँ कि जिसने गाँव में जाकर वह प्रेरणा प्रदान की। जन-जन की आत्मा में एक हूक जाग्रत की। और तुम···· री, कल्पना !'

उसी समय कल्पना चीख उठी। उसने अपना मुँह ऊपर उठाया और नितान्त कातर वाणी में उद्वेग भरी आंखों को लेकर, सुधीर को देखते हुए कहा—'सुधीर बाबू, तुम······'

सुधीर बोला—'चाहता हूँ, तुम अपना पुण्य पहचानो। अब भी भगवान का अस्तित्व समझो। नारी कब देवी है और कब राक्षसिन, इसे भी जान लो। जो आज तुम्हें यह सुन्दर जीवन प्राप्त हो गया है, तो आगे नहीं होगा।'

अत्यन्त उद्वेग पूर्ण बन कर कल्पना बोली—'मैं मरना चाहती हूँ।'

सुधीर मुसकराया—'उद्धार तब भी नहीं होगा। तुम्हारी आत्मा भटकेगी। वह चीत्कार करेगी कि उसने अच्छे शरीर में बसेरा नहीं प्राप्त किया।' यह कहते हुए सुधीर रोती हुई कल्पना को छोड़ अपने कमरे में चला गया। दूसरे दिन उन लोगों ने लौट चलने का प्रोग्राम बना लिया।

किन्तु गाँव में, अपने कमरे में बैठे हुए, सुधीर के मस्तिष्क में जब वह बीती हुई बात बरबस ही उठ आई, तो तभी, उसका बचपन का साथी जगधर वहाँ आया। वह सुधीर के कमरे में पहुँच गया। जगधर एक कालेज में प्रोफेसर था। कल्पना की ससुराल जिस नगर में थी, वहीं वह रहता था। कभी-कभी कल्पना के घर भी पहुँचता। जगधर को देख, सुधीर ने सामने खुली हुई पुस्तक बन्द कर दी। वह एक भारतीय-दर्शन की पुस्तक थी। उसका नाम देख कर जगधर मुसकराया और बोला—'भाई, आज इसे कौन मानता है। आदमी पढ़ता है, तो भूल जाता है। इस भौतिक जगत में, जीवन के भोग्य पदार्थों को प्राप्त करने वाला इन्सान, पहिले जीवन की माँग पूरी करता है। शरीर सजाता है। मन को सुखान्त बनाता है।'

सुधीर बोला—'हां, भाई! अवस्था यही है। कहो, कब आये?'

जगधर ने कहा—'कल सन्ध्या समय आया था।' और तभी उसे जैसे बात याद आई, बोला—'और हाँ, सुधीर बाबू, वह महेन्द्र जो यहां आकर आग लगा गया, एक बड़ा झगड़ा खड़ा कर गया, अब लगता है, कल्पना के पास से जाकर वह फिर आ गया। इसी सप्ताह मैंने उसे और कल्पना को एक सिनेमा के हाल में बैठे देखा था। वह पूरा साहब बहादुर वह पूरी मेम साहब!' जगधर ने इतना कहा और ही-ही करके हँस दिया।

१६



जगधर मनोविज्ञान का प्रोफेसर था। जब उसने कल्पना और महेन्द्र की बात कही, तो निश्चय ही, वह यह देखने के लिये उत्सुक था कि सुधीर पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होती है। परन्तु जितनी देर वह बैठा रहा, उसने सुधीर की ओर से कुछ नहीं सुना। मानो उसके लेखे, कल्पना और महेन्द्र के मिलन का कोई महत्व नहीं था। उस एक संक्षिप्त से समाचार को देकर, निश्चय ही, वह सुधीर से बड़ी बात सुनने का आकांक्षी था। किन्तु वह बात उठी और तुरन्त दब गयी। सुधीर ने एक हल्की-सी मुसकान पर वह बात उड़ा दी। फिर उन दोनों की समाज और देश के अन्य विषयों पर चर्चा चल पड़ी। उसी समय जगधर ने कहा—'सुधीर भाई, मैं प्रायः सोचता हूँ कि आखिर इस मनुष्य का अन्त क्या है! क्या इसी प्रकार के संघर्ष में से आदमी निकलता रहेगा। आज तो धर्म का भी अस्तित्व नष्ट किया जा रहा है। मशीन युग आया है तो भौतिक पदार्थों का ढेर लग गया है!'

सुधीर ने सरस भाव से हँस दिया—'मनुष्य सजना चाहता है। नारी भी अपना शृंगार करना चाहती है। उसकी देर से ऐसी कामना रही है। कोमल नारी के पास जब सोने चाँदी के आभूषण नहीं थे, तो वह जंगल के फूल तोड़ कर अपना शृंगार करती थी। मनुष्य की वासना का अर्थ

आदि युग की नारी भी खूब समझती थी। आज की नारी के समान, वह तब भी पुरुष को रिझाने का प्रयत्न करती थी।'

जगधर बोला—'भाई, यह भी एक अजीब समस्या है! इसका क्या कहीं किनारा है। देखता हूँ, इस नारी और पुरुष के समाज को किसी दिन भी डूब जाना है।'

सुधीर ने बात सुन ली, परन्तु वह मौन बन गया। वह सामने रखी किताब के पन्ने उलटने-पलटने लगा।'

जगधर ने कहा—'शहरी जीवन में जाकर तो साँस घुटता है। देश की गरीबी और विषमता का रूप क्या वहां दीखता है! परन्तु यहां गांव में सच, स्पष्ट लगता है कि सदियों पुराना मनुष्य यहां पर बसा है। जिसका बदन नंगा है। पेट भूखा है। जो सदियों के बाद आज भी धरती की छाती पर हल चलाता हुआ, अपने जीवन की नौका को खे रहा है। मैं कहता हूँ कि ये बढ़ते हुए नगर हमारे श्राप के प्रतीक हैं······वहाँ पाप का सृजन होता है····· सरस और भले इन्सान में जहरीला तत्त्व एकत्र किया जाता है। सच, वहाँ का इन्सान, मानो भेड़िया बन गया है। मशीन का कटोर पुर्जा सिद्ध हो रहा है!'

सुधीर ने कहा—'भाई, आज के समय की यही माँग है। भला यहाँ गाँव में क्या है। तुम सरीखे पढ़े-लिखे आदमी का स्थान क्या गाँव में हो सकता है!'

जगधर ने कहा—'सचमुच, यह भी लज्जा का विषय है। गांव में हमने जन्म लिया। जीवन पाया। परन्तु शहरी जीवन ही हमें अपनी ओर आकर्षित करता है।'

'इसलिये कि वहाँ सभी कुछ अच्छा लगता है।' सुधीर बोला—'सिनेमा वहाँ। सुन्दर पथ वहां। मोटर वहां। हवाई जहाज वहाँ। टेलीफोन और रेडियो वहां। बोलो, यहां क्या है! प्रातः हुआ नहीं कि तुम्हारे सामने

नौकर समाचार-पत्र लाकर रख देगा। बिस्तर छोड़ने से पूर्व तुम समूचे जगत के समाचार पढ़ लेते होगे। लेकिन यहाँ तो अन्धेरा है, भाई !'

जगधर बोला—'नगर में चरित्र नहीं। शान्ति नहीं।'

सुधीर ने तुरन्त कहा—'यहां भी नहीं। जवान लड़की के पीछे यहाँ भी कुत्तों के समान लड़के फिरते हैं। यहाँ का समाज भूखा है। अशान्त है। यहाँ रोजगार नहीं। तभी तो शहरों का समूह बढ़ रहा है। वहां कारखाने चल रहे हैं। पैसा बहते हुए पानी की तरह आ-जा रहा है। आदमी उसी में डूब रहा है।'

जगधर ने उसी समय हाथ की मुट्ठी बाँध ली और मेज पर पटक दी। उसने ऊँचे स्वर में कहा—'मैं कहता हूँ, यह इन्सान मरेगा।'

सुधीर मुसकराया—'मैं प्रलय की ऐसी कल्पना नहीं करता।'

'देखते नहीं, अनेक राष्ट्र क्या-क्या बना रहे हैं। संसार भर को नष्ट करने की कामना कर रहे हैं।'

सुधीर ने अपने सफेद दाँतों से हँस दिया—'न, भैया ! ऐसा कोई भी न कर सकेगा। इन्सान चलेगा, तो इस सृष्टि का सूत्रधार भी अपना पग उठायेगा ! और इन्सान मरेगा, तो मरेगा ! नित्य मरता है। तुम मौत की बात कहते हो, मैं कहता हूँ इंसान तो अपनी आँखों में, अपनी आत्मा की दृष्टि में, जाने कितनी बार मरता है। निर्लज्ज इन्सान का महत्व क्या ! इस भौतिक जगत में, इन्सान का अर्थ क्या ! अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये जो दूसरे को मारता है, छलता है, मूर्ख बनाता है और जो दूसरों की रोटी छीन कर अपना पेट भरता है, वह क्या इन्सान है। जीवित पुरुष है। क्या वह सात्विक है ! कह सकते हो कि सत्य और धर्म उसके भी पास है। तो भाई'—सुधीर ने साँस भरा और बोला—'जब ऐसा जगत है, ऐसा इन्सान है, तब यही सब होगा ! एक पति या पत्नी की चिता जला कर जब नर या नारी दूसरा साथी प्राप्त करते हैं, तो समझो, वे वासना की भट्टी में जल रहे हैं। भस्म हुये जा रहे हैं। वे जीवन का सरस और

कोमल हास्य नहीं प्राप्त कर सकते। जीवन का दर्शन, जीवन ममत्व उनकी दृष्टि में नहीं आ सकता। उन्होंने सुन्दर शरीर पाया है, तो उसे भोगना चाहते हैं। और ऐसे ही समाज ने पैसे की उत्पत्ति की है, इन्द्रियों की तृप्ति के साधन जुटाये हैं, तब भला वे क्यों न प्राप्य हों! पैसा किसलिये है? इसीलिये तो! और तुम कहोगे कि यह पैसा समाज का है। देश का है। समूचे जगत का है! रे, सिद्धान्त भरे आदमी! ऐसा सोचने के के लिये, तुम्हें अपना चरित्र ठीक करना पड़ेगा। तुम्हें नारी और नर का वह सुन्दर और अलौकिक शरीर वासना की भट्ठी में झोंक देने के लिये रुकना पड़ेगा। पहिले उस जीवन की शास्वतता स्वीकार की जायेगी। उसका धार्मिक संस्कार बुद्धि के तराजू पर तोलना उचित होगा। क्योंकि तुम जो कुछ हो, अकेले नहीं हो, एक नहीं! तुम्हारी वाणी, तुम्हारी विस्तृत दृष्टि दूसरों की देन है। हमारे पास जो कुछ है, वह समाज का है। समूचे जगत का है। तो भाई, याद तो करो एक क्षण को अपने उन पुरखों को, जो पहाड़ों की कन्दरा में रहकर सामुहिक रूप से जीवन चलाते थे। वह चिर-परम्परा आज भी है। परन्तु उस समूहवाद के आगे जो सामन्तवाद आया, वह क्यों? किसलिये? इसीलिये न कि हमारे पुरखों ने जो भोग्य पदार्थ निर्मित किये, वह बुद्धिवादी इन्सान उनमें और बढ़ोतरी कर सका है। इस विज्ञान के युग में तुम्हें क्या नहीं प्राप्त होता! जब शराब है, नाट्यशाला है, सजा हुआ बाजार है. तो तुम्हें सभी कुछ देखने को मिलेगा। मनुष्य की वासना की पूर्ति के लिये तुम्हें बाजार के कोठे पर सजी हुई औरत का भी रूप दिखायी देगा। वह तुम्हें देखते ही प्यार और अपनत्वता का प्रदर्शन करेगी। तुम्हारे समक्ष अपना सर्वस्व समर्पित कर देगी, मेरे भाई! यह है, आज के इन्सान की जड़ता! मनुष्य का कलंक! देखा न तुमने, इस पैसे ने सभी कुछ करा दिया है। सुन्दर और भली नारी को घर से निकाल कर बाजार के कोठे पर बैठा दिया है। तुम्हारे पास पैसा है, तो घर बैठे तुम्हें सभी कुछ

प्राप्त हो सकता है। बस, जो नहीं प्राप्त हो सकता, वह है सत्य, मानवता और देवत्व! पर जब तुम्हारे पास पैसा है, तो तुम्हें उसकी आवश्यकता क्या है! लोग तुम्हें घर बैठे धर्म-पण्डित और महा-मानव की उपाधि भेज देंगे। लोग अपने विचार, अपना जीवन तुम्हारे पैसे के समक्ष भेंट कर जायेंगे। उस अवस्था में तुम समाज के पंच बनोगे। इन्सानी जगत के सिरमौर!'

विषाद भरे भाव में, जगधर मुसकरा दिया—'सचमुच! यही परम्परा है! यही गति है!'

सुधीर ने कहा—'भैया, यह अवस्था देर से है। हमारे पुरखों ने जहाँ बहुत सी बातों का निर्माण किया, वहाँ मनुष्य-समाज को यह विष भरा पाठ भी दे दिया।'

जगधर देर से बैठा था, खड़ा हो गया। वह चल दिया। उसके पीछे ही सुधीर भी कुर्सी छोड़ कर, कमरे के द्वार पर पहुँच गया। वहीं से उसने देखा कि मामी के पास एक जीर्ण और वृद्ध व्यक्ति बैठा हुआ है। एक जवान लड़की भी पास बैठी है। यह देख, सुधीर को सन्देह हुआ कि कहीं ये लोग वही न हों कि जिनका प्रातः ही मामी ने उल्लेख किया था। सुधीर ने देखा कि सचमुच लड़की सुन्दर है। युवा है। यही सोच कर उसने मामी को आवाज दी और ऊपर बुलाया। जब मामी आईं, तो उसने पूछा—'ये लोग कौन है?'

मामी ने कहा—'भैया, जिस लड़की के लिये तुमसे कहा था, उसी का बाप। वही लड़की।'

'अच्छा, तो तुमने बुलाये होंगे। कहा होगा कि यहां आना।'

मामी बोली—'हाँ, भैया! मैंने कहा था। सो, तुमने इन्कार ही कर दिया। वह आये, तो मैंने भी साफ कह दिया।'

उसी समय सुधीर ने मेज की दराज से बैंक की चैक-बुक निकाली और एक पाँच सौ रुपये का चैक लिख कर मामी को देता हुआ बोला—

'यह लड़की के पिता को दे दो। कहना, लड़की के भाई की ओर से है। उन्हें खाना खिला कर बिदा करना। खाना बन गया हो, तो मुझे भी भेज देना। जाओ।' सुधीर फिर खड़ा हो गया। मामी नीचे चली गयी। जब वह नीचे पहुँची, तो तभी, मामी की आवाज आई—'लल्लू, जरा नीचे आना।' सुधीर ने सुना, तो चल दिया। जब वह वहां पहुँचा, तो देखा कि चैक वृद्ध के हाथ में था। उसका हाथ काँप रहा था। सुधीर को देख कर वह बोलना चाहता था, परन्तु जो बात उसे कहनी थी, उसे कह नहीं पा रहा था। उसका होंठ काँप रहा था।

यह देख, सुधीर ने कहा—'आप चिन्ता न करें। मैं विवाह करता, तो जरूर कर लेता। पर मुझे आपकी सेवा करनी चाहिये। आप कहीं लड़का देखकर विवाह कर दीजिये। मुझे खबर दीजियेगा। क्यों, और कितनी सन्तानें हैं आप के?'

वृद्ध ने कहा—'भैया, अब तो बस यही एक है। दो लड़के थे, वे मर गये।'

सुधीर बोला—'तो समझिये, मैं आपकी लड़की का भाई हूँ। आप का पुत्र हूं। मैं भी आपका आशीष पाना चाहता हूं।'

वृद्ध ने कहा—'बाबू, तुम बड़े आदमी हो। जैसा सुना, वैसा पाया।'

सुधीर मुसकरा दिया—'न, न, कुछ पैसा दिया है तो आप मुझे ऊँचाई पर खड़ा न देख लें। इत्तिफाक है कि पैसा मेरे पास है, आपके नहीं। पैसा सभी का है। मैंने बहिन को दिया।' वह तभी मामी की ओर देख कर बोला—'इन्हें भोजन कराओ। बताओ, आसन कहां है, मैं बिछा दूं।'

मामी बोली—'तुम बैठो, भैया! मैं बिछा दूंगी।'

किन्तु वह लड़की जो अभी तक लाज लिये बैठी थी, तुरन्त खड़ी हो गयी। वह बोली—'यह काम मेरा है।'

सुधीर ने बात सुनी, तो सहज भाव से मुसकरा दिया। उसने कहा—'ठीक है। बात सच्ची है।'

मामी बोली—'तो तुम कहां खाओगे भैया? यहां या ऊपर?'

सुधीर ने कहा—'यहां खा लूंगा। बाबा के साथ बैठूंगा।' और वह तभी एक आसन पर बैठ गया। दूसरे पर बाबा को बैठाया।'

तभी सुधीर ने पूछा—'तो आपने कहीं लड़का देखा है?'

बाबा बोला—'हां, भैया! लड़के तो कई नजर में हैं।'

'तो जल्दी ब्याह कर देना। अभी एक महीने में करोगे, तो मैं भी आ जाऊँगा।'

वृद्ध ने कहा—'बेटा, अब मैं जल्दी करूंगा।'

सुधीर बोला—'इस चैक का रुपया पास के कस्बे से मिल जायेगा। बैंक का नाम लिखा है। पूछ लेना।'

उसी समय लड़की खाने की थाली लाई। सुधीर के सामने रखी। तभी सुधीर ने उसकी ओर देखकर पूछा—'तो तुम्हारा नाम?

लड़की ने कहा—'कमला।'

'तो कमला बहिन, तुम सदा इस घर को अपना घर समझना। मेरी भी कोई बहिन नहीं है। एक थी, मर गयी। भला बिना बहिन के भाई क्या अच्छा लगता है।'

वृद्ध ने कहा—'भैया, यह भी अकेली थी। भैया बिना सूनी थी।'

कमला दूसरी थाली ले आई। जब वे दोनों खाने लगे, तो तभी सुधीर के पिता घर में आये। वह वृद्ध को देखते ही वह बोले—'अच्छा, चौधरी जी! राम-राम!'

चौधरी ने कहा—'राम-राम, भैया! कहां थे तुम। मैं आया और यों बैठकर रोटी खाने लग गया। क्या खेत पर थे?'

शिवदास ने कहा—'चौपाल पर बैठा था। कहो, सब राजी-खुशी।

उसने कमला को देखा, तो कहा—'अच्छा, कमला बिटिया भी आई है। कहो, बेटी, अच्छी तरह हो !'

कमला ने कहा—'आपकी कृपा है।'

चौधरी ने कहा—'भैया, मैं जिस लिये आया था, वह काम तो हुआ नहीं, पर उससे भी बड़ा काम हो गया। तुम्हारी कमला को भैया मिल गया। तुम्हारा सुधीर भैया बन गया।'

शिवदास ने कहा—'हां, हां, यह भी क्या अचरज की बात हुई। कमला हमारी है। बिटिया है !' यह कहते हुए शिवदास फिर बाहर चला गया।

जब सुधीर भोजन कर चुका, तो खड़ा हो गया। वह मुँह साफ करके फिर ऊपर चला गया। वहाँ जाकर उसके मन में बात आई, एक यह कमला है और एक वह कल्पना ! दोनों में अन्तर है। भावना का भेद है। जीवन में अन्तर ! वह बोला—'अभाव दोनों के पास है। किन्तु जिन्दगी को देखने की निगाहें जुदा-जुदा हैं। आज जैसा जगधर ने कहा, यदि वह सत्य है, तो सचमुच, कल्पना का पतन हो गया। यौवन के तेज प्रवाह में उसने अपने को बहा दिया। उस गहरे पानी में बरबस, सुन्दर कल्पना ने अपने को डूब जाने दिया।

मन में आई हुई इतनी-सी बात को लेकर सुधीर पलंग पर पड़ गया। वह उस बात को भूल जाना चाहता था, लेकिन, जब एक बार वह कल्पना उसके स्मृति-पट पर आई, तो जैसे चंचल बालिका की तरह जम कर बैठ गयी। वह सुधीर को चिराने लगी और खिजाने का भाव प्रदर्शित करने लगी। और सुधीर चाहता था कि उससे कह दे, वह जाये। उसके पास से भागे !

किन्तु कल्पना अब बच्ची नहीं थी, न वह सुधीर को खिजा रही थी। वह अब जवान थी। अपने घर की और शरीर की मालिक थी। उसका अपने सौंदर्य पर और यौवन पर एकाधिकार था। इसलिये जब

सुधीर के समक्ष महेन्द्र की बात आई, तो वह अनमने ढंग से बोला—'ठीक तो है ! कल्पना शरीर की मांग जरूर पूरी करेगी······वह यौवन के दरिया में भी तैर जायेगी······'

उसी समय, कमला ऊपर आई और द्वार पर से ही बोली—'भैया !'

सुधीर चौंक गया। वह उठ खड़ा हुआ। द्वार पर पहुँचा।

कमला बोली—'तो भैया, हम जा रहे हैं। तुमने जो नाता बनाया है, उसे निभाना। भूल न जाना। यह गरीब बहिन······'

सुधीर ने बात सुनी, तो तुरन्त अधीर बन गया। वह बीच में ही बोला—'न, न, मैं कभी नहीं भूलूंगा, कमला बहिन ! जब भी आवश्यकता हो, तो खबर कर देना। जाओ, भगवान तुम्हारा भला करे। और वह स्वयं उसके साथ नीचे की ओर चल दिया।

२०

• • •

एक दिन जब सुधीर प्रातःकाल में वायु सेवन करके घर लौटा, तो उसने पिता के पास ठाकुर विक्रमसिंह को बैठा पाया। उसने जब हाथ जोड़कर उनका अभिवादन किया, तो वह बोले—'भाई, तुम्हें गाँव में आये इतने दिन हो गये और मुझे आने का समाचार भी नहीं दिया। चलो, अपने कमरे में, मुझे तुमसे कुछ विचार करना है।'

दोनों मकान के ऊपरी कमरे में चले गये। तभी विक्रम ने सांस भरी और कहा—'सुधीर बाबू, आज मुझे यह स्पष्ट बताओ कि तुम्हारा अपने प्रति क्या विचार है। समझे न मेरी बात, मैं विवाह के विषय में जानना चाहता हूँ।' वह बोले—'भाई देखते हो, मुझे कल्पना की चिन्ता सता रही है। सोचता हूँ उस जवान लड़की का जीवन कैसे चलेगा! तुम्हारा-उसका बचपन का साथ है, तो क्यों न,......'

आतुर बनकर सुधीर ने कहा—'ताऊ जी, मेरा तो निश्चय है कि इस जीवन में विवाह नहीं करूंगा।'

लेकिन ठाकुर विक्रम ने फिर बात पकड़ी और कहा—'देखो, कल्पना के पास बड़ी सम्पति है। दोनों का जीवन बड़ा शानदार रहेगा। विचार मिलते हैं, तो जीवन भी मिलता है।'

सुधीर रूखे भाव से मुसकराया—'कल्पना के लिये महेन्द्र उपयुक्त रहेगा! वह योग्य है। दुनियादार है।'

चकित भाव में विक्रम ने सुधीर की ओर देखा। मानो एक बार फिर उस युवक को समझना चाहा। उसी अवस्था में उन्होंने कहा—'ऐसा तुम कहते हो! जिस महेन्द्र ने तुम्हारा सिर फुड़वा दिया, गाँव में इतना बड़ा विद्रोह खड़ा कराया, तुम उसी महेन्द्र के लिये······'

सुधीर ने बात के बीच में ही कहा—'अच्छा मनुष्य भी भूल करता है, ताऊ जी! वैसे महेन्द्र अच्छा है। नारी और धन के लिये मनुष्य कभी विवेक शून्य भी बन जाता है।'

ठाकुर ने तेज स्वर में कहा—'लेकिन मैं उससे घृणा करता हूं।'

सुधीर जैसे एकाएक ही विपाक्त बन गया। वह बोला—'लेकिन आपकी घृणा से क्या! आपको कल्पना की इच्छा को महत्व देना होगा। महेन्द्र अब भी उसके पास जाता है। वहाँ ठहरता है।'

विक्रम ने जैसे शरमा कर कहा—'मुझे इसका पता है।'

सुधीर ने सांस भरी और खिड़की के बाहर, मकान के सामने खड़े पीपल के पेड़ की ओर देखा। उस समय पेड़ की डाल पर एक गौरैया बैठी थी। वह सुनहरी पंख वाली चिड़िया भली लग रही थी। सूरज की धूप में उसके पंख शोभायमान लग रहे थे। लेकिन सुधीर के देखते-देखते चिड़ा आया और वह उस गौरैया को उड़ा कर ले गया। तभी सुधीर ने झटके के साथ कमरे में बैठे विक्रम की ओर देखा और कहा—'ताऊजी, यह नर और नारी का व्यापार भी अजीब है! परेशानी से भरा है। यहां गाँव में कल्पना मेरे पास आती, नदी और खेत-खलिहानों में मेरे साथ घूमने जाती, तो वही क्या अच्छा था! मैंने अनुभव किया कि दोष मेरा था। मुझे कल्पना को रोक देना था। मुझे स्पष्ट कहना था कि यह गाँव है। यहां की परम्परा और है।'

खिन्न स्वर में ठाकुर विक्रम ने कहा—'मैं यह नहीं मानता, सुधीर बाबू ! देखो न, गांव ने अपनी भूल को मान लिया ।'

सुधीर मुसकराया । जैसे वह विक्रम की बात को निरे हल्के रूप में सुन पाया ।

तभी विक्रम ने फिर कहा—'सुधीर जी, मैं बाप हूँ, यही मेरी कठिनाई है । मुझे कल्पना अपने जीवन की तेज धारा में बहती हुई दिखाई देती है । उसकी विवशता यह है कि जवान है, सुन्दर है और उसके पास प्रचुर धन है । जीवन के साथ, उसके उपभोग की लालसा उस कल्पना को सताती है ।'

सुधीर ने फिर पीपल की ओर अपना मुँह कर लिया । उसी ओर देखते हुए वह बोला—'आप ठीक कहते हैं । परन्तु मेरा मत यह भी है कि कल्पना को स्वयं चेतना आयेगी । वह डूबेगी नहीं । उसकी भावना को मैंने समझा है ।'

'अरे, नहीं सुधीर बाबू !' विक्रम ने जल्दी से, मानो आतुर बनकर कहा—'उसकी भावना ही तो उसे ले डूबेगी ! इस झँझावात में खो जायेगी । वह इसी राह पर अपना दम तोड़ेगी । मैंने सुना है कि उसने अब एक मोटर खरीद ली है । पहिली जो बेकार खड़ी थी, वह बेंच दी । उसके ऊपर वह महेन्द्र हावी हो गया है । वह चतुर है । मैंने अब उस घर जाना भी बन्द कर दिया है । नहीं जाऊँगा ।'

इतना सुना, तो सुधीर कुर्सी से खड़ा हो गया । कल्पना कितनी आगे निकल गयी है, इसका उसे पता नहीं था । वह अतिशय गम्भीर बन गया । उसके माथे में बल पड़ गये । हाथ की मुट्ठियाँ भिंच गयीं और वह एकाएक ही, खिड़की के पास खड़ा होकर सोचने लगा, तो ऐसी हो गयी है, कल्पना ! इतनी जड़······ऐसी पत्थर······

उसी समय ठाकुर विक्रम ने भी कुर्सी छोड़ दी थी । उसने सुधीर की पीठ पीछे आकर कहा—'सुधीर भैया, कुछ करो । मेरा मुँह काला हो रहा है । कल्पना का उद्धार हो, इसके लिये मैं अपनी जायदाद भी दे

सकता हूँ। समझते हो न, वह मेरी आत्मा का टुकड़ा है। अब भी सोच लो। तुम उसे अपनी पत्नी स्वीकार कर लो। कल्पना की जिन्दगी दलदल में फँस गयी है, उसे निकाल लो। यह काम तुम्हीं कर सकते हो। तुम्हीं उसके बचपन के सखा हो,—सच, तुम!'

उस समय नितान्त दयनीय और अप्रत्याशित भावना के साथ, सुधीर ने ठाकुर विक्रम की ओर देखा। जैसे उस प्रौढ़ व्यक्ति को एक बार फिर समझना चाहा। वह कितना पीड़ित है, पुत्री के कारण कितना कष्टमय है, इसका भी लेखा उसने एक ही निगाह में पढ़ लेने का प्रयत्न किया। उसी अवस्था में उसने कहा—'ठाकुर साहब, विवाह न करने का तो मेरा देर से निश्चय हो चुका है। वैसे, कल्पना के प्रति मैं उदासीन नहीं रह सकता। उससे मेरा अभिन्न सम्बन्ध है। वह जीवन में शांति पाये, मैं इसका पूरा प्रयत्न करूंगा। अपने जीवन की साधना उसके सपर्पित कर दूंगा।'

'तुम युग-युग जीओ, सुधीर बाबू! मेरी यही आकांक्षा है। मेरे समान, कल्पना की मा भी परेशान है। दुःखी है। उसकी पुत्री दुश्चरित्र बने, विपरीत राह पर जाये, ऐसा उसे एक क्षण को भी अच्छा नही लग सकता। वह अपनी पुत्री को कलंकित देखने से पूर्व मर जाना पसन्द करेगी। वह सोचती है कि उसके बच्चे समाज में कैसे मुँह दिखायेंगे। वे किस प्रकार गौरव और आत्म-प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकेंगे।' यह कहते हुए ठाकुर विक्रम चल पड़े। जब वह सुधीर के पास से चले गये तो तभी उसकी मामी दूध का गिलास लेकर आई और बोली—'लल्लू, तुम्हें आज कमला के घर जाना है। मुझे भी साथ ले चलना है। कल उसका विवाह है।' उसने हर्षित बन कर कहा—'देखो, भाग्य की बात कि उसे लड़का भी अच्छा मिल गया। वह किसी स्कूल में पढ़ाता है।'

सुधीर ने बात सुनी, तो बोला—'अच्छा हुआ, मामी! मैं चलूंगा।'

मामी ने कहा—'दिन ढलते ही चल देंगे। सूरज छिपे तक पहुंच

जायेंगे।' यह कहते हुए मामी ने दूध का गिलास मेज पर रख दिया। वह लौट गयी।

किन्तु जब सुधीर ने दूध का गिलास देखा, तो वह उसे पी जाने की बात लेकर भी, एकाएक कल्पना की बात में डूब गया। वह खिड़की के बाहर पेड़ के पत्तों में जैसे कुछ ढूंढने लगा। वहीं पर मानो वह खोजने लगा कि अब वह बचपन की कल्पना कहाँ है! उसका सरल और सरस स्नेह कहाँ! वह तो अब यौवन की आँधी में उड़ गयी है। उस उससे दूर हो गयी है। और वह अन्धड़ जो उसे उड़ाये लिये जा रहा है, उसमें वह अकेली नहीं, महेन्द्र भी है। दोनों की आँखों में धूल है। उनके दिल और दिमाग जैसे विक्षिप्त हैं। तो तभी, सोचा सुधीर ने, क्या वह कल्पना को पकड़ सकता है? अब वह बचपन की कल्पना को प्राप्त कर सकता है! उसने अपने-आप कहा—नहीं इस जीवन में नहीं! तभी झटका सा खाकर सुधीर ने फिर कमरे की ओर दृष्टिपात किया। कमरे की दीवारों पर अनेक चित्र टँगे थे। वे सभी महा पुरुषों के थे। बुद्ध, कृष्ण के अतिरिक्त अन्य योगियों और समाज के प्रणेताओं के भी चित्र थे कि जो भारतीय परम्परा के प्रतीक थे। वे राष्ट्र की संस्कृति के जन्मदाता थे। उन्हीं चित्रों की ओर देखते हुए एकाएक सुधीर की आँखें भर आईं। वह रो पड़ा। उसने निरे विह्वल हुए बच्चे के समान, जैसे उसकी कोई वस्तु छिन गयी हो, उसके सम्मान को चोट लगी हो, वह तड़पता हुआ बोला—'तो क्या, अब ऐसी भी बन जायेगी, कल्पना! मेरी साधना व्यर्थ जायेगी! पूरे एक मास तक मैं उसको लेकर इतनी दूर गया। प्रकृति का वराट रूप उसे दिखाने में सफल हुआ। तो क्या फिर इन्द्रियों की वासना में भटक जायेगी वह! जीवन की संस्कृति, जीवन का धर्म और विवेक वह कभी भी अनुभव नहीं करेगी। अरी, कल्पना!

उसी समय सुधीर को नीचे से आवाज आई—'रे, सुधीर!' शिवदास ने पुकारा था।

सुधीर ने अपनी आँखें पोंछ लीं और कहा—'जी।'

'देखो, एक साधु महाराज आये हैं। ऊपर आयें ?'

सुधीर ने कह दिया—'आ जायें।'

कुछ देर बाद ही, एक साधु जो आयु से प्रौढ़ थे, खड़ाऊँ की खट-खट करते हुए जीने के रास्ते ऊपर चढ़ आये। देखते ही, सुधीर ने कहा—'महाराज आप······' उसने चरण-स्पर्श किये, और महाराज को तख्त पर बिछे आसन पर बैठाया।

,साधु ने आशीष दिया और बैठकर मुसकराते हुए कहा—'तो यह है, तुम्हारा घर ! बहुत दिन की इच्छा आज पूर्ण हुई।'

सुधीर ने कहा—'आपने तो बहुत बार आने की बात कही, पर पूर्ण नहीं हुई।'

साधु ने कहा—'भाई, हमारा ठिकाना तो कोई है नहीं। आज कहीं, कल कहीं।' वह बोले 'आज के समय में इस साधु-वेष की भी महत्ता नहीं रही। साधु स्वयं निष्क्रिय बन गया है। समाज के प्रति अनुत्तरदायी है।'

उसी समय सुधीर नीचे गया। वह एक लोटे में पानी और एक गिलास में दूध लाया। साधु ने धूल भरे पैर साफ किये, मुँह धोया। जब वे दूध पी चुके, तो बोले—'अब तुम्हारा अवकाश कितना है ?'

सुधीर ने कहा—'इसी सप्ताह चले जाना है।'

'मैं उस ओर गया था। स्थान सुन्दर था।' उसी समय साधु मुसकराये—'हाँ, बोलो, तुमने विवाह कर लिया ? पिछले दिनों मैंने तुम्हें एक स्टेशन पर देखा था। मैं जा रहा था। जब गाड़ी चली, तो तभी, तुम्हें एक तरुणी के पास बैठे पाया था।'

सुधीर ने कहा—'जी, वह यहाँ के ज़मींदार की लड़की थी। मेरे साथ तीर्थाटन कर रही थी। दुर्भाग्य की बात कि वह बेचारी विधवा बन गयी !'

साधु ने कहा—'लेकिन उसे तुम्हारे साथ नहीं जाना चाहिये था। तुम्हें भी इतना सोचना था। क्या इस प्रकार समाज के नियम का उल्लंघन नहीं था!'

सुधीर ने उस अप्रत्याशित बात को सुन, अपना मत नहीं दिया। मानो उसने सहज भाव से साधु की बात को स्वीकार कर लिया।

साधु बोले—'युवा पुत्री और पिता को भी दूर रहना चाहिये। इनके शरीर में व्याप्त कामेन्द्रियों का प्रभाव कम उत्तेजक नहीं होता। वह तो सभी प्राणियों को झिंझोड़ता है और परेशान करता है। और तुम युवा, अभी अविवाहित! भला बताओ तो, तुमने क्यों अपने को एकाकी बना रखा है!'

सुधीर ने साधु महाराज की ओर देखा और मुसकरा कर रह गया।

'समाज का यह जीवन, गृहस्थी बन कर ही समझा जा सकता है, सुधीर बाबू! तुम्हारी विद्वत्ता का विकास भी तभी हो सकता है।' साधु महाराज ने कहा—'यह इन्सान का जीवन एक ध्येय माँगता है। मनुष्य का जीवन स्वयं अपने आप में एक बड़ी साधना है। भूलो मत कि जिस आराधना के साथ तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हारा सृजन किया, उस अनुष्ठान के मन्त्र केवल एक गृहस्थी ही जान सकता है। वह त्याग, ममता और अलोड़ भरा जीवन भला और कोई प्राप्त कर सकता है, न, कदापि नहीं! एक सन्यासी या योगी भी नहीं! ऐसा जीवन तो एकाकी है, जड़ है। चेतना प्राप्त करने के लिये पत्थर में पत्थर मारा जाता है। तभी तो चिंगारी के पतंगे निकलते हैं। आग जलती है। यह इन्सान जिन संघर्षों के थपेड़े खाकर इन्सान बना है, इसका एक बड़ा लम्बा इतिहास है। तुम्हारे माता-पिता सर्वदा वन्दनीय हैं। तनिक कल्पना तो करो कि मा अपने बच्चे के लिये भूखी रहती है। स्वयं गीले में सोती है और बच्चे को सूखे में सुलाती है। अहा! तुम पृथ्वी माता की ओर देखो कि इन्सान धरती की छाती पर हल चलाता है और वह

अपने बच्चों को अन्न का उपहार भेंट करती है। नारी वेदना पाती है और इस विश्व को,……भगवान की इस सृष्टि को……एक-से-एक बढ़िया रत्न प्रदान करती है। मा नेता देती है, समाज सुधारक प्रदान करती है। उसके गर्भ से उत्पन्न बालक युग-प्रवर्तक बनते हैं।'

सुधीर ने कहा—'महाराज, प्रकरण अच्छा है। एक मैं विवाह न करूं, तो क्या जगत खाली हो जायेगा। यह तो इच्छा का प्रश्न है।'

साधु ने कहा—'सुधीर बाबू, तुम भी समाज के अंग हो। कोई भी व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं है। ईश्वरीय सत्ता के अतिरिक्त समाज के नियमों से भी बंधा है।' वह बोले—'रेल में ही मैंने उस लड़की को देखा तो मैं प्रसन्न हुआ कि तुम्हें अच्छा साथी मिल गया। मैं तो बधाई देने आया था। मुझे यहाँ टिकना नहीं था। केवल तुमसे मिलना भर था। मुझे आगे जाना था।'

सुधीर बोला—'आपके दर्शन करके मैं कृतकृत्य हुआ। आपने जो उपदेश दिया, वह मेरे लिये परम सुख का विषय रहा।'

साधु हँसे—'तुम दार्शनिक हो! तुम तो मुझसे भी ऊँचे साधुओं के पास पहुंच चुके हो। पिछले दिनों तुम जहाँ-जहाँ गये, वहाँ मैं भी गया था। मुझे तुम्हारा पहुँचना ज्ञात हो गया था।'

सुधीर बोला—'मैं उस लड़की को ले गया था। चाहा था कि उसके विचार बदलें। उसके जीवन की दिशा भी और हो।'

साधु ने कहा—'न, न, तुम साथ रहोगे, तो यह सब नहीं होगा। उसके मन में तो दूसरी इच्छा का समावेश होगा। निश्चय ही, उसने तुमसे कुछ माँगा होगा। नारी समर्पण में आनन्द पाती है। यही उसकी अनुभूति है। एक तरुणी साथी तरुण से इसी की आकांक्षा कर सकती है। निश्चत ही, अपनी इच्छा की पूर्ति न देख, वह निर्मम और क्रूर भी बन सकती है। नारी के मन में प्रतिकार की भावना जल्दी उत्पन्न होती है।'

उस समय सुधीर का मुँह बाहर की ओर था। वह शान्त था। किन्तु यह स्पष्ट था कि साधु जिस धरातल पर टिककर अपनी बात कह रहे थे, उससे निश्चय ही, सुधीर के मन में हा-हाकार उठ आया था। इसलिये वह गम्भीर था। क्योंकि जो बात उसने सन्यासी से सुनी, उसे वह स्वयं भी अनुभव कर रहा था। सुधीर ने अपने-आप यह समझ लिया था कि कल्पना के लिये वह उपयुक्त नहीं। उसका उपदेश कल्पना के लिये किसी प्रकार भी उपादेय नहीं····· कल्पना की दृष्टि में सत्य नहीं!

तभी पिता ने आकर कहा—महाराज को स्नान कराओ, सुधीर! भोजन तैयार है।'

सुधीर खड़ा हो गया। उसने सन्यासी का कमण्डल उठा लिया और उन्हें साथ लेकर कमरे से नीचे उतर गया। कूएं पर जाकर उसने सन्यासी की कमर पर हाथ फेरा और विधिवित स्नान कराया। वह पूर्ण रूप से साधु-भक्त था, उसी भावना के चिन्तन में उसने अपने को लगा दिया था।

२१

अपने लम्बे अवकाश में सुधीर ने जीवन का एक विशाल अनुभव प्राप्त किया। उसने कुछ पाया और कुछ खोया। मानो युग-युग की चेतना से आवृत्त वह व्यक्ति किसी अवस्था में भी शान्त और निश्चित नहीं था। उसके मानस की यह कैसी विवशता थी कि वह बरबस ही, विवाह की स्थिति से असहमत हो गया। मानो यही उसका संकल्प था। किन्तु जब वह गाँव से फिर अपनी नौकरी पर पहुँचा, तो इच्छा करके भी, कल्पना के पास नहीं गया। यद्यपि उसने कल्पना को इस प्रकार का वचन दे दिया था कि जाते समय वह मिलकर जायेगा। लेकिन जब वह कमला के विवाह से लौटा, तो अजीब प्रकार की अनुभूति से भरा हुआ, एक क्षण के लिये भी, इस प्रकार की इच्छा नहीं कर सका कि वह उस स्वस्थ मस्तिष्क में किसी दुर्भावना को आश्रय दे। साधु और स्वयं कल्पना के पिता से उसकी जिस प्रकार की बातें हुईं, तो उनसे, वह निश्चय ही, एक प्रकार की ग्लानि से भर चुका था। ठाकुर विक्रम के समान, साधु महाराज भी उसके निकट के व्यक्ति थे। वे एक बड़े अधिकारी का स्थान छोड़कर साधु बने थे। जीवन का दर्शन उन्होंने पूर्णरूप से समझा था। सुधीर पर उनका विशेष स्नेह था।

जब सुधीर काम पर पहुँचा, तो वहाँ वह यह देखकर प्रसन्न हुआ कि मजदूर की लड़की अब अन्धी नहीं रही। उसकी आँखों का आपरेशन हो गया। सुधीर फिर अपनी दुनिया में जाकर खो गया। जब दो मास के लगभग उसे अपनी नौकरी पर काम करते हो गये, तो तभी, एक दिन गाँव के साथी जगधर का सुधीर को पत्र मिला। उसी पत्र में उसने लिखा कि कल्पना ने महेन्द्र की प्रेरणा पर गाँव की जमींन बेंच दी। महेन्द्र पूर्णरूप से उस पर छा गया है। आज कल वे दोनों कहीं पहाड़ पर घूमने गये हैं।

उस पत्र को पढ़कर सुधीर के मस्तिष्क का सन्तुलन एकाएक खो गया। उसके मन में आया कि वह तुरन्त कल्पना के पास जाये और उससे कहे, अरी, तू अब क्या करने चली है, कल्पना! किन्तु तुरन्त ही, सुधीर का मानस उदास बन गया। उसे लगा कि अब वह कल्पना से कुछ भी नहीं कह सकता। कल्पना के मन पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। इतना समझ सुधीर निश्चिय ही, अपने मन की व्यथा में खो गया। उसे यह स्पष्ट लगा कि वह मूर्ख है। वह स्वयं अपने-आप में असफल है। क्योंकि वह इस बात को देखता था कि जो कुछ व्यवहारिक नहीं है, समाज में निभता नहीं, उसी को वह करना चाहता है। कदाचित न तो उसने कभी अपने को योगी बनाने का प्रयत्न किया और न अखण्ड ब्रह्मचारी समझने का ही साहस किया। उसने सदा ही कल्पना का स्मरण किया। उसके सौन्दर्य की सराहना की। तो फिर क्यों नहीं वह कल्पना से विवाह कर लेता! सुधीर ने अपने-आपको खोजा और स्वयं से प्रश्न किया, तो क्या इसलिये वह अब कल्पना को स्वीकार नहीं करता कि वह विधवा है? एक बार दूसरे की पत्नी बन चुकी है? अब वह अछूत नहीं है? किन्तु सुधीर सदा ही, ऐसे प्रश्न पर अपने-आप लज्जित बन जाता। उसका स्वांग टूट जाता। वह विचारों की इस दुःसहता को कभी भी स्वीकार नहीं कर सकेगा। निःसन्देह, कल्पना उसकी दृष्टि में

एक ऐसी नारी थी, उसकी ऐसी प्यारी सखी थी, कि जो कभी क्षत् अथवा झूठी नहीं थी। वह उसके लिये सदा-सुहागिन और पवित्र निधी थी।

लेकिन सुधीर ने जगधर का पत्र पाया, तो उसके प्रभाव से उत्पन्न हुई व्यग्रता में ही, उसने एकाएक कहा, कल्पना भी वही चाहती है कि जो समाज चाहता है। उसको अपने शरीर का उपभोग करने का अधिकार है। वह यौवनमयी रूपसी है न! धनिक है। तब क्यों न वह इस रस का रसास्वादन करे! क्यों न पाये! जीवन को क्यों न भोगे!

उस अवस्था में ही, सुधीर के समक्ष अपने मानस का एक चोर प्रस्फुटित हुआ। उसने देखा कि वह भी धन और जीवन के सौन्दर्य का उपासक है। वह सरकार के कोष से वेतन रूप में एक बड़ी राशि प्रति मास प्राप्त करता है। इसीलिये तो उसका समाज में सम्मान है। लोग उसके विचारों का आदर करते हैं। वह अपने जीवन में कितना सफल है, इसकी भी सराहना की जाती है। वह क्यों नहीं उसका मोह त्याग देता। वह क्यों नहीं कल्पना के समक्ष ऐसा उदाहरण उपस्थित करता कि जो अभूतपूर्व हो और उसके लिये उपादेय हो। विचारों की इस ऊहापोह में ही, सुधीर का मानसिक धरातल अत्यन्त क्षीण बन गया। एक कल्पना की समस्या ने उसे परेशान कर दिया। मानो वह उसके लिये सबसे बड़ी चिन्ता थी। जिसके चिन्तन में उसने अपने मानस का तरल तत्व बहा दिया था। सबसे बड़ी अशोभनीय बात यह थी कि जिस कल्पना को सुधीर ने उपेक्षा और चिन्तन न करने की वस्तु समझ लिया, वह एक दिन उसके भावना भरे हृदय का उद्‌गार थी। कल्पना के द्वारा ही, सुधीर ने ममता, प्यार और अनुभूति की कोमल रेखाएँ अपने मानस में खिंची पाईं थीं। वह कल्पना का दिया हुआ ऋण भी नहीं भूल सकता था। उस बाला ने जिस समय सुधीर को अपना कहा, उस समय निःसन्देह, वह उस भरे पूरे गाँव में

प्रतारणा और अवहेलना का ही अधिकारी था। मानो वह गाँव की दृष्टि में इन्सान का बच्चा नहीं था। निर्धन शिवदास का पुत्र भला धनिक पिता की लड़की कल्पना के समक्ष कैसे बैठ सकता था! कदाचित यही कारण था कि वह बचपन में प्राप्त किये उन शुभ संस्कारों को किसी क्षण भी नहीं भूल सका। वही मानो उसके जीवन की सरस और मधुर धरोहर थी। कल्पना की उसी अमर भावना ने सुधीर का जीवन पखार दिया। जैसे युग-युग के लिये वरदान देकर उसे अमर कर दिया। कदाचित इसीलिये सुधीर का मन इस बात के लिये छटपटा रहा था कि कल्पना जैसी है, वैसी रहे। वह शुभ रहे। वह देवी रहे। राक्षसी या दानवी न बन जाये······

सुधीर के उस भू-लोक में, निःसन्देह, कल्पना के प्रति उन शुभ भावनाओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। यद्यपि समाज का जिस प्रकार का ढाँचा था, मनुष्य जिस तरह के आर्थिक नियन्त्रण में बंधा दिखायी दिया, उससे सुधीर की यह धारणा सहज ही बन गयी कि इस भू-लोक पर केवल कुछ किम्बदन्तियों से ही काम नहीं चल सकता। इन्सान आरम्भ ही से रंग-मंच पर अनेक प्रकार के खेल खेलता आया है। मानो मनुष्य ही उस रंग-शाला का प्रणेता है। मनुष्य का वैभव, उसकी कला और यश निरन्तर से किये गये संघर्षों का एक लेखा ही है। लेकिन फिर भी इन्सान दीन है और मोहताज है! मनुष्य का प्रमाद, उसे दम्भी और क्रूर बनाने में सफल हुआ है। लेकिन मनुष्य की वे काली करतूतें, उसके द्वारा की गयीं वे भ्रूण हत्यायें उसके काले इतिहास की द्योतक जरूर थीं, इन्सान को शर्मिन्दा भी करतीं; किन्तु सुधीर अपने उस जीवन में यही पाना अधिक पसन्द करता कि इस इन्सान का जो शोभनीय तत्व है, मानवीयता है, अमरत्व है, वह कितना गहन है, उसकी जड़ें, पाताल लोक में कहां तक पहुँच गयी हैं। विश्व के वे महापुरुष, वे गुरु, संसार के प्रणेता, पुरुष समाज के पुरखे जैसे सदा ही उसके चारों ओर खड़े रहते। वे

मुसकराते। उसका आवाहन करते। वे उसे अमर ज्योति से आलोकित नये और भव्य विश्व के दर्शन कराते। उस अवस्था में ही, सुधीर देखता और सुनता, मानव का करुण चीत्कार........ वह देखता, इन्सान की अधोगति ! सुन्दर और बुद्धजीवी इन्सान का पतन...... ...

आधे वर्ष से अधिक हो गया था कि सुधीर न तो कल्पना को अपना कोई पत्र दे सका, न उसका ही कोई सन्देश प्राप्त करने में समर्थ बना। एक प्रकार से सुधीर ने कल्पना को भुला दिया। उन दिनों उसके समक्ष काम भी अधिक था। सरकारी काम से उसे लम्बे पर्यटन भी करने पड़े। पुरातत्व-विभाग की ओर से संयोजित अनेक कान्फ्रेन्सों में भी जाना पड़ा। एक बार जब इसी प्रकार की एक कान्फ्रेन्स से छुट्टी पाकर वह अपने स्थान से लौट रहा था, तो अवसर की बात कि कल्पना के नगर के स्टेशन से निकला। उस समय एक बार उसके मन में आया भी कि वह कल्पना से मिल ले। परन्तु इसके लिये उसका मन एकाएक तैयार नहीं हुआ। जब गाड़ी उस स्टेशन पर पहुँची, तो सुधीर उस समय भी चकित या उत्साहित नहीं हुआ कि जब उसने देखा कि कल्पना स्टेशन पर आई है। वह महेन्द्र के साथ जब प्लेट फार्म पर दिखायी दी, तो उस समय, सुधीर की इच्छा हुई कि अपने फस्ट क्लास के डिब्बे से उतर कर नीचे जाये और कल्पना को आवाज दे। महेन्द्र उसी गाड़ी से कहीं जा रहा था। सुधीर के लिये यह अच्छा हुआ कि महेन्द्र उस डिब्बे में नहीं आया। अपने डिब्बे की खिड़की में ही, सुधीर ने देखा कि कल्पना और महेन्द्र प्लेट फार्म पर घूम रहे हैं। निःसन्देह, उन दोनों का जोड़ा खूब है। पूर्ण गठित है। दर्शकों के लिये आकर्षक है। उसी समय सुधीर ने यह भी लक्ष्य किया कि कल्पना का वस्त्र-विन्यास पहिले से अधिक सुधर गया है। उसके पैरों में ऊँची एड़ी के सैन्डिल हैं। बदन पर रेशमी साड़ी। सदा-सुहागिन की भांति दिखती वह कल्पना, सचमुच हो, सुधीर को भली लगी। दूर से

ही, सुधीर ने यह भी देखा कि कल्पना का स्वास्थ्य अच्छा है······गौरव-मयी है, कल्पना ! जिस समय गाड़ी छूटी, तो तभी महेन्द्र डिब्बे पर चढ़ गया। कल्पना ने उसे हाथ हिला कर विदा दी। किन्तु प्लेट फार्म पर खड़ी कल्पना की दृष्टि चलती हुई गाड़ी के प्रत्येक डिब्बे पर पड़ रही थी। तभी खिड़की के पास बैठे सुधीर पर उसकी निगाह पड़ी। अवसर की बात कि दोनों की चार आँखें भी हो गयीं। उसी समय मानों कल्पना की चेतना दूसरी दिशा में मुड़ गयी। वह मूर्त्तवत् खड़ी हुई उसी डिब्बे की ओर निहारती रह गयी। दूर से ही सुधीर ने देखा कि तब, कल्पना जैसे विस्फारित बन गयी। उसके पैरों नीचे की जमीन खिसक गयी········ वह अपने-आप में खो गयी······

उसी समय, डिब्बे में बैठे, बाहर की ओर देखते हुए, सुधीर ने अनायास कहा, यही कल्पना का पाप है···इसके मन में चोर ! देवी कल्पना अब डायन बन गयी है ! अपना शिकार स्वयं कर रही है !

सुधीर के कार्य-क्षेत्र में ऐसे सैकड़ों मजदूर-परिवार रहते थे कि जिनकी अवस्था का चित्र उसके सामने आता और जाता था। इन्सान की उस अवस्था को देखकर, प्रायः सुधीर के मन में चीत्कार उठ खड़ा होता। वह किसी मा की या पिता की पीड़ा को अनुभव कर, एकान्त रूप से चाहता कि वह इन्सान की उस कथा का हिस्सेदार बन जाये। वह शिव के समान समाज के उस विष का स्वयं पान कर ले। परन्तु इतनी क्षमता भी उसमें नहीं थी। मानो इतना महान देवत्व उसे प्राप्त नहीं हो रहा था। लेकिन जब वह पुरातत्व विभाग की कान्फ्रेन्स से लौटा, तो महेन्द्र और कल्पना का वह नया चित्र अपनी आँखों से ओझल नहीं कर सका। मानो उन दोनों ने बरबस ही, सुधीर के मानस में कोई गरम सलाख घोंप दी हो, वह अत्यन्त बेचैन हो उठा। उस अवस्था में ही, सुधीर ने बार-बार अपने से प्रश्न किया, ऐसा क्यों ? किसलिये ? क्या तुम्हारा कल्पना पर कोई अधिकार था ? लेकिन यह अधिकार की बात भले ही,

सुधीर ने कभी न स्वीकार की हो, किन्तु एक सम्बन्ध की अवस्था वह सदा ही मानता रहा । मानो वह सम्बन्ध ही, उसके जीवन का सोपान था। वह ऐसा अमृत था कि जिसे पीकर, उसका जीवन सुधर गया। उसे एक ऐसा अमर आशीष प्राप्त हो गया कि जो एक प्रकार से उसका अस्तित्व बन चुका था। वह ऐसा सम्मोहक मन्त्र था कि जिससे, वह सदा विभोर रहता। परन्तु वही मन्त्र, वही उपासना, जैसे कल्पना उससे छीनना चाहती थी। अब उसकी वह प्रफुल्ल मुसकान सुधीर के लिये नहीं थी। उसके मन का ममत्व भी उसके लिये नहीं था। सुधीर अब उसकी दृष्टि में गैर था······मानो अपरिचित······

छुट्टी का दिन सुधीर घर पर नहीं बिताता, वह कहीं दूर चला जाता। इसलिये, जब वह फिर कल्पना की समस्या में डूब गया, तो रविवार के दिन, अपने स्थान से दूर वहाँ चला गया कि जहाँ अनेक प्राचीन मन्दिर थे। सचाई यह थी कि वह उस पुजारी का भक्त था कि जहाँ एक बार कल्पना को ले गया। जब वह वहाँ पहुंचा, तो देखकर पुजारी महाराज मुसकराये और बोले—'बहुत दिनों में आये, सुधीर बाबू!'

सुधीर ने कहा—'वह कार्याधिक्य के कारण व्यस्त रहा।'

'और उस कल्पना का क्या हाल है? वह अपने घर है?'

'वह बोला—'उस कल्पना का प्रश्न अत्यन्त विवादास्पद है। आपने देखा वह युवक महेन्द्र, कल्पना आजकल उसी के प्रभाव में है।'

पुजारी बोला—'तो वे दोनों विवाह कर लेंगे क्या?'

सुधीर ने कहा—'सम्भव है।'

किन्तु पुजारी ने कहा—'मेरा विश्वास नहीं है।' वह बोले—इस प्रकार के तरुण और तरुणियाँ समाज के साथ अपने को भी धोखा देते हैं। वे भ्रष्टता फैलाते हैं, भाई!' वे मुसकराये—'स्त्री और पुरुष अपने शरीर की भूख शान्त करने के लिये क्या कुछ नहीं करते! जानवर भी यही करता है!'

सुधीर ने कहा--भगवन्, यह काया और मन का रोग अधिक भयानक है। नारकीय-पीड़ा के सदृश है !'

पुजारी ने कहा—'वत्स ! यह मनुष्य नितान्त क्रूर और दम्भी है ! इसने सदा ही स्त्री पर अपनी बर्बरता का प्रदर्शन किया। इसने नारी को ठगा है। नारी का वध किया है।'

उसी समय सुधीर के मन में बात आई और वह तुरन्त बोला—'तो आपका मत है कि नर ने नारी को ठगा है ! नारी को लूटा गया है !'

पुजारी ने तुरन्त ही, अपने स्वर पर जोर दिया—'निःसन्देह ! नारी तो याचक है। दीन है। पुरुष ने उसे भयातुर बनाया है। कलंकित किया है।'

किन्तु उस समय भी सुधीर के मन में दूसरी बात थी। वह पुजारी महाराज की उक्ति से सहमत नहीं था। मानो उसके मन का अहंकार नहीं झुक रहा था। निदान, उसने तुरन्त कहा—'महाराज, मैं अनुभव करता हूँ कि पुरुष इस नारी के द्वारा झुका है। उसका पुरुषत्व असमय ही लोप हुआ है। देखते हैं आप इन्सान कितना याचक और दया का पात्र बना हुआ है।'

इतनी बात सुनी, तो पुजारी ने सुधीर की ओर देखा। जैसे उसे समझने का प्रयत्न किया। उसी अवस्था में उन्होंने कहा—'भाई, तुम्हारे मन में क्षोभ है। लगता है कि कहीं कोई दुर्बल स्थान है कि जो दुःखता है। बताओ ऐसा क्यों है ? क्या कल्पना के लिये ? भला तुम्हारा उस पर अधिकार क्या है ! जब तुम उसे अपनी पत्नी नहीं बना सकते, तो वह क्यों न किसी और से अपना सम्बन्ध स्थापित करे ! जानते हो, यह भूल प्रबल है। उत्तप्त मानस की ज्वाला में औरत स्वयं जलती है, दूसरे को भी जला देती है। वह भयंकर आग क्या किसी को छोड़ती है !'

सुधीर बोला—'परन्तु मैं तो उस कल्पना को सात्विक देखना चाहता हूँ। मैं शुभ नारी के रूप में ही, उसका चिन्तन करता हूँ।'

पुजारी और सुधीर मन्दिर के प्रांगण में लगी फुलवारी में पहुंच गये थे। वहां अनेक सुगन्धित पुष्प खिल रहे थे। उन्हीं फूलों की ओर संकेत कर पुजारी ने कहा—'भाई, इन फूलों के समान नारी भी है। ये फूल सुहाग की शैया पर बिछते हैं, रोंदे जाते हैं और भगवान के चरणों में भी चढ़ाये जाते हैं। उपयोग की बात है। जिसको जिस प्रकार की आवश्यकता है, इनका अस्तित्व मान लेता है।'

'तो क्या उस कल्पना का यही उपयोग है ?'

सुना, तो पुजारी महाराज गम्भीर बन गये। वे बोले—'ऐसा मैं भी नहीं मानता।' किन्तु तुरन्त ही उन्होंने कहा—'लेकिन इस संसार में इसके अतिरिक्त और किसी प्रणाली का विकास नहीं हो पाता। इस अवस्था में ही दोनों ने सुख प्राप्त किया है। तुम नहीं अनुभव करते, यह आश्चर्य है! निःसन्देह तुम्हें विवाह कर लेना चाहिये। नारी का चिन्तन तुम्हें भी सताता है······वह कल्पना······ठीक तो है! वह कल्पना सुन्दर है। मोहक और यौवन से पुर है। धरती का सुख यही माना जाता है। कोई सुन्दर बाला समर्पण की बात कहे और वह न स्वीकार की जाये, तो वह अमृत का घट विष-कुण्ड बन जाता है, भाई! देखता हूँ, तुम्हारी शांति भी नष्ट हो गयी है। कल्पना का चिन्तन ही तुम्हारे लिये सर्वोपरि है। और यही मनुष्य के पतन की सूचना है। तुम्हारे मानस में भी चोर है। वह तुम्हें उद्वेलित बना रहा है······सच, जैसे कोई तुम्हारे जीवन की डोरी को कुतर रहा है······

उस वृद्ध सन्यासी से अपनी ऐसी व्याख्या सुन, सुधीर एकाएक बोल नहीं पाया। उसने उन फूलों की ओर से भी अपना ध्यान हटा दिया। वह जैसे अपने-आप में खो गया।

किन्तु पुजारी बोले—'तुम्हारा और कल्पना का संयोग अच्छा था, सुधीर बाबू! जब दुनिया में बसे हो, तो तुम्हें यह अनुभव भी प्राप्त करना

था। जीवन का यह सुहावना दृश्य भी देखना था। तनिक पाना था कि ममत्व क्या है······प्यार क्या······

सुधीर ने सूखी मुसकान के साथ कहा—'वह तो मैंने पाया है, पुजारी जी!'

पुजारी जी हँसे—'दूर से देखा है। अनुभव किया है।'

उस समय अन्धेरा आ गया था। सुधीर चल पड़ा। पुजारी बोले—'आया करो, बाबू! मन शान्त रखो। अपनी दिशा देखो।'

सुधीर ने नमस्कार किया और गाड़ी में बैठ गया। जब वह लम्बा रास्ता पार करके बंगले पर पहुंचा, तो उसने कमरे में प्रवेश करते ही पाया कि कोई आया है। सामान रखा है। किन्तु उसने तो देखा कि आने वाला और कोई नहीं, स्वयं कल्पना है। जो उसे देखकर, मुसकराई है और तनिक मीठे भाव में हँस पड़ी है······

२२

• • •

छुट्टियों के दिनों में, गाँव में रहते हुए, सुधीर एक ऐसा कार्य करने में समर्थ बन गया कि जिसके लिए, सहज ही, उससे आशा नहीं की जा सकती थी। यह तो सर्वत्र दीख पड़ा कि नगरों के समान, गाँवों में भी दुश्चरित्रता पराकाष्ठा को पहुँच चुकी है। किसी समय इसे सुधीर अशिक्षा की बात मानता था। परन्तु जब वह छुट्टी लेकर कई वर्ष बाद गाँव पहुँचा, तो उसे यह देखकर सुख मिला कि गाँव के लड़के पढ़ाई के कार्य में अग्रणी थे। कदाचित मा-बापों ने यह बोझ इसलिये भी उठाया कि लड़के पढ़-लिखकर नौकरी कर सकते थे। किन्तु जब सुधीर ने उन पढ़े हुए लड़कों का चरित्र देखा, तो वह अतिशय खिन्न बन गया। उसे लगा कि नगरों के समान उस गाँव में भी आग जल उठी है। वह धधक रही है। समूचे गाँव को भस्म कर देना चाहती है······गाँव के खेत-खलिहानों पर, पनघट पर, जब गाँव की जवान लड़कियां और बहुएँ पानी भरने या साग-पात लेने खेतों पर पहुंचतीं, तो उस समय वे पढ़े-लिखे जुल्फई बाबू भी वहाँ मक्खियों की तरह मँडराते। वे लड़के इतने निर्लज्ज दिखाई देते कि गाँव की परिपाटी को भी तोड़ने के लिये तैयार हो जाते······मानो वासना की आग में वे बरबस कूद पड़ने के लिये उद्यत हो गये दीखते थे······

गाँव में पूर्व की ओर कुछ झोंपड़ियाँ पड़ी थीं। उनमें ऐसे परिवार रहते थे कि जो मेहनत-मजदूरी करके अपना पोषण करते थे। वे परिवार जाति से निम्न थे। उच्च वर्ग के लोग उनसे खान-पान करना पसन्द नहीं कर सकते थे। उन्हीं परिवारों की एक लड़की कि जिसका अभी विवाह नहीं हुआ था, जब दुराचार का शिकार बनी, तो वह लज्जा और क्षोभ के उस दुःसह बोझ को लिये, मानो जीवन के खुले चौराहे पर भटक गयी। उस अवस्था में न उसे कोई पथ मिला, न साथी। निदान, वह गांव से भाग गयी। लेकिन जब कई मास बाद वह गाँव लौटी, तो उसकी गोद में बच्चा था। वह अभी सुकुमार था। मा कहना भी नहीं जानता था। किन्तु वह लड़की जो अपना दोष स्वयं स्वीकार कर चुकी थी और वह यह बताने बताने के लिये भी प्रस्तुत नहीं थी कि वह बच्चा उसे किससे प्राप्त हुआ, तो जब मा-बाप ने उसे घर में नहीं घुसने दिया, तो उसी रात में बच्चे को कुएँ की मेंड पर सुलाकर, स्वयं कुए में कूद पड़ी। जब प्रातः हुआ, तो गाँव ने देखा कि लड़की कुए में गिर कर मर चुकी थी। पानी पर उसकी लाश तैर रही थी। पुलिस आई और उसने पोस्टमार्टम के लिये लाश हस्तगत कर ली। किन्तु कुए की मेंड पर सोते बच्चे का क्या हो, यह एक समस्या थी। गाँव के समान लड़की के मा-बाप भी उसे लेने के लिये तैयार न थे। मानों वह उच्छिष्ट पदार्थ उनकी दृष्टि में भी हेय था······ वह समाज के कानून द्वारा शुद्ध प्राणी नहीं था······!

सुधीर उस समय गांव में था। जब पुलिस गाँव में आई, तो वह भी चौपाल पर बुलाया गया। थानेदार ने कहा—'देखा आपने, आज यह अवस्था है, हमारे समाज की! कितना बड़ा पतन हो गया है! इस अबोध बच्चे को कोई नहीं लेता!'

उस समय सुधीर के मन में अतिशय क्रोध था। चौपाल पर आदमियों की भीड़ थी। वह सोच रहा था कि इस गाँव की भीड़ में वह आदमी भी होगा कि जिसने एक तरुणी को अपघात करने के लिये

विवश किया। उसने अपनी इच्छा पूरी की और अलग खड़ा हो गया। लड़की की लाश वहीं जमीन पर पड़ी थी। उसे कपड़ा ओढ़ा दिया था।

थानेदार ने कहा—'मैं चाहूँ तो यहाँ के अनेक आदमियों को गिरफ्तार कर सकता हूँ। मैं उस आदमी का भी पता लगा सकता हूँ कि जिसने इस लड़की को मर जाने के लिये विवश किया। परन्तु मैं तो देखता हूँ कि आज सब ओर यही हो रहा है। पाप बढ़ रहा है। दुराचार का मुँह खुल रहा है। बताइये, सुधीर बाबू, अब इस अबोध बच्चे का क्या किया जाय? क्या इसे अनाथ आश्रम में भेजा जाय?'

सुधीर बोला—'मरी हुई लड़की के माँ-बाप ही इसे रखें।'

थानेदार ने कहा—'वे इन्कार करते हैं।'

सुधीर कठिन भाव में मुसकरा दिया—'तो बड़ी विवशता है यह!' और उसने देखा कि वह बच्चा जो लड़की थी, चौपाल की धरती पर पड़ी, ऊपर आकाश की ओर निहार रही थी। कितनी अनुपम और भली लगती थी वह! जैसे गंगा का जल! परन्तु उसी क्षण सुधीर का मन चीख पड़ा, हाय! इसे कोई छूना भी नहीं चाहता! देखना पसन्द नहीं करता! और यह तो जीवित अनुराग है। ममता है। प्यार है। यह अबोध शिशु भला क्या जाने कि मा ने इसको किस प्रकार उत्पन्न किया। यह देख, सुधीर का मन करुणा से भर उठा। उसे स्पष्ट लगा कि जैसे भगवान ही, उसकी आँखों के सामने धरती पर पड़ा है। गम्भीर बना है। वह धरती और आसमान की तुलना कर रहा है। कदाचित् इसी भावना से भर, अपने औचित्य को भूल, सुधीर अपने स्थान से उठा और उसने जमीन पर पड़ी, उस बालिका को हाथों में उठा लिया। उसी समय पास बैठे हुए ठाकुर विक्रम ने कहा—'सुधीर बाबू, यह बच्ची······ यह समाज की झूठन······'

सुधीर के पिता ने कहा—'भैया, तुमने क्यों उठा ली यह लड़की! कम्बख्त, इसकी मा ने जाने किससे······'

चौपाल में बैठे लोगों की भीड़ में से किसी ने चीत्कार किया—'यह तुम्हारे लिये शोभनीय नहीं है, सुधीर बाबू !'

एक बोला—'छोटी कौमें बड़ी गन्दगी फैलाती हैं। पाप का बीज बोती हैं !'

अवसर की बात कि उस समय गाँव की सभी जातियाँ वहाँ पर उपस्थित थीं। गाँव में वर्षों बाद एक अशोभनीय घटना हुई थी। इसलिये, सभी उसे देखने के लिये उत्सुक थे।

तभी एक वृद्ध बोला—'इस लड़की को जमींन पर डाल दो भैया !'

सुधीर ने उस व्यक्ति को निहारा। जैसे घूरा। वह तुरन्त बोला—'बाबा तुम भी ऐसा कहते हो ! तुम्हारी मंजिल तो पार हो चुकी है। भगवान की गोद तुम्हें निहार रही है।' उसने फिर समस्त समुदाय पर दृष्टि डाली और बोला—'इस लड़की को हाथ में उठाने का मेरा केवल एक ही अर्थ है कि यह मुझे अच्छा नहीं लगा कि भगवान की सम्पदा का आप सब तिरस्कार करें। इस बच्चे का स्थान तो गोद है ! पाप इसने नहीं किया, इसकी मा ने किया। और मेरा यह भी मत है कि वह पाप उसने भी नहीं किया। आप में से ही किसी एक व्यक्ति ने किया। छोटी जाति को बड़ी जातियाँ भ्रष्ट करती हैं। हमारी ठाकुर जाति के लड़के किसी हालत में भी अच्छे नहीं हैं। वे पाप और व्यभिचार का ही सृजन करते हैं। जिस लड़की ने आत्म-हत्या की, निश्चय ही, उसने अपनी भूल स्वीकार कर ली। वह ठगी गयी। किसी ठाकुर के लड़के ने बेचारी भ्रष्ट की। परन्तु वह इतनी लज्जित बनी, उसे अपने पर इतनी घृणा आई कि मर गयी ! पर आप''''' आपकी बहिन-बेटियाँ''''' मेरा मत है कि यह लाश इस बात का प्रमाण है कि लड़की अच्छे विचारों को प्राथमिकता देती थी। वह भगवान और भावना को मानती थी।'

ठाकुर विक्रम ने कहा—'लेकिन इस लड़की का क्या होगा, सुधीर बाबू !'

सुधीर ने कहा—'इस गाँव के परिवारों में इसको पलना चाहिये। इसे अनाथ न बनाइये।'

विक्रम ने कहा—'पर कौन····· ऐसा किस परिवार को करना योग्य होगा, भैया !'

सुधीर ने कहा—'मेरी कठिनाई है कि मैं अविवाहित हूँ। अकेला हूँ। मैं इस लड़की का आदर करता हूँ।'

एक व्यक्ति बोला—'इसे कोई नहीं पाल सकता !'

सुधीर ने कहा—'आप एक युवा लड़की का सतीत्व भंग कर सकते हैं, पर उसके गर्भ की रक्षा नहीं कर सकते। आप अपना पाप छिपाते हैं। लेकिन यह बच्ची तो बताती है कि दोषी कौन है।'

शिवदास ने कहा—'भैया, इस लड़की को जमीन में छोड़ दो।'

सुधीर बोला—'पिता जी, मैंने यह लड़की उठा ली है। यदि कोई इसके पालन का भार नहीं लेगा, तो मैं लूंगा। मैं इसे पालूंगा !'

शिवदास ने जैसे विस्फारित बनकर कहा—'तुम बेटा !

विक्रम ने कहा—'इस दुनिया का काम केवल भावना से नहीं चला करता, सुधीर बाबू ! आप यह बोझ न लें।'

किन्तु सुधीर ने थानेदार से कहा—'यह लड़की आप मुझे दे दें। मैं इसकी व्यवस्था करूँगा।'

थानेदार ने कहा—'आप सचमुच महान हैं।'

शिवदास ने कहा—'सुधीर, यह लड़की हमारे नाश का कारण बन सकती है।'

एक व्यक्ति ने कहा—'यह जाति का प्रश्न कहाँ रहेगा, सुधीर बाबू ! यह लड़की कल बड़ी भी होगी। तब इसका विवाह······'

सुधीर मुसकराया—'बाबा, आज युग बदल गया है। अब तुम्हारा समय नहीं रहा। भला अब जाति को कौन मानता है। देखते हो, पैसा ही सर्वोपरि बना है।'

बाबा ने कहा—'लेकिन यह गाँव है। यहाँ हुक्का-पानी, जाति-बिरादरी······'

सुधीर हँस दिया। वह तुरन्त ही गम्भीर बनकर बोला—'तो और कोई है इस लड़की को लेने वाला ?'

किसी ने दूर से आवाज दी—'कोई नहीं !'

सुधीर उठ खड़ा हुआ। वह चल दिया। शिवदास चिल्लाया—'अरे मेरा बुढ़ापा······'

सुधीर ने रुक कर कहा—'पिता जी, मा के समान, किसी दिन आप को भी फूंक आऊँगा। विश्वास रखिये, अब आपका बुढ़ापा देर तक नहीं रहेगा।'

सुधीर चौपाल से चला गया। थानेदार भी उठ गया। लाश तांगे में रखवाकर वह साथ ले गया। किन्तु गाँव की चौपाल पर जो व्यक्ति एकत्र थे, उन्हीं में से एक ने शिवदास को सम्बोधित किया—'अब तुम इस साझीदारी के हुक्के से सम्बन्ध नहीं रख सकते, शिवदास !'

विक्रम ने कहा—'मैं आज तक भी तुम्हारे लड़के को नहीं समझ पाया। उसकी सभी बातें निराली हैं। मैं तो अभी उसकी इसी बात पर अटका था कि वह विवाह क्यों नहीं करता। मैं उसकी साधुता पर भी भरोसा नहीं कर सकता। वह हजार कहे, लेकिन कोई भी उसे योगी नहीं मान सकता।'

एक अन्य प्रौढ़ व्यक्ति ने कहा—'भैया, बड़ी तनख्वाह पाता है। परदेश में रहता है। ब्याह करके तो वह खूँटे से बंधेगा। पर ऐसे तो एक नहीं अनेकों से······' और वह खिलखिला कर दाँत निपोरता हुआ, विक्रम की ओर देखने लगा।

इतनी बात सुनकर, विक्रम बोलने वाला था कि एक और दूसरा बोला—'सुना नहीं, शिवदास का लड़का साधु-सन्यासियों के पास अधिक जाता है। ठीक तो है, किसी ने कहा है, मूँड मुँडाये तीन गुण, सिर की मिट जाये

खाज। खाने को लड्डू मिलें, लोग कहें महाराज।' और वह हो-हो करके जोर से हँसता हुआ बोला—'सुधीर भी सन्यासी बनना चाहता है। पर मैं कहता हूँ वह छुपा रुस्तम है!'

तभी किसी ने कहा—'ऐसा न होता, तो इतनी जल्दी ऐसी तरक्की कैसे कर पाता! जरूर, इसने आफीसरों को पटाया होगा। उन्हें तरह-तरह से खुश किया होगा……'

बीच में ही एक बोला—'अजी, आफीसरों का खुश करना क्या, शराब, और……बस, अपनी पौ बारह……समझे!' और तब वह जोर से अट्टहास कर बैठा।

किन्तु शिवदास उस समय सिर झुकाये बैठा था। वह जैसे कड़ुवे घूंट पी रहा था।

तभी ठाकुर विक्रम ने उसे टंकोरा—'अब सुधीर तुमसे नहीं समझाया जा सकता, शिवदास! वह पैसा कमाता है। उसकी कमाई ने तुम्हारे घर का नक्शा बदल दिया है। पर बताता हूँ, सुधीर ऐसा ही रहा, तो तुम्हारे इन सफेद बालों में भी कालिख पोत देगा। जरूर, वह कोई बड़ा खेल खेल रहा है। वह गाँव के अखाड़े को छोड़ शहरों के अखाड़ों में कूद पड़ा है!'

शिवदास ने कहा—'मैं तो अब मौत मांगता हूँ, भैया!'

विक्रम बोला—'जरूर, तुम जल्दी मर जाओगे।' उसने कहा—'हमने सोचा था, गाँव में एक तुम्हीं हो कि जिसे अच्छा लड़का मिला। भाग्यवान हो। पर आज समझा कि नहीं, तुम बदनसीब हो। अब तुम न ठाकुरों का हुक्का पी सकते हो, न इनमें बैठ सकते हो।' यह कहते हुए विक्रम खड़ा हो गया और सभी की ओर देखकर बोला—'क्यों भाइयो, मैंने कुछ गलत तो नहीं कहा?'

एक बँधी आवाज़ आई—'नहीं, ठीक कहा। शिवदास का लड़का बड़ा आदमी होगा, तो अपने लिये! यह गाँव है। इसकी भी मान्यता है। यहाँ उसका मत नहीं चल सकता।'

विक्रम चल दिया। रास्ते में उसने अपनी मूंछों पर बल दिया और अपने-आप बोला, सुधीर बाबू की अब अक्ल ठिकाने आ जायेगी। उस दिन गया था लड़की की बात लेकर, तो इजरत, आदर्श की बात बघारने लगे। कहने लगे, मैं विवाह नहीं करूंगा। विधवा क्या, मैं कुमारी से भी विवाह नहीं करूंगा! और मैं कहता हूँ, आज शिकार स्वयं ही मेरे हाथों में आ गया। गाँव अपने-आप उसके खिलाफ हो गया। देखता हूँ कि अब उसका आदर्श और शास्वत-धर्म फलेगा, या सिर धुनेगा!'

किन्तु उसी समय जब शि दास घर पहुंचा, तो देखा, घर में सन्नाटा था। सुधीर की मामी रसोई घर में थी। अतएव शिवदास ऊपर सुधीर के पास पहुंचा। वहाँ जाकर वह देखता है कि सुधीर उस नन्ही बालिका को चम्मच से दूध पिला रहा है और पुचकार रहा है। यह देख, शिवदास ने कहा—'यह तुम्हारा काम नहीं है, बेटा! गाँव भर मुँह पर थूक रहा है। गाँव हमारा बहिष्कार कर रहा है। वह विक्रम······'

सुनते ही, झल्लाकर सुधीर ने कहा—'पिता जी, मैं इसकी चिन्ता नहीं करता। मैं इस लड़की को रखूंगा। पाप और पुण्य क्या है, मैं उसकी अब नये सिरे से व्याख्या नहीं कर सकूंगा।'

शिवदास ने बात सुनी और वह सिर झुकाये नीचे उतर गया।

२३

• • •

लेकिन सुधीर अपने पिता की बात को सुनकर उपेक्षा भाव से टाल सकता था, किन्तु समूचा गाँव जब किसी बात का विरोध करे, तो उस समस्या को सुलझाना सरल नहीं था। सदा की भांति जब एक नया प्रातः आया, तो सर्व प्रथम सुधीर के कानों में जो बात पड़ी, वह यह थी कि पिछली रात में हीं, गाँव की चौपाल पर लोगों ने इस बात का निर्णय किया कि जिस लड़की ने आत्म हत्या की और बच्चा छोड़ा, वह निश्चय ही सुधीर से सम्बन्धित रहा होगा। सुधीर से ही वह बच्चा पैदा हुआ होगा! किन्तु शिवदास के पुत्र ने लोक-लज्जा के भय से उस लड़की को स्वीकार नहीं किया। ममतावश उसका बच्चा अपने पास रख लिया। गाँव के निश्चय पर पहुंचने का एक परिणाम यह हुआ कि शिवदास का हुक्का-पानी बन्द हो गया। बाप-बेटे को जाति से बहिष्कृत कर दिया गया।

रात में सुधीर जल्दी सोता और प्रातः भी, पांच बजे तक घर से बाहर निकल जाता। उस दिन जब प्रातःकाल का वायु सेवन करके घर पहुंचा, तो उसके कमरे में ही, शिवदास ने खिन्न और करुण बनकर. रात में किया गया गाँव निश्चय सुना दिया। शिवदास तो अपनी बात कह कर लौट गया, परन्तु सुधीर उस बात के अन्तराल में डूबा हुआ, मानो एकाएक ही, असहाय और पीड़ित बन गया। गाँव का समाज कितना हीन और

कायर बन गया है, इतना भी उसके मन में आया। अपनी बात कहते हुए, प्रसंगवश शिवदास ने यह भी सुनाया कि रात कल्पना का पिता विक्रम ही, गाँव के लोगों का आवाहन कर रहा था। बात उसी ने रखी थी। लेकिन सुधीर के लिये आश्चर्य की बात यह थी कि वही विक्रम एक दिन अपनी विधवा लड़की के लिये उसके पास आया था। वह सुधीर से ही कल्पना का सम्बन्ध करना पसन्द करता था।

फलस्वरूप, परिस्थिति के उस भवँरजाल में पड़ा हुआ सुधीर एकाएक विह्वल बन गया। यद्यपि इस बीच में उसके मन में कई बार आया कि जब लोग इतना कहते हैं, उसकी आवश्यकता भी है, कल्पना भी यही चाहती है, तो वह उससे विवाह कर लेगा। इस जीवन को उससे मिल कर काट देगा। परन्तु जब उसी के पिता ने लड़की के लिये प्रतिशोध लेने के लिये जिस प्रकार का कठोर रूप प्रदर्शित किया, तो बरबस ही, सुधीर को लगा कि नहीं, विवाह और जीवन की वासना-पूर्ति का प्रश्न पीछे है, पहिले तो, इस इन्सान के लिये इसी की आवश्यकता है कि जीने का आधार पाये ········अपने सम्मान की रक्षा कर सके। और उसका वही सम्मान गाँव के लोग छीनने पर तुले थे। वे इन्सान के उसी काले और घिनौने जीवन की ओर देखते थे कि जो इन्सान ने कई सदी पूर्व पीछे छोड़ दिया था। वह भावना और दूषित मानव मानो मरा नहीं, वह प्रेत रूप बनकर किलकिला रहा था····· रौद्र बनकर मानव को डरा रहा था। सुधीर को प्रत्यक्ष लगा कि वर्तमान में जन्म लिया और पाला-पोसा इन्सान आज भी अपने पूर्वजों की लीक पर चल रहा है······यह सुसज्जित इन्सान ·· यह शिक्षित इन्सान निःसन्देह अपने पुरखों का, सहस्रों वर्ष पूर्व उत्पन्न हुए इन्सान का प्रतिनिधित्व कर रहा है··· इन्सान ही इन्सान का काल बना है ···महाकाल······

यों, सुधीर के मन की अवस्था सचमुच ही, नितान्त दीन और कातर बन गयी। उस स्थिति में ही, वह रो पड़ा। उसके मन की पीड़ा आग

में तपे हुए लोहे की तरह पिघल कर आँखों के रास्ते निकल आई। वे गरम आँसू बहुत दिन में सुधीर के मानस से निकले थे। उस स्थिति में ही, वह कमरे में लगी एक तस्वीर के समक्ष खड़ा हो गया। वह शक्ति दुर्गा का चित्र था। उस चित्र को एकटक देखते हुए, आँखों से रोकर, विह्वल बने हुए बच्चे के समान, सुधीर ने एकाएक कहा—मा! और उसने अपना सिर झुका दिया। किन्तु उसी समय सुधीर ने फिर अपना मुँह उठाया और चित्र की ओर ऐसे देखने लगा कि मानो वह उस मा से ही, अपने रोग का उपचार माँगता था। वह बच्चे के समान मा के आँचल में छिप जाने के लिये भी चचल था। किन्तु वह मा तो मौन थी। वह मानों तब भी, सुधीर की ओर देखकर मुसकरा रही थी। उसे घूर रही थी। वह माँ जैसे अपने चिर-लक्ष्य की ओर सुधीर का ध्यान अकर्षित कर रही थी।

तभी सुधीर कहा—मा, दुर्गे! तुम्हीं जगत जननी हो·········तुम्हीं शक्ति······तुम्हीं अनुभूति······तुम्हीं ओज! अब मैं क्या करू, मा! मैं अकिंचन, मैं निरीह······

उसी समय पड़ौस का एक युवक सीढ़ियों से खट-खट चढ़ता हुआ ऊपर आया और सुधीर को दुर्गा के चित्र के सामने खड़ा देख, अपने स्वर पर जोर देकर बोला—'इस कागज पर चित्रित हुए चित्र में कुछ नहीं रखा है, सुधीर भैया! यह तो मन की भावना का प्रलाप है······सहस्रों वर्षों से इस इन्सान को इसके पुरखों ने इसी प्रकार का रस पान कराया है। आदमी धार्मिक और मूर्ति पूजक बनाया है। पर मैं कहता हूँ, आदमी ठगा गया है। आज तक क्या किसी के जीवन में धर्म साकार बनकर उतरा है······ न, भैया! यह अफीम का नशा है! इससे तो आदमी बेकार बनता है। यह पैसे वालों ने चलाया है।' यह कहते हुए उस युवक ने सुधीर की ओर देखा। तदन्तर ही वह बोला—'पर मैं तो इसलिये दौड़ा आया हूँ कि रात में गाँव वालों ने तुम्हारे साथ जो साजिश

की है, क्या तुम्हें उसका पता चल गया ! देखा तुमने, मनुष्य कितना निर्लज्ज और पातकी बन गया ·····!'

सुधीर ने बात सुन ली, उसने रूमाल से आँखें पोंछ ली। तभी उसने युवक को लक्ष्य करके कहा– 'भैया हरिदास, यही सब तो होता है, इस दुनिया में ! सभी के समक्ष बाधायें आती हैं। अच्छे काम के लिये परेशानियां भोगनी पड़ती हैं।'

हरिदास ने कहा—'पर सुधीर भैया, यह तो तुम्हारे साथ घोर अन्याय है। तुम्हारा पक्ष प्रबल है। चाहो तो एक-एक को जेल भिजवा सकते हो। वह विक्रम······वह नरपत चौधरी······'

अरे, नहीं, नहीं, रे, हरिदास !' सुधीर ने अत्यन्त करुण बनकर कहा– 'विक्रम और नरपत भी मेरे अपने हैं। बुजुर्ग हैं।'

हरिदास ने कहा—'वे तुम्हारी प्रतिष्ठा से ईर्षा करने लगे हैं। तुम्हारी तरक्की उनकी आँखों में गड़ गयी है। परन्तु मैं कहे देता हूँ गाँव के पढ़े-लिखे युवक तुम्हारे साथ हैं।'

आतुर स्वर में सुधीर ने कहा—'धन्यवाद, भैया ! विक्रम और नरपत चौधरी जी मेरे विरुद्ध हुए, तो यह भी मेरा ही कोई दोष होगा। अन्यथा, मैं जानता हूँ कि वे भले हैं।'

हरिदास ने कमरे के फर्श पर पैर पटक कर कहा—'तुम कैसी बात करते हो, जी ! आश्चर्य है कि तुम किस प्रकार सरकारी विभाग का इतना बड़ा पद पा गये। आज गाँव में तुम्हारे ऊपर इतना बड़ा लांछन लगाया जा रहा है, और तुम······हे राम !'

सुधीर ने कड़ुवे भाव से मुसकरा दिया। वह हरिदास की ओर देखने लगा।

हरिदास बोला—'मैं कहता हूँ तुम्हारी चुप्पी इस बात का संकेत होगी कि जरूर, गाँव द्वारा आरोप लगाने पर भी जब तुम अपने पक्ष में कुछ भी नहीं कह सके, कोई विरोध प्रदर्शित नहीं कर पाये, तो सहज ही,

यह भरोसा कर लिया जायेगा कि बात सत्य थी। महाशय, यह बात यहीं समाप्त हो, मैं ऐसा भी नहीं मानता। धनिक विक्रम बड़ा चालाक है। वह क्रूर है। जिस बाप की लड़की ने आत्म हत्या की है, वह और उसका लड़का कभी अच्छे विचारों के व्यक्ति नहीं रहे। चोरी करना भी उनका व्यवसाय है। बाप-बेटे ने दो-चार खून भी किये होंगे। क्या पता कि··· हाँ ·········'

सुधीर फिर तीखे भाव से हँस दिया। वह बोला—'मृत लड़की का बाप मुझे मार सकेगा, यही न! उसका बेटा कभी गंडासा लेकर मेरे घर आ पहुँचेगा!'

हरिदास ने सहमे भाव से कहा—'वे लोग नितान्त जंगली और और राक्षस प्रकृति के व्यक्ति हैं, भैया! तुम्हारा उनसे बचना ही काम है। तुम्हारे विरुद्ध गाँव में चप्पे-चप्पे पर आग के अँगारे फैला दिये गये हैं। कुछ लोग तुम्हारा पतन देखना चाहते हैं। यह तुम्हारा उत्सर्ग लोगों के लिये अप्रत्याशित है। तुम्हारी प्रतिष्ठा, तुम्हारा पैसा, सभी की आँखों में गड़ रहा है। तुम्हारा विवाह न करना भी, लोगों की दृष्टि में ढोंग बना है। इसलिये मेरी राय है कि तुम गाँव से चले जाओ। तुम्हारी जो शेष छुट्टियाँ हैं, उन्हें कहीं अन्यत्र बिताओ।'

उस समय सुधीर अकल्पित रूप से अधिक गम्भीर बन गया। वह कुर्सी पर बैठा था। हरिदास उसके सामने बैठा था। तभी सुधीर की दृष्टि बाहर की ओर थी। वह मकान के बाहर खड़े पेड़ के पत्तों को देख रहा था। जब हरिदास अपनी बात कहकर मौन रह गया, तो सुधीर ने उसकी ओर देखा और वह अत्यन्त भारी हुए अपने स्वर को उद्घोषित करता हुआ बोला—'भैया, हरिदास! तुमने ठीक कहा। सचमुच, मुझ पर उपकार किया।' यह कहते हुए उसने स्वर पर झटका खाया और बोला—'किन्तु मैं कायर भी नहीं बनूँगा। यदि मृत लड़की का पिता या भाई मेरा वध करना चाहते हैं, मुझे अपराधी पाते हैं, तो क्या, मैं उन्हें

अपना खून करने से रोक सकूंगा। न, भैया ! मैं उनकी मनचीती करने दूंगा। मैं एक दुःखी बाप के मन का रोष तो पी सकूँगा। मैं यह भी बताने में सफल बनूंगा कि मनुष्य जो भूल आदि युग से करता आया है, वह आज भी करने में समर्थ है। मनुष्य आज भी क्रूर है······जड़ है······पत्थर है······'

हरिदास ने कुर्सी के हत्थे पर हाथ मारकर कहा—'तुम दुनियादार हो, सुधीर बाबू ! जंगल में रहने वाले साधू नहीं······निस्पृह नहीं······ केवल देवता नहीं······' वह बोला—'तुम्हें तो पाप को पाप ही कहना पड़ेगा। अपना मान और अपमान भी तुम्हें समझना पड़ेगा, मेरे बड़े भैया !'

लेकिन तब भी, सुधीर ने एक अकिंचन व्यक्ति के समान बनकर कहा—'मैं कुछ भी नहीं कर सकूंगा।'

'पुलिस में रिपोर्ट भी नहीं लिखाओगे ?'

'नहीं, कदापि नहीं !'

'जिन लोगों ने रात आधी रात तक तुम्हारे विरुद्ध बगावत की, उन्हें भी अपनी सफाई नहीं दोगे ?'

'नहीं भैया ! ऐसी बातों में सफाई की कोई आवश्यकता नहीं हुआ करती। सचाई स्वतः ही सामने आ जाती है।'

'ओह, तो समझा मैं, तुम अपने प्रति भी क्रूर हो ! नितान्त बर्बर ! सच, जैसे पत्थर !'

सुना, तो सुधीर ठहाका मारकर हँस पड़ा ! जिसे देख-सुनकर हरिदास चौंक गया। उसे लगा कि मानो सुधीर के मन पर किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं हुई। यह तटस्थ है। रात गाँव भर ने जिस प्रकार इसका अपमान करने के हेतु झूठी बातें प्रचारित कीं, तो यह सुधीर उन्हें भी महत्व नहीं देता। अपने सामने आये संकट को संकट नहीं मानता। उस बड़ी बात को गम्भीर रूप नहीं देना चाहता। लेकिन

तब भी, हरिदास ने कहा—'बड़े भैया, तुम अपना अपमान अनुभव करो या नहीं, पर ताऊ जी के (सुधीर के पिता) बुढ़ापे का तो ध्यान करो। निश्चय हो, उनके मन की अवस्था अच्छी नहीं होगी। आज वे गाँव के आदमियों में बैठकर हुक्का नहीं पी सकते। चार आदमियों में बात नहीं कर सकते। इस तरह वे अधिक दिन······हाँ, सुधीर बाबू !'

सुधीर ने किंचित चंचल बनकर कहा—'हरिदास, मैं इस विषय में कुछ नहीं कर सकता। पिता जी की अपनी दुर्बलता है। वैसे यह बात महत्वहीन है। मैं कहता हूँ, हुक्का पीना क्या अच्छा है। यदि पीया ही जाय, तो अपने घर पर पीया जा सकता है। कोई अपने पास आये तो बोलो, अन्यथा, क्या अकेले बैठकर समय नहीं बिताया जा सकता !'

हरिदास ने कहा—'कल तक तुम्हारे पिता की गाँव भर में प्रतिष्ठा थी। तुम्हारे घर पर गाँव के और बाहर के लोग आते थे। वे हुक्का पीते थे। पर अब कोई नहीं आयेगा। आने वाले को रोक दिया जायेगा। निःसन्देह यह अवस्था अच्छी नहीं है, सुधीर बाबू !'

सुधीर बाबू ने उदास भाव में कहा—'तो मैं क्या कर सकता हूं। विवश हूँ !'

उसी समय हरिदास उठा और विदा लेकर चला गया। सुधीर फिर कमरे में अकेला रह गया। वह कुर्सी से उठकर घूमने लगा। उसके दोनों हाथ बंधे थे। वे पीछे की ओर थे। सुधीर के माथे में बल पड़े हुए थे। उसी समय नीचे घर के आँगन में शिवदास का स्वर सुनाई दिया। सुधीर तब नीचे चल दिया। जब वह शिवदास के पास पहुँचा, तो उसने नितान्त विनीत बनकर कहा—पिताजी, मैं आपके लिये अपमान और कष्ट का विषय बन रहा हूँ। ऐसे क्या मैं आपका भला पुत्र बन सकता हूं।'

शिवदास ने एकाएक ही, अप्रत्याशित रूप से सुधीर की बात सुनी तो उसके मनका रोष बरबस ही पिघल गला। उसने अत्यन्त ममता भरी

दृष्टि से पुत्र की ओर देखा। उसी भाव में अपना कांपता हुआ हाथ उसके कन्धे पर रख दिया। उससे कुछ कहा नहीं गया।

किन्तु उसी क्षण, सुधीर ने भाभी की ओर देख कर कहा—'भाभी, तुम भी मुझे दुष्ट मानती हो, क्या! सच, मैं बड़ा पातकी हूँ। ऐसी अवस्था में तो मैं जल्दी ही, तुम दोनों की दृष्टि से दूर हो जाना चाहता हूँ। तुम लोगों को कष्ट देकर मैं क्या जीवित रह सकता हूँ!'

शिवदास कांप रहा था। वह दुर्बल था। वृद्ध था। परन्तु तब भी, सुधीर के कन्धे को जोर से पकड़ कर, अपने स्वर पर जोर देता हुआ बोला—'बेटा, मैं तुझे जानता हूँ। मैं तेरा पिता हूँ। गाँव को बकने दो··· उसे अपनी मनचाही भी करने दो। भगवान देखता है। अवसर पाकर वह भी कहता है। मुझे उसी पर भरोसा है। अब मैंने यही समझा है, सुधीर भैया!'

२४

• • •

उस दिन सुधीर ने स्पष्ट अनुभव किया कि मनुष्य के पतन का कारण एक समाज का बन्धन भी है। और वह समाज है क्या? केवल कुछ स्वार्थियों का समूह। इसलिये, उस अवस्था में सुधीर को यह देखने का भी अवसर मिला कि सम्पन्न व्यक्ति ही समाज का सिरमौर बन सकता है। उसकी बात ही सर्वोपरि हो सकती है। काल-कूट के समान ऐसा व्यक्ति अपने मानस में भरा विष सभी ओर फैलाता है। अतएव वह व्यक्ति जघन्य और क्रूर है! दिन में जब हरिदास स्थिति का स्पष्ट उल्लेख कर गया, तो बाद में सुधीर के मन में आया कि विक्रम के पास जाये। उससे बातें करे। परन्तु इतना करने के लिये वह एक क्षण भी नहीं सोच सका। सहमत नहीं हुआ। फलस्वरूप, दिन भर सुधीर अपने कमरे में पड़ा रहा। उस दिन उसका पढ़ने में भी मन नहीं लगा। एक बार उसके मन में यह भी आया कि वह अपनी छुट्टियाँ पूर्ण होने से पूर्व ही कार्य-क्षेत्र में जा पहुँचे। किन्तु ऐसा करना भी उसे उचित नहीं जान पड़ा। क्योंकि सुधीर के मन में यह बात पत्थर की तरह बैठ गयी कि गाँव वाले जब उसके विरुद्ध इतनी बात कर सकते हैं, तो उनके मन में भरा हुआ ज़हर अभी शेष है। वह भी निकलना चाहिये। सुधीर को स्वयं ही उस प्रतिशोध का सामना करना चाहिये। अतएव उसने गाँव से चले जाने का विचार

भी छोड़ दिया। अपितु उसने यहाँ तक निश्चय किया कि यदि आवश्यकता हुई तो वह और छुट्टी ले लेगा। इस कार्य के हेतु वह नौकरी भी छोड़ सकेगा।

दिन गया, रात आ गयी, घोर काली-काली। वह काला आवरण फैलते ही, गाँव भर के दरवाजे बन्द हो गये। गाँव का गलिहारा जन-शून्य हो गया। वह समय आधी रात से ऊपर का हो चुका था। कहीं भी किसी मनुष्य का शोर सुनायी नहीं देता था। किन्तु गाँव के बाहर, दूर जंगल में किसान अपने खेतो में पानी देने के लिए कुंए चला रहे थे। जब वे चरस कुए में डालते, तो गाते थे। उनका वह आलाप गाँव में अपने कमरे में पड़े सुधीर के कानों में भी आ रहा था। कभी-कभी किसी सियार का बोल भी सुनाई देता था। और सुधीर जाग रहा था। कमरे का लैम्प बुझा दिया गया था। जब बहुत देर तक सुधीर कमरे में घूमता रहा, तो अन्त में वह बिस्तर पर पड़ गया। किन्तु उसकी आँखा में नींद नहीं थी। वह बरबस करवट बदल रहा था। उसी समय, एकाएक सुधीर चौक गया। अपने-आप में सचेत बन गया। उसने तुरन्त ही, सिरहाने रखा पिस्तौल उठा लिया। उसे दिखाई दिया कि कोई उसके कमरे में प्रविष्ट हुआ है। वह बाहर की दीवार पर से चढ़ कर आया है। जब वह व्यक्ति कमरे में आया, तो तभी सुधीर के मन में आया कि ललकारे। शोर कर दे। किन्तु ऐसा उसने नहीं किया। वह तुरन्त अपनी चारपाई से खड़ा हो गया। उस समय एक हाथ में उसके पिस्तौल था और दूसरे में टार्च। लेकिन जब उस आये हुए व्यक्ति ने किसी चीज का प्रहार सुधीर के बिस्तर पर किया, तो तभी सुधीर ने टार्च का प्रकाश कर दिया। उसने देखा कि जिस मृत लड़की का बच्चा उसने प्राप्त किया, उसी का भाई उसके समक्ष खड़ा था। टार्च का प्रकाश होते ही वह भागा। परन्तु तभी सुधीर ने अपने स्वर पर जोर देकर ललकारा — — 'खड़ा रह, गोली मार दूँगा!' निदान वह व्यक्ति दरवाजे से बाहर होने से पूर्व ही, कमरे में रुक

गया। उसने दीन भाव से सुधीर की ओर देखा। तभी सुधीर ने लैम्प जलाया और उस काली आबनूस सरीखी विशाल देह धारी युवक को लक्ष्य करके बोला—'तो तुम आये मुझे मारने!' और तभी उसने बिस्तरे पर से वह नंगा छुरा उठा लिया कि जो आने वाले ने सुधीर को लक्ष्य कर मारा था। सुधीर ने उसी छुरे को पकड़ लिया और लैम्प के प्रकाश में उसे देखता हुआ बोला—'देखता हूँ, यह भी तुम्हारा नहीं। किसी का दिया है। बोलो, किसका है?'

वह युवक गिड़गिड़ाया—'बाबू, मुझे माफ कर दो।'

सुधीर ने उसे घूरा और बोला—'हां, हां, तुम माफ तो कर दिये जाओगे! पर बोलो, यह छुरा किसने दिया? क्या विक्रम ने? या किसी और ने?' यह कहते हुए सुधीर ने उसे कुर्सी पर बैठने का आदेश दिया। तभी उसने यह भी देखा कि वह युवक निश्चय ही खूनी है। चोर भी है। उसका मुँह उस समय पसीनों से भर गया था। उससे मन का भय भी स्पष्ट हो गया था। उसी अवस्था में चारपाई पर बैठ कर सुधीर ने कहा—'देखो, तुम मुझे सच-सच बता दोगे, तो मैं तुम्हें छोड़ भी सकूँगा। नहीं तो तुम पुलिस में जाओगे। सजा पाओगे। हाँ, बोलो, तुम्हें यह कार्य करने के लिये किसने उत्साहित किया?'

युवक ने कहा—'बाबू, मेरी बुद्धि पर पर्दा पड़ गया। मैं कहने में आ गया।'

सुधीर ने कहा—'यह तो मैं जानता हूँ। तुम्हारा नाम—?'

वह बोला—'बाबू मुझे जगिया कहते हैं।'

'तो जगिया, उस आदमी का नाम बताओ। और यह भी कहो कि उसने यह कार्य सम्पादित करने के लिये तुम्हें क्या पुरस्कार दिया?'

जगिया बोला—'मुझे पचास रुपये देने कहे थे, बाबू!'

'किसने? क्या विक्रम ने?'

'हाँ, बाबू ! विक्रम चौधरी ने ही मुझसे कहा था। दस रुपये पेशगी दिये थे। बाकी ·····'

सुधीर तीखे भाव से मुसकरा दिया। वह खड़ा होकर बोला—'तो जगिया, तुझे इस बात का भरोसा हो गया कि मैंने ही तेरी बहिन को भ्रष्ट किया ·····मर जाने के लिये बाध्य किया ·····क्यों ?'

एकाएक ही जगिया ने सुधीर के पैर पकड़ लिये। वह कातर बन कर बोला—'न, बाबू ! मुझे भरोसा नहीं था। पर मुझे यकीन करने के लिये मजबूर किया गया। मेरे बाप ने भी मुझे फटकारा। इस काम के लिये उकसाया।'

सुधीर ने अपने पैर पीछे कर लिये थे और वह अत्यन्त गम्भीर बना हुआ, तटस्थ खड़ा रहा। उसी समय उसने बिस्तर पर पड़ा छुरा फिर उठा लिया और उसे जगिया के सामने फेंक कर फिर बोला—'हाँ, जगिया, मुझे भी दुःख है कि तू अपने कार्य में सफल नहीं हुआ। ले, उठा ले अपना छुरा। यह काफी तेज दीखता है। मेरे पेट में भोंक दे ! जब तुझे भरोसा है कि मैं ही तेरी बहिन का चोर हूं, तो मुझे खत्म कर दे।'

जगिया ने फिर आगे हाथ बढ़ाये और कस कर सुधीर के पैर पकड़ लिये। उसने अपना सिर भी उन्हीं पैरों पर पटक दिया। वह नितान्त विह्वल बन कर बोला—'मैं ऐसा भरोसा नहीं कर सकता, बाबू जी ! आप देवता हैं। राक्षसों के बीच में बसे हैं। मेरी बहिन तो,······हाँ, बाबू, वह तो दूसरे ठाकुर के लड़के ने मौत के घाट उतार दी। मैं आपका अपराधी हूं। सजा पाने जोग हूँ। मुझे थाने पहुँचा दीजिये।'

उसी गम्भीर भाव में सुधीर ने कहा—'रे, जगिया ! मैं तुझे पुलिस में दूंगा, तो और लोग भी पकड़े जायेंगे। इन्सानियत का मुँह काला हो जायेगा। भूल सभी से होती है। तुझसे भी······मुझसे भी !' और उसने तभी अपनी जेब में पड़ा हुआ दस रुपये का नोट निकाल कर

जगिया के सामने फेंक दिया। उसने कहा—'यह दस रुपये का नोट उठा ले। अपना छुरा भी। तू आज इन्सान का खून करने से बच गया। इसी खुशी में यह तुझे दिया गया। अब चला जा। कोई तुझे देखे, तो इससे पूर्व ही, तू यहाँ से निकल जा।' यह कहते हुए उसने जगिया को ऊपर उठाया और दरवाजे तक ले गया। जो नोट और छुरा जगिया नहीं उठा पाया था, उसे भी सुधीर ने उठा कर उसके हाथ में दे दिया।'

उस घटना के बाद सुधीर सो नहीं सका। जब पूरब की ओर अरुणिमा उठ आई, तो तभी सुधीर ने अपनी आँखों में आये आंसू पोंछ लिये और वह उस चित्र के सामने से हट गया कि जहाँ देर से खड़ा था। उस दुर्गा के चित्र को देख, सुधीर ने किसी भी बच्चे के समान कातर बन कर बार-बार कहा—'मा, मुझे बल दो। मुझे सहारा दो। आज मैंने जो कुछ किया, मुझे यही करना था। जब जगिया मुझे नहीं मार सका, तो मैं भी उसे नहीं मार सकता था। नियति का नियन्त्रण हम दोनों पर लागू था। मेरे समान, वह जगिया भी तेरा पुत्र था, मा! वह मेरा सहोदर था। जब मैं किसी की रक्षा नहीं कर सकता, तो मुझे मारने का भी अधिकार नहीं था। यह काम मेरा नहीं था।'

सुधीर ने डण्डा उठा लिया और वह कमरे का लैम्प बन्द कर घूमने के लिये निकल पड़ा। उस समय चाँद निकल आया था। उसका प्रकाश चारों ओर फैल रहा था। सुधीर सीधा नदी तट पर पहुँच गया। देखा कि किनारे पर खड़ी नावों के माझी कुछ सो रहे थे और कुछ आपस में बातें करते हुए आग सुलगाये चिलम पी रहे थे। नदी के किनारे पर कहीं कहीं मेंढक बोल रहे थे और अपने चिर-अभ्यस्थ स्वर टर्र-टर्र की आवाज से उस शान्त वातावरण को कोलाहल से पूरित कर देते थे। सुधीर नदी के किनारे-किनारे बहुत दूर तक निकल गया। कभी-कभी कोई माली सिर पर साग-भाजी या ककड़ी-खरबूजों का टोकरा रखे खड़ी हुई नावों की ओर बढ़ा जाता था। क्योंकि उसका माल नदी के पार जाकर ही कस्बे में

बिकता था। वहां सौदागर खरीदते और आगे बड़े शहरों को भेजते थे। उस समय प्रातः का समीर चल पड़ा था। वह सुन्दर लग रहा था। तभी स्वस्थ रूप से, सुधीर के मन में बात आई कि यह समाज का आर्थिक विकास केवल आज का ही नहीं है, पुराना है। चिर पुरातन है। दूर खेतों से किसान और माली बड़े-बड़े नगरों तक अपनी खाद्य वस्तुएँ भेज देते हैं। जितनी दूर इनकी वस्तु जाती है, तो उसका मूल्य भी उसी अनुपात से बढ़ जाता है······अधिक शक्तिवान व्यक्ति बड़ा लाभ प्राप्त करता है··· ···यह बेचारे माली और किसान तो रोटी भर का सहारा प्राप्त करते हैं······रिस-रिस कर जीवन होम करने वाला मानव न शऊर से खा पाता है, न ढंग का कपड़ा पहिन पाता है······ बेचारा इन्सान······

दिन निकल आया। सुधीर घर पहुँच गया। उसी समय उसने देखा कि उसके पिता के पास जगिया का बाप बैठा हुआ है। वह सुधीर को देखते ही खड़ा हो गया। उसने झुक कर सलाम किया।

देख कर, सुधीर ने कहा—'क्यों, कोई काम है?'

वह बोला—'हाँ, सरकार! वह बच्ची आप मुझे दे दें, तो पाल लूंगा।'

सुधीर ने कहा—'हां, हां, ले जाओ।' और वह तभी अन्दर जाकर उस सोती हुई बच्ची को उठा लिया। उसे दे दिया। उससे बोला—'आज यह बच्ची चली जाती। मैं किसी आश्रम को भेज देता। प्यार से पालना।'

उस आदमी ने कहा—'सरकार, आपका हुक्म सिर माथे रखूँगा। मैं क्या आपका ऐहसान भूल सकूंगा। जगिया ने मुझे सभी कुछ बता दिया है।'

इतना सुनते ही, सुधीर आतुर और चंचल बन गया। वह क्षुब्ध बन कर बोला—'तेरा जगिया पागल हो गया है! एक भूल तो उसने की, अब वह दूसरी करने चला है।'

उस व्यक्ति का नाम पल्टू था। सुधीर की बात सुनते ही बोला--'सरकार, मेरा जगिया कहता है, उसने जो कुछ जिन्दगी में नहीं देखा और नहीं सुना, वह आपसे पा गया। और मैं क्या ऐसा सुन पाया था, कभी। कहोगे, तो मेरा जगिया तुम्हारे पसीने की जगह अपना खून बहा देगा।'

सुधीर बोला—'इस बच्चे को दूध पिलाना। पाँच रुपये माहवार तुम मुझसे ले लिया करना। मैं तुम्हें भेज दिया करूंगा।'

पल्टू ने कहा—'जय हो, सरकार की! सचमुच, जैसा सुना 'वैसा पाया।'

किन्तु इतना सुनने के लिये सुधीर वहाँ खड़ा नहीं रहा। वह घर में चला गया। जब वह अपने कमरे में पहुंचा, तो पल्टू एक आदमी की बात के उत्तर में कह रहा था, जो बात मैं आज तक नहीं समझ पाया, वह अब समझा हूँ। यह आदमी क्या आदमी रहा है······इसे इतना भी नसीब नहीं हुआ!

अपने कमरे में खड़े सुधीर ने इतनी बात सुन ली। वह मुसकरा दिया। तभी पीछे से मामी ने आकर कहा—'लल्लू, रात का दूध भी रखा रहा। लो, ताजा लाई हूँ, पी लो।'

सुधीर ने प्रसन्न भाव में मामी की ओर देखा। उसी अवस्था में उसने कहा—'मामी, देखता हूं, मेरी मा का अभाव तुमने भर दिया। मा मुझे याद आती है। बाहर भी मेरे सामने रहती है। याद करता हूँ, तो रोता हूँ कि मेरी मा ने जाने कितने कष्ट उठा कर मुझे इन्सान बनाया था······सोचता हूँ, पर उसने पाया क्या! मैं जवान बना, कुछ उपार्जित करने लगा, तो उसने इस संसार से प्रस्थान कर दिया······सच, मामी, यह संसार भी अजीब है······इसका व्यापार भी क्या सुगमता से

समझा जाता है ! निरा गोरख धन्धा ही मुझे लगता है। और तुम कहती हो कि मैं विवाह कर लूँ ! न, मामी ! मुझे ऐसे झंझट में न बाँधना। मुझे भेड़िया न बनाना·········औरत को खा जाने वाला भेड़िया······ सच, पिशाच······

मामी ने शायद सुधीर की पूरी बात नहीं समझ पाई। इसलिये वह मौन रह गयी। वह गिलास भरा दूध मेज पर रख कर लौट गयी। मानो सुधीर अब उसकी दृष्टि में तर्क करने की वस्तु नहीं रह गया था।

२५

• • •

जगिया अपने पेट में बात नहीं पचा सका। सुधीर की बात उसके पिता पर पहिले से प्रगट थी। किन्तु सुधीर ने जगिया के साथ जिस प्रकार का व्यवहार किया, वह उस वृद्ध की दृष्टि में अप्रत्याशित घटना थी। मनुष्य ऐसा भी हो सकता है, इसकी वह सहज में कल्पना नहीं कर सकता था। परिणाम स्वरूप, अपने पुत्र जगिया के समान, वह पल्टू भी 'सुधीर का भक्त बन गया। उसने अपनी बिरादरी में इस बात को प्रसिद्ध कर दिया कि जमींदार विक्रम सुधीर को मारना चाहता है। गाँव की अन्य जातियों में भी यह बात फूट निकली। वह हवा इतनी तेज चली कि जमींदार विक्रम के मकान से जा टकरायी। उस समय गड़े मुर्दे भी उखाड़े गये। गाँव में यह बात सर्वत्र फैल गयी कि विक्रम के खून में पुरखों का ज़हर भरा है। कभी शिवदास के पिता और विक्रम के पिता में झगड़ा हुआ था। उसमें थाना-कचहरी हुई थी। विक्रम के पिता को उस झगड़े में नीचा देखना पड़ा था। इसलिए, वही विषैला भाव विक्रम के खून में भी बोलता है। अवस्था यह थी कि गाँव में जहाँ चार आदमी एकत्र हुए कि यही चर्चा चलती। पनघट पर स्त्रियां इसी विषय का उल्लेख करतीं। खलिहानों में किसान इसी चर्चा में रस लेते। इसका परिणाम यह हुआ कि एक दिन जब बात ने अधिक जोर पकड़ा तो पल्टू और जगिया के

साथ गाँव के बहुत से नर-नारी विक्रम के मकान पर पहुँच गये। वे बाहर खड़े होकर शोर मचाने लगे, विक्रम तू जालिम है...... तू निरपराध को मारना चाहता है...... तू पुराने बदले निकालने की बात सोचता है ......

अवसर की बात कि वक्रम उस समय घर पर ही था। वह बाहर खड़े प्रदर्शन-कारियों के ज़हरीले बोल सुन रहा था। दाँत पीस रहा था। उसके मन में बार-बार आता कि बन्दूक उठाये और एक-एक को गोली के घाट उतार दे। परन्तु वह इतना विवेकहीन नहीं था। परिस्थिति और उसका परिणाम समझता था।

किन्तु उसी समय सुधीर को उसके एक पड़ौसी ने जब सभी बातें बतायीं, तो सुधीर एक क्षण भी घर पर नहीं बैठ सका। यद्यपि, जब वह चला, तो शिवदास ने रोकना चाहा, लेकिन सुधीर आँधी के समान अपने घर से दूर हो गया। जाकर देखा कि गाँव के अधिकांश लोग, बच्चे और स्त्रियाँ विक्रम के द्वार पर खड़े शोर मचा रहे थे। विक्रम को बाहर निकलने के लिये आवाजें कस रहे थे। कुछ दर्शक खड़े हुए तमाशा देख रहे थे। कदाचित् वे परिणाम भी देखना पसन्द करते थे। लेकिन सुधीर ने जाते ही, उस विभ्रम परिस्थिति पर अधिकार कर लिया। उसने पल्टू और जगिया को फटकारा। उसने कहा, विक्रम ने जो कुछ किया, ठीक किया। तुमने उसे समझ नहीं पाया। जाओ, लौटो, अपने-अपने घर!'

जगिया ने कहा—'एक सच्चे आदमी को झूठा कहा गया है।'

सुधीर बोला—'नहीं, नहीं, तुम्हें भ्रम हुआ है! सच्चा आदमी भी झूठ बोलता है। भूलें करता है। विक्रम इस गाँव के बुजुर्ग हैं। बड़े आदमी हैं।'

इसका परिणाम यह हुआ कि आग पर पानी पड़ गया। लोग लौट पड़े। तभी अपने बैठकखाने में बैठे हुए विक्रम को लक्ष्य कर सुधीर ने कहा—'मनुष्य बनना ही हमारे हित में है। आपको मेरे कारण कुछ कष्ट हुआ, इसका मुझे दुःख है।' और वह तभी तेजी के साथ अपने घर

लौट गया। घर जाकर उसने शिवदास को सुनाया कि वह आज ही इस गांव से चला जायेगा। यहाँ नहीं रहेगा।

शिवदास ने कहा—'बेटा, यह तो गांव है। तुम्हारी जन्म-भूमि है। क्या इससे उपेक्षा है!'

किन्तु सुधीर ने इसका उत्तर नहीं दिया। वह अपने कमरे में पहुँच गया। उस समय उसके मानस में जिस प्रकार की आग जल रही थी, उससे निश्चय ही, उसका समस्त शरीर फुँका जा रहा था। सुधीर न गांव का नेता था, न समाज सुधारक; परन्तु जो कुछ वह देख पाया, उससे बरबस ही, वह इतना समझ गया कि यह इन्सान जलता रहेगा······ दूसरे को जलाता रहेगा······अपना अधिकार और अपना दम्भ पूर्ण करने के हेतु यह क्या शान्त रह सकेगा······

दोपहर हुआ और मामी ने आकर कहा—'लल्लू, स्नान कर लो। खाना तैयार है।'

सुना, तो सुधीर बोल दिया—'मामी, मुझे भूख नहीं है।'

किन्तु भूख क्यों नहीं है, बरबस, मामी के मन में यह बात उठ आई। वह प्रश्न भरी दृष्टि से सुधीर की ओर देखने लगी। वह नारी उस समय यौवन के उतार पर थी। उसका गोरा रंग, बड़ी-बड़ी आंखें और लम्बा शरीर इस बात का द्योतक था कि उसने वह सुन्दर शरीर पाकर भी सुख नहीं पाया······उस शरीर का भोग प्राप्त नहीं किया। इसलिये, सुधीर की उस मामी के मुँह पर सदा एक न मिटने वाला उदास भाव रहता। वह जैसे उसके मानस का प्रतिबिम्ब था। उसके मन की व्याकुलता को उद्घोषित कर पाता था। इसलिये, जब भी सुधीर मामी की ओर देखता, तो उसे भी स्पष्ट लगता कि इस मामी के मानस में भी हा-हाकार है। पीड़ा है। क्षोभ है। असमय ही, यह हरा पेड़, मुरझा गया है। निदान, उस समय भी जब मामी ने प्रश्न भरी दृष्टि से सुधीर को लक्ष्य किया, तो वह मामी के चेहरे पर न मिटने वाली उस उदास भावना को देख,

तुरन्त बोला—'मामी, भरोसा रख, यह संसार ···· यह मनुष्य-समाज इसी तरह जलता रहेगा। एक इन्सान, दूसरे इन्सान को मारने, उसका पतन करने के लिये, सदा की भाँति आगे भी चेष्टित रहेगा······यह विक्रम, यह गाँव······री, मामी, चिता के समान सभी कुछ धधक रहा है। देख तो शोले उठ रहे हैं, इस हाड़-मांस के आदमी में! इन्सान फुँक रहा है······वासना और स्वार्थ की भट्टी में जला जा रहा है, यह इन्सान!'

मामी ने कहा—'लल्लू, मैं इतना नहीं समझ पाती।'

सुधीर बोला—'तुम भी समझो, मामी! तुम भी देखो।' और उसने तभी भाभी को लक्ष्य करके कहा—'मामी, मैंने जब-जब तुम्हारी ओर देखा, है, तो पाया कि तुम भी जल रही हो······जीवन में रो रही हो! तुम विधवा और अकेली बन कर क्या कभी शांत बनी हो!'

मानो मामी ने बात को समझ लिया। लेकिन उसी क्षण उसने देखा कि अपनी बात कहने के साथ सुधीर का उद्वेग उसके कण्ठ में उतर आया है। वह आँखों की तरह मुँह पर भी आना चाहता है। यह देख, भाभी ने तुरन्त कहा—'भैया, अपने-अपने भाग्य हैं। जैसा बोया, वैसा ही तो काटा जाता है।'

इतना सुना, तो सुधीर चीख पड़ा—'न, मामी! यह भी तुम्हें सिखा दिया गया है। तुम्हारी ऐसी भावना बना दी है, इस इन्सान ने। समाज की अवस्था तो ऐसी है। देख न वह पल्टू की लड़की······अरे, बेचारी घुट कर अपने-आप मर गयी। कुएँ में डूब मरी! आखिर, भगवान उसका भी था। उसके पास भी भावना थी। वह उसके खून में मिली थी। मामी, मैं देख कर चकित हूँ कि विक्रम जो कल तक मेरा शुभचिंतक था, आज एकाएक कैसे दारुण और कठोर बन गया। सोचता हूँ, क्या वह अपने पुरखों का रोष मुझ पर उतारने के लिये सन्नद्ध हो गया। हाय! यह कैसी परम्परा है, मामी! निरी हिंसक! निरी जड़! भला इसमें

चेतना कहाँ है ! शास्वत औ धीर मानव इतना अविवेकी बनता है, मैं नहीं समझ पाता। पता है, पिछली रात पल्टू का लड़का मुझे मारने आया था। वह तेज छुरा लाया था। वह तो अवसर की बात थी कि मैं जाग रहा था। वह दीवार से चढ़ कर मेरे कमरे में आ घुसा था।

चौंक कर मामी ने कहा—'तो''' ' तो''''''?'

सुधीर बोला—'पर वह अपने उद्देश्य में सफल न हो पाया। मैं सोचता हूँ, वह मुझे मार देता, तो यह अच्छा ही था। मैं इतनी पीड़ा तो न पाता। समाज के व्यक्ति की ऐसी घिनौनी और पीड़ा युक्त अवस्था तो न देख पाता। इसीलिये, मैं आज अधिक परेशान हूँ, मामी! आहत हूँ! मैं घायल हूं। मैं अपने भगवान से मौत मांगता हूँ!'

उस समय मामी कुछ और आगे बढ़ आई। उसने सुधीर के सिर पर अपना हाथ रख दिया और कहा—'लल्लू, तुम शान्त बनो। जब कहते हो कि तुम्हारी यह मामी भी दुःखी है, तो समझो इस संसार में इसके सिवा और क्या है! इन्सान कभी हँसता है, कभी रोता है।'

सुधीर खड़ा हो गया। वह कमरे के द्वार पर पहुँच कर बाहर पेड़ के हवा से हिलते हुए पत्तों को देखता हुआ बोला—'मामी यह संसार धार्मिक नहीं बना। भला नहीं। अनुभूतिपूर्ण नहीं।' यह कहते हुए उसने झटके के साथ मामी की ओर देखा और कहा—'मामी, सोचता हूं नारी वासना की भट्टी में क्यों जलती है! क्यों इस सुन्दर शरीर का नाश करती है। यह पुरुष जो सुन्दर भावना और आदर्श का जीवन प्राप्त करता है, हिंसक और स्वार्थी क्यों बन गया। जाने यह अपने मन के किस कोने से विष उगलता है''''''स्वयं मरता है, दूसरे को मारता है''''''!'

तब भी, मामी ने सुधीर की बात नहीं समझ पाई। वह मौन रह गयी।

सुधीर फिर बोला—'मामी, इस मनुष्य को जगाने के लिये संसार में बड़े-बड़े यशस्वी आये। उन्होंने बड़े-बड़े मार्ग प्रशस्त किये। मनुष्य को

ऊँची भावनायें प्रदान कीं। पर क्या, यह इन्सान उन श्लोकों का पाठ पढ़ सका है। यह एक दिन भो उन सिद्धान्तों को अपने जीवन में नहीं उतार सका ·· मनुष्य धोखेबाज, लम्पटी और ईर्षालु बना रहा है !'

मामी बोली—'भैया, यह संसार है। जब मनुष्य भूखा होता है, तो रोटी माँगता है। न मिलती है, तो चोरी करता है।'

तुरन्त ही सुधीर बोला—'हां, मामी ! इतनी बात समझ में आती है। पर मैं कहता हूँ जब आदमी पेट की भूख पूरी कर लेता है, तो तब, दिमाग और मन की भूख भी शान्त करनी चाहता है। उस अवस्था में ही इन्सान फितरती और शैतान बनता है। दूसरे का नाश करता है। मामी, यह संसार तो युद्ध का अखाड़ा बना है। जो आज हार खाता है, वह कल हार देनी चाहता है। बता तो, यह संसार क्या कभी शान्त रह सका है।'

उसी समय नीचे से आवाज लगी और गांव के कई आदमी सुधीर से मिलने आये। मामी नीचे उतर गयी। जब वे व्यक्ति सुधीर के कमरे में प्रविष्ट हुए, तो उनमें से एक व्यक्ति ने सुधीर को लक्ष्य करके कहा—'मैं तुम्हें बधाई देने आया हूँ, भैया ! तुमने आज बुद्धिमानी का काम किया। गाँव में बड़ा झगड़ा हो जाता, उसे बचा दिया।

वह भी गाँव का एक सम्पन्न व्यक्ति था। चौधरी कहलाता था। सुधीर उसे चाचा कहता था। बात सुनी तो वह बोला—'चाचा, इसके अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं था !'

उस चौधरी ने कहा—'हाँ, भैया ! तुम्हारे लिये यही शोभनीय था। विक्रम मदहोश बन गया। सोचता हूँ, जाने क्यों तुम्हारे विरुद्ध हो गया। मैंने उस दिन चौपाल में भी उसे समझाया था। पर वह तो अपनी बात पर अड़ा था। शायद वह तुम्हारी कीर्ती से चिढ़ गया। वह इस गाँव में दूसरे का प्रभुत्व देखने के लिये तैयार नहीं हुआ।'

सुधीर बोला—'मैं यहाँ से चला जाऊँगा। अब देर में आऊँगा। गाँव वाले चाहते हैं, तो मैं यहाँ से सदा के लिये सम्बन्ध तोड़ दूँगा।'

चौधरी ने कहा—'राम-राम कहो भाई ! कहीं ऐसा भी होता है। कौओं के कोसने से क्या ढोर मरते हैं ! तुमने लोगों को समझा दिया। विक्रम को माफ कर दिया, तो यह भी क्या कम हुआ।'

दूसरे व्यक्ति ने कहा—'सुधीर बाबू, इस गांव को तुम जैसे आदमियों की दरकार है। यहाँ तो राक्षस बसे है।'

सुधीर बोला—'आज सभी जगह यही अवस्था है। आदमी भटका हुआ है। अन्धा बन गया है। इसने जिन्दगी का केवल एक ही सबक लिया है। स्वार्थ पूरा करो, जीवन के भोगों में रत रहो, यहां तो आज का इन्सान जानता है।'

चौधरी ने कहा—'भैया, जमाना बदल रहा है ! जिसे देखो, वही पैसे के पीछे दौड़ रहा है।'

सुधीर बोला—'आदमी खर्चीला हो गया है। भोगों में डूब गया है। इसे जिस शिक्षा की आवश्यकता है, उसे नहीं पा रहा। पागल कुत्ते के समान आदमी भी भोंकता है और काटता है।'

उसी समय चौधरी ने सांस ली और कहा —'यह रहस्य समझा नहीं जाता, सुधीर बाबू ! घर-घर यही अवस्था है। आदमी 'क्या मुझे तो लगता है जैसे इन्सान की लाश को घसीटा जा रहा है''''''इन्सान ही गिद्ध के समान उस लाश को खा रहा है, उसे नोंच रहा है''''''

सुधीर उस समय बाहर की ओर देख रहा था। वह गम्भीर था। जब उसने बात सुनी, तो उसने एक रहस्य भरी दृष्टि से उन सभी व्यक्तियों की ओर देखा। उसने कहा—'इसी हेतु हमने देवता और ऋषियों की उत्पत्ति की। परन्तु उनकी वाणी हमने शीशे में जड़ कर रख ली। वह अपने जीवन में नहीं ढाली।'

चौधरी ने कहा—'भैया, तुम धन्य हो। तुम महात्माओं की संगति में बैठते हो। उनसे, ज्ञान प्राप्त करते हो। सचमुच, तुम जीवन की गहराई में

उतर चुके हो। मुझसे आयु में छोटे जरूर हो, पर मेरे लिये भी सम्मान की वस्तु हो।'

सुना, तो सुधीर अकिंचन बन गया। वह तुरन्त बोला—'न, चाचा जी, आप बुजुर्ग हैं। मैंने आप लोगों से ही कुछ प्राप्त किया है। सत्य सभी के पास है। वह बोलता है।'

चौधरी बोला—'पर भैया, उसे सुनता कौन है। कोई नहीं मानता। स्वार्थ सर्वोपरी है। वही बड़ा है।'

कड़ुवे भाव में सुधीर मुसकरा दिया—'इसी का नाम जीवन है। जीवन-संघर्ष है।

उनमें से एक बोला—'यह स्वार्थ न हो, तो संसार उजड़ जायेगा। युद्ध न हो तो आदमी कायर बन जायेगा। यह विश्व क्या आगे बढ़ेगा। इन्सान फिर तरक्की न कर सकेगा।'

सुधीर ने कहा—'यह सत्य है।'

चौधरी बोला—'यह भी है, तो फिर क्या आदमी भला बनेगा,—न, कदापि नहीं!'

सुधीर ने कहा—'चाचा जी, इस संसार में सभी कुछ साथ-साथ चलता है। हिंसा और अहिंसा का पाठ भी मनुष्य साथ-साथ पढ़ता है। आदमी छलिया है। दम्भी है। समय पाकर सभी कुछ कर पाता है।'

चौधरी ने साँस भरी और कहा—'मैं तो समझा हूँ कि यह आदमी कभी धार्मिक नहीं बना। बस, मन को समझाने के लिये मन्दिर में जाता रहा है।'

सुधीर मुसकरा दिया—'हाँ, चाचा जी, यह भी हुआ। इस आदमी ने यह भी किया। शान्ति पाने के लिये यह अशान्ति के बीज अधिक बोता रहा।'

वे आगन्तुक उठे और सुधीर उनके साथ-साथ कमरे से बाहर निकल गया।

२६

कल्पना हवा के जिस रुख पर अपने पंख फैला कर उड़ चली थी, वहाँ कोई सीमा नहीं थी। इसलिये उस सीमाहीन जीवन को पाकर, कल्पना की मानसिक अवस्था भी अतिशय तीव्र बन गयी थी। उस स्थिति में उसके घर और जीवन दोनों की दिशा बदल चुकी थी। महेन्द्र अवसर पाते ही, फिर कल्पना के समीप तैर आया। वह जीवन रूपी समुद्र में गोता खाते और तैरते हुए, जब कल्पना की ओर पहुँचा तो उसे किनारे पर खड़ी देख, खेंच कर उस गहराई में ले गया कि जहाँ केवल वह था और कल्पना थी। मानो दोनों ने एक-दूसरे के जीवन में ही डूब जाना पसन्द किया।

उन्हीं दिनों सुधीर अपना लम्बा अवकाश समाप्त कर, कार्य पर जा लगा। वह गाँव से यथा शीघ्र दूर हो गया।

लेकिन अपने नगर में बसी हुई कल्पना, जब आये दिन नये रूप और नये वेश में समाज के समक्ष प्रस्तुत होती, तो उस समाज के सम्भ्रान्त व्यक्तियों ने सहज ही इस बात को समझ लिया कि यह तरुणी अभी प्यासी है ''जीवन की साध पूरी करना चाहती है। फलस्वरूप कल्पना की गतिविधि को लक्ष्य करके ही, ऐसे व्यक्ति बरबस इस बात की आशंका करते, वे अपने मन में उठी बात एक दूसरे को सुनाते''''''जीवन के भोग प्राप्त

करना ही इस नारी ने पसन्द किया है। धन पाया है और सुन्दर यौवन, तो इन दोनों का समागम क्या इसे शान्त रहने दे सकता है, न, कदापि नहीं! कड़ुवा और नीम चढ़ा······सच, इसने महेन्द्र नाम का यह युवक खूब प्राप्त कर लिया है!

कदाचित् अपने आस पास के समाज की इन बातों को कल्पना भी सुन पाती थी। वह अनुभव करती थी कि समाज का एक बड़ा भाग उस पर ईर्षा करता है। उसके प्रति उपेक्षा की भावना भी रखता है। किन्तु मानो एक निस्पृह योगी के समान, कल्पना उस ओर ध्यान नहीं दे पाती। वह केवल अपनी दिशा की ओर देखती। जब महेन्द्र उससे दूर होता तो उसके समीप आने की व्यग्रता के साथ आकांक्षा करती। वह उसे बार-बार अपने पास बुलाती। क्योंकि शरीर पर धारण किये सुन्दर वस्त्र और अलंकारों के समान, कल्पना को लगता कि उसके मन का शृंगार महेन्द्र से होता था। जब वह पास होता, तो कल्पना को सहज ही अनुभव होता महेन्द्र एक ऐसा सुगन्ध भरा गुलाब है कि जिसकी गन्ध से उसका मन और मस्तिष्क झूम उठता है। उसमें मस्ती पैदा होती है। वह तब, बरबस ही, एक नये लोक की······एक आलौकिक युग की कल्पना कर पाती है। वह उस लोक में खो जाती है।

उस बार, अवसर की बात थी कि महेन्द्र देर तक नहीं आया। कल्पना ने उसे कई पत्र लिखे, पर वह सभी पत्रों के उत्तर में 'जल्दी आऊँगा,' की बात लिख कर भी जल्दी नहीं आ सका। लेकिन जब वह आया, तो उसे देखते ही, कल्पना ने ताना देकर कहा—'क्या काम था, इतनी जल्दी आने का! न भी आते, तुम्हारा यहाँ कोई सगा-सहोदर तो था नहीं!'

महेन्द्र ने बात सुनी, तो हँस दिया। उसने साथ में लाया बक्स खोला। उसमें से कुछ कीमती साड़ियाँ निकालीं। कुछ जेवरों के डिब्बे। उन्हें देख कल्पना ने चकित बन कर कहा—'यह क्या······भला किस लिये ले आये हो, इतना सब!'

महेन्द्र ने हीरे जड़ी एक अगूँठी निकाली और वह कल्पना के हाथ की उँगली में डाल दी। फिर हार डिब्बे से निकाल कर उसके गले में डाल दिया। उसी समय वह एक रेशमी साड़ी को निकाल कर बोला—'आज जब इसे पहन कर सिनेमा चलोगी, तो देखना, तुम-ही-तुम उस सिनेमा हाल में दीख पड़ोगी।'

बात सुनी, तो कल्पना लजा गयी। उसके गोरे गालों की लाली और गहरी हो गयी। वे बड़ी-बड़ी सुरमई आंखें झुक गयीं। उसी अवस्था में वह बोली—'तुम बड़े शोख हो, महेन्द्र बाबू !'

महेन्द्र ने कहा—'जब तुम्हें पाता हूँ, तो खो जाता हूँ। सच, मैं तुम्हें विश्व भर की अनिद्य सुन्दरी बनाना पसन्द करता हूँ। तुम हँसती रहो और इसी तरह मुसकराती रहो, केवल इतना भर देखने के लिये तो मैं यहाँ आता हूँ।'

उसी समय कल्पना ने ताना देकर कहा—'तुम यहाँ क्यों आते हो, महेन्द्र बाबू ! पता है, पीछे फूवा जी आई थीं, वे तुम्हारे विवाह की बात कर रही थीं। कहती थीं, कि तुम विवाह की बात टाल रहे हो। भला क्यों ? और क्या यही फूवा का कहना शोभा देता है कि मैं तुम्हारे बीच में रोड़ा बन गयी हूँ। क्या मैं तुम्हें रोकती हूँ।'

बात सुनी तो महेन्द्र हँस दिया। वह तुरन्त बोला—'सभी ऐसा सोचते हैं। कल्पना रानी !' उसने कल्पना की ओर देखा और अपने संयत तथा बँधे हुए स्वर में कहा—'और मैं पूछता हूँ, अगर मैं विवाह न करूँ, तो ! तुम्हारे पास आकर कहीं न लौटूं तो !'

तुरन्त ही, कल्पना ने कहा—'न महेन्द्र बाबू ! सभी मुझे दोषी ठहरायेंगे। पातकी कहेंगे। मुझे चोर भी बतायेंगे।' यह कहते हुए कल्पना ने अपनी उन रहस्यभरी आँखों से हँस दिया। उसने अपनी उन्हीं आंखों को महेन्द्र की आँखों पर टिका दिया।

किन्तु महेन्द्र बोला—'कल्पना रानी, यह जीवन काटने के लिये नहीं दिया गया है। इसमें जो रस है, वही प्राप्त किया जाता है। आदमी और औरत का समाज उसी में डूबता है।'

तभी कल्पना ने कहा—'और भी कुछ सुना तुमने, इस बार फूवा ने आकर कहा—'अरी कल्पना, क्या तू भी कुतिया बनने चली है......मेरे मा-बाप के घर का नाम मिटाना चाहती है! महेन्द्र तो कुत्ता बन गया दीखता है। आदमी निर्लज्ज होता है .....पर तू......'

उसी समय महेन्द्र ने कहा—'तुम्हारी फूवा भी पुराने युग की ओर देखती है। वह मुझे भी देवता बना देना पसन्द करती है।'

कल्पना ने कहा—'फूवा ने इस बार आकर मुझे एक अनोखा ही उपदेश दिया। वे बोलीं—'बहू, हमारे पुरखों ने इस मोहल्ले में जो मन्दिर बनवाया है, तू भी उसकी पूजा किया कर। सती पार्वती .....सती सीता......हाँ, री, तू उन महान नारियों के जीवन से कुछ सीखने की इच्छा कर।'

महेन्द्र बात सुन कर खिलखिला पड़ा। कल्पना भी हँस पड़ी। वह फिर बोली—'फूवा ने इस बार यह भी कहा, 'री, बहू! तू विधवा तो बनी, पर जमीन-जायदाद की मालकिन भी बनी, यह तेरे लिये अच्छा नहीं हुआ। भला ऐसे क्या तू जमींन पर चलेगी .....न, आसमान में उड़ेगी। मैं बोली—'फूवाजी, तो क्या तुम यह भी चाहती हो कि मैं भूखी मरूँ .... पेट को रोटी देने के लिये शरीर का व्यापार करूँ......

बात सुनी, तो फूवा मेरी ओर घूर कर देखने लगीं। वे बोलीं—'तू कुछ पढ़ गयी है, बहूरानी! धन भी पा गयी है। स्वतन्त्र चिड़िया बन गयी है। तभी तो आसमान में उड़ती है। तू क्या जमींन की सार समझती है। तुझे क्या पता कि पेट भरने के लिये समाज क्या-क्या करता है। कैसे-कैसे कष्ट भोगता है! आदमी जिन्दगी की भरी दोपहरी में गर्मी से

झुलस जाता है······असमय ही मर जाता है ! ऐसे ही औरत······ अरी, तुझे अभी औरत की पीड़ा का क्या पता है······'

उपेक्षा भाव से महेन्द्र बोला—'तुम्हारी फूवा सठिया गयी है। अब वह उपदेश देती है। इस अवस्था में आकर जिस प्रकार की बात सूझती है, तो वही······'

हँस कर कल्पना ने कहा—'हम भी बुढ़ापे में ऐसा ही कहेंगे।'

बात सुनी, तो महेन्द्र और जोर से ठहका मार कर हँस पड़ा। उसी अवस्था में वह मुँह-हाथ धोने के लिये दूसरी ओर चला गया।

उसी समय कल्पना ने शीशे की ओर देखा। गले में पड़े हुए हार पर उसकी दृष्टि गयी। सचमुच, हार की बनावट अच्छी थी। कारीगर ने एक नया डिजाइन प्रस्तुत किया था। हाथ में पड़ी अँगूठी की बनावट भी सुन्दर थी। उसी समय नौकरानी उधर से निकली। कल्पना ने आवाज दी और उसे बुला कर कहा—'देख, महेन्द्र बाबू आये हैं। मिसरानी से कहना खाने में एक-दो चीज और बढ़ा ले। तू बाजार जाकर कुछ मिठाई ले आ। चाय तैयार करा ले। जल्दी कर।'

नौकरानी चली गयी। वह सीधी मिसरानी के पास रसोई घर के दरवाजे पर पहुंच गयी। वह अपनी आँखों में एक भेद भरी बात लिये, किञ्चित होंठों से हँसती हुई बोली—'सुना, मिसरानी जी, बहूजी का हुक्म है आज एक-दो चीज और बनायी जाये। वे महेन्द्र बाबू···'

मिसरानी ने बात पकड़ ली और बोली—'हां, री, एक-दो चीज क्या दस-बीस चीज बनवायें बहूरानी ! चहेता जो आया है।' उसने माथे में हाथ मार कर कहा—'अरी, पार्वती ! औरत की जब लाज उतरती है, तो सभी कुछ उसके सिर से उतर जाता है। देखना, यह बहूरानी भी—'

पार्वती बोली—'मिसरानी जी, अब इस औरत के पैर धरती पर नहीं पड़ते हैं।'

मिसरानी ने कहा—'सब पड़ने लगेंगे। जब पैसा नहीं रहेगा, तो यह फूलों की रानी नहीं बनी रहेगी। तेरी मेरी तरह दूसरों की मजदूरी करेगी। झूठनें उठायेगी, लोगों की!'

पार्वती ने साँस भर कर कहा—'राम जाने!' और वह चाय तैयार करने की बात कह कर वहां से चल पड़ी।

उसी समय महेन्द्र तौलिये से मुँह पोंछता हुआ कमरे में प्रविष्ठ हुआ। उस समय कल्पना ने अपने सिर का जूड़ा खोल लिया था। अपेक्षाकृत उसके बाल अधिक लम्बे थे। घुँघराले भी थे। आदमकद शीशे के सामने बैठी हुई वह कंघे से उन बालों को संवार रही थी। कल्पना के उस रूप को देखते ही, महेन्द्र ने कहा—'सच, भाभी, मैं तुम्हें नहीं भूल सकता। कैसे बताऊँ, कि काम के बोझ के कारण मैं तुम्हारे पास जल्दी तो नहीं आ सका, परन्तु दिल यहीं पड़ा रहा......अब तो लगता है कि एक दिल और दो जान का सौदा हो गया......'

कल्पना ने उसी समय आँखें तरेर दीं और कहा—'तुमने अब बहुत बातें बनाना सीख लिया है। लगता है, औरत से कैसी बात करनी चाहिये, यह भी समझ लिया है।'

इतनी बात सुनी, तो महेन्द्र फिर जोर से हँस दिया।

किन्तु कल्पना विद्रूप का रूप लेकर बोली—'मेरे सभी पत्र बेकार गये। मैं यहाँ अकेली हूँ, तुम यह भी भूल गये।'

अपराधी के समान महेन्द्र बोला—'भाभी, काम अधिक था। विश्वास रखो, अब ऐसा अपराध न कर पाऊँगा।'

कल्पना ने अपना जूड़ा बाँध लिया। नयी साड़ी पहन ली, उसी रंग का ब्लाऊज। तभी नौकरानी ने चाय का सामान लाकर रखा। जब चाय का प्याला बना कर कल्पना ने महेन्द्र की ओर बढ़ाया, तो बरबस, दोनों की आँखें मिल गयीं! महेन्द्र हँस दिया यह देख, कल्पना ने तुनक कर कहा—'सच, बड़े शोख हो तुम!'

चाय पी ली गयी। मिठाई भी खायी गयी। खड़े होकर महेन्द्र ने अपने कपड़े बदले। उसने भी नया सूट धारण किया। देख कर कल्पना ने कहा—'इस सूट का कपड़ा अच्छा है। रंग भी अच्छा।' वह बोली—'तुम जो कुछ पहन लेते हो, वही तुम्हें अच्छा लगता है।'

महेन्द्र बोला—'तुम्हारा देखने का ढंग भी जुदा है। जब भावना अच्छी हो, तो सभी कुछ पसन्द आता है। आज तुमने मुझे अपने दिल में स्थान दिया है।'

कल्पना फिर सकुचा गयी। किन्तु उसने कहा—'न, न, जो वस्तु पसन्द आये, तो उसे क्या बुरा कहा जाता है!'

महेन्द्र ने जल्दी से कहा—'हां, हां, अपनी-अपनी पसन्द तो है। मैं तुमसे फटकार खाकर और तुम्हारी उपेक्षा बर्दाश्त करके भी, बाज नहीं आया। मैं आज भी तुम्हारे पास आ गया। सोचता हूँ कि वे साधु महाराज तुम्हारे पास आयें तो······'

चौंक कर कल्पना ने कहा—'कौन, सुधीर?'

'जी हाँ, वही सुधीर बाबू! जो दुनिया में रह कर संन्यासी का पार्ट अदा करते हैं। तुम्हें भी उस योग का कड़ुवा घूँठ पिला देना पसन्द करते हैं।'

कल्पना बोली—'तुमने सुना नहीं, मेरे पिता की और सुधीर की फिर अनबन हो गयी है। गाँव का एक आदमी आया, तो वही मुझे सभी कुछ बता गया।'

महेन्द्र बोला—'वह सुधीर जड़ है, चेतन नहीं। बिलकुल पत्थर! उस पर क्या पानी ठहरता है!'

'सुना है कि वह गाँव की एक लड़की······' कल्पना ने कहा—'पर मुझे भरोसा नहीं हुआ। वह लड़की मर गयी और उसका बच्चा सुधीर ने रख लिया। गाँव ने सुधीर के बाप का हुक्का पानी बन्द कर दिया।

महेन्द्र बोला—'हजरत, अभी एक दिन दिखायी दिये थे। रेल के फर्स्टक्लास के डिब्बे में जा रहे थे। मैं भी उसी गाड़ी के दूसरे डिब्बे में

बैठा था। जब एक स्टेशन के प्लेटफार्म पर मैं घूम रहा था, तो आँखें चार होते ही, बोल पड़े—'कहो, महेन्द्र बाबू! किधर? तब मैंने बता दिया कि काम से कलकत्ता जा रहा हूँ। यह बोले—'कल्पना तो अच्छी है? खुश है?' मैंने कहा—'यह तो आपको पता होगा। वह आपके अधिक समीप है। तो कहा हजरत ने—'नहीं, भाई! उसका और मेरा मार्ग जुदा-जुदा है। विचारों से ही आदमी एक होता है और उन्हीं से दूर-दूर। मेरा उसका मत मिलना कठिन था। पर यह चाहता हूँ कि वह सुखी रहे। शान्त रहे। तभी गाड़ी ने सीटी दी और मैं अपने डिब्बे की ओर चल दिया। उसी समय मन ने कहा– मूर्ख कहीं का! उपदेशक बनता है ···महानुभाव! और यह कहते हुए महेन्द्र बरबस ही खिलखिला कर हँस दिया। वह तब कल्पना के साथ घर से चल दिया। उस समय संध्या आ गयी थी और सभी ओर का मौसम खुशनुमा गुलाबी हो गया था। वह मँहक रहा था।

२७

• • •

गाँव से लौट कर, सुधीर के मन की अवस्था अच्छी नहीं थं । अपने क्षेत्र के जिस मन्दिर के पुजारी के पास सुधीर पहुँचता, उन दिनों वह कार्य की अधिकता के कारण उन के समीप भी नहीं जा पाता था । वह दिन में कार्य-व्यस्त रहता, परन्तु रात में या तो पहाड़ के किसी टीले पर जा बैठता, अथवा बिस्तर पर पड़ा हुआ, करवट बदलता । सुधीर रात में बहुत कम सो पाता । स्पष्टतः उसके मन की स्थिति सर्वथा दयनीय और विषम बनी थी । गाँव में विक्रम ने उसके साथ जिस प्रकार का व्यवहार किया, वह अब भी उसके मन में शूल की तरह चुभ रहा था । परिस्थिति यह थी कि सुधीर विक्रम के मन को नहीं बदल पाया । जब सुधीर गाँव से चला था, तो उसके एक निकट के साथी ने शहर से आकर कल्पना के विषय में बहुत कुछ बताया । उसने कल्पना के जीवन से सम्बन्धित गति विधि का जिस प्रकार का चित्र उपस्थित किया, वह जैसे सड़ांद भरा था······उस कल्पना के सुन्दर शरीर से कोढ़ चू रहा था··· मानो कल्पना उस पीड़ा से कसक रही थी ! वह वेदना उसके जीवन के चारों ओर फैल चुकी थी । उसने कोहरे के समान, उस कल्पना को ढँक दिया था । जिससे उसका सुन्दर और मनोरमरूप अब सुधीर को नहीं दिखायी देता था······

लेकिन उन दिनों सुधीर के मन में एक अप्रत्याशित बात भी उठ आई थी। जब विक्रम ने कल्पना के नियोग की बात कही, तो बाद में, सुधीर ने बार-बार सोचा, तो अब ? वह अपने से स्पष्ट तो नहीं कह सका, किसी सुन्दर नारी का सामीप्य पाकर वह मौन भी नहीं रह सकता। इसलिये उस अवसर पर, सुधीर ने अपने हृदय के सत्य को टंकोरा। उसे स्पष्ट देखा। उस समय वह इतना चँचल बना कि विक्रम से असहमति प्रगट करने पर भी, वह कल्पना के पास पहुँच जाने की बात सोचने लगा। किन्तु उसी समय गाँव में अघट घटना घटी। पल्टू की लड़की का शव जब सुधीर ने अपनी आँखों से देखा, तो वह जाने किस प्रकार, अपने मन की बात को भूल गया। उस अवस्था में उसे लगा, कि सचमुच, चिर-पुरातन से इस आदमी ने औरत को ठगा है'' '''औरत का शोषण किया है। और उस पल्टू की लड़की की उस स्थिति को देख कर ही, 'बार-बार, सुधीर के मन में आया कि आखिर नारी को इस सड़ाँद भरे और घिनौने जीवन में डालकर भी मनुष्य ने पायाक्या ? केवल क्षण भरका आनंद ! उसी आनंद की परिभाषा करते हुए, सुधीर अपने आप में कांप जाता। उसने स्पष्ट देखा कि नारी के साथ आदमी भी ठगा गया है''''''आदमी का यौवन गया है। वह पौरुषहीन बना है। वह जिस आँधी में उड़ा है, तो उसने मनुष्य का इह लोक दुर्गम बना दिया''''''मानो वह अपने रास्ते से भी भ्रष्ट हो गया''''''मनुष्य डरपोक और कायर बन गया''''''

अपने मन की उस उहापोह में ही, सुधीर एक दिन अपने स्थान से प्रातःकाल ही, दूर मन्दिर में पहुँच गया। मन्दिर के पुजारी के दर्शन किये। सुधीर को देख, पुजारी महाराज ने सरल भाव से मुसकराया—'छुट्टी से लौट कर भी आज मिले हो, सुधीर बाबू ! दिखता है, कुछ अव्यवस्थित भी हो। क्या मन में कुछ लिये हो ? दुर्बल भी हो।' यह कहते हुए पुजारी ने मन्दिर के पट बन्द करने का आदेश दे दिया। वह सुधीर को साथ लेकर मन्दिर की वाटिका में पहुँच गया। जहाँ के एक पेड़

तले खड़े होकर पुजारी ने सुधीर की ओर देखा। वह मुसकराया। उसी अवस्था में उसने कहा—'सुधीर बाबू, मनुष्य भावना प्रधान प्राणी है। धार्मिक भी है। यही इस जाति का गुण है। इसी धरातल पर खड़ा होकर मनुष्य देवता बना है। यह बुद्धिजीवी इन्सान न केवल अपने को सजा पाया है, अपितु एक सुन्दर संसार की भी रचना कर सका है। देखते हैं न आप, यहाँ जो कुछ है, वह सब मनुष्य की बुद्धि का चमत्कार है। इसी हेतु ममुष्य विचारक बना है। इसने समाज की व्यवस्था की है। विधान का निर्माण किया है। भला विवेक शून्य व्यक्ति क्या समाज में स्थान बना सकता है! नैतिक-धर्म की कुछ परम्परायें भी इस मनुष्य ने प्रचलित कर दी हैं। आप भी तो उन सभी से वेष्टित हैं, भाई! देखता हूँ कि आप सभी धर्मों, देवताओं में आस्था रखते हैं। यह बड़ी बात है। सुखकर भी है। फिर आप इतने खिन्न क्यों? सच, मुझे लगा कि आपके मन में बरबस ही, कोई चीत्कार उठ गया है। वह मन की शान्ति को दूषित कर रहा है। भला क्या ····· वह कल्पना देवी ······ वह विवाह का पुराना प्रश्न? न, न, ऐसा अवसाद जीवन में लाना क्या अच्छा है! आप समर्थ हैं! कुछ भी प्राप्त कर सकते हैं।'

सुधीर बोला—'पुजारी जी, निसन्देह, मेरे मन का क्लेश ही यह है। मेरी माता इसी इच्छा को लिये-लिये चली गयी। वृद्ध पिता जी भी इसी बात की कामना करते हैं कि मैं विवाह कर लूँ। गृहस्थी बन जाऊँ। बच्चे पैदा करूँ। और वह कल्पना ··· हाँ, आपको बताया तो था मैंने एक बार कि वह बेचारी अब अकेली है। मेरी बचपन की परिचित है। वह विधवा बन चुकी है। सम्पत्तिवान है! निःसन्देह, मेरे जीवन में भी प्रवेश करने के लिये उद्यत है। परन्तु मेरे मन में सदा यह बात उठी है कि क्या यही गेय है, प्राप्त करना है। वासना की पूर्ति करना ही क्या नर और नारी के लिये उपादेय है!'

उस समय वृद्ध पुजारी गम्भीर थे। उनकी आँखें ऊपर उठी थीं।

बात सुनी तो, बोले—'सुधीर बाबू, बड़ा कठोर प्रश्न है, यह! अजित है। वासना की पुकार इस मानव को, इस नारी को सदा उद्वेलित करती रही है। मैं तो बूढ़ा हो गया हूँ। परन्तु अपने यौवन के प्रमाद को याद करके मैं आज भी काँप उठता हूँ। मेरे गुरू कितने कर्मठ और संयमी थे, यह मेरी केवल एक बात से स्पष्ट होता है कि वे प्रतिपल मुझ पर निगाह रखते थे। वैसे वे कहते थे, वासना प्राप्त करनी हो, तो योग की बात मत लो। किसी नारी से सम्बन्ध जोड़ लो। जीवन में गोता मार लो। बाबू, वे रात में सोते समय भी मुझ पर चौकीदारी करते थे। वे महापुरुष··· थे अमर संन्यासी······हां, सुधीर जी, यदि आपको भी संसार मे रहना है तो विवाह करना ही अच्छा है। यही उपयुक्त है। वह कल्पना देवी, मुझे भी योग्य लगी। तुम्हारे अनुरूप। लगता है, कि दोनों का दाम्पत्य-जीवन सरलता से निभ जायेगा।

सुधीर ने अपने स्वर पर जोर दिया—'पुजारी जी, मेरी श्रद्धा नहीं है। इच्छा भी नहीं।'

यह सुनते ही, पुजारी महाराज का हाथ एकाएक ही, सुधीर के कन्धे पर पहुँच गया—'अमर हो, तुम्हारी यह भावना।'

सुधीर बोला—'महाराज, मैं भी बूढ़ा हो जाने वाला हूँ। मैं अब नौकरी छोड़ देने की बात सोचता हूँ। गम्भीरता से विचार कर रहा हूँ। इन छुट्टियों में, कई साधुओं के सम्पर्क में पहुँचा हूँ। उन मनीषियों के जीवन को देख, मैं समझा हूँ कि इस जीवन में शान्ति नहीं······पीड़ा के अतिरिक्त यहाँ कोई अन्य अवलम्ब नहीं।'

पुजारी मुसकराये। किंचित हँसे। उन्होंने पृथ्वी पर पड़े जूही के कुछ फूल उठा लिये और उन्हें हाथ की हथेली पर लेकर बोले—'बाबू, देखते हो न इन फूलों को, ये सभी तो देवता के ऊपर नहीं चढ़ाये जाते। किसी कामिनी के गले को भी सुशोभित नहीं करते। ये असमय ही हवा का झोंखा खाकर पेड़ से टूटते हैं और यों धरती पर गिर कर

इन्सान के पैरों तले रोंदे जाते हैं। यही अवस्था तो है, इस इन्सान की! जाने कितने नित्य पैदा होते हैं और मर जाते हैं। यह नर और नारी का सम्मिलित समाज वासना के दरिया में गोता मारता है और यों······हाँ, बाबू, वह अकारण ही यौन-सम्बन्ध से जीव की उत्पत्ति कर पाता है। आज इसकी कोई परम्परा तो है नहीं। जानवर का भले ही कोई नियम हो, परन्तु इन्सान का नहीं है। सहस्रों वर्ष बाद भी इस विषय में इन्सान मूर्ख बना है। वासना पूर्ति के हेतु चंचल है, दीन है। मोहताज है। यही नारी की अवस्था है।' यह कहते हुए वृद्ध पुजारी का मुँह रक्तवर्ण हो उठा। लगा कि उनके हृदय का रोष मुँह पर आ गया। उन्होंने तुरन्त ही फिर कहा—'बाबू, इस घिनौने रास्ते पर आकर नारी भी खो गयी है, पुरुष भी। लगता है कि इस विशाल समुदाय ने जीवन के एक क्षण में भी शास्वत-धर्म को नहीं समझ पाया। विचारक और धार्मिक इन्सान भी नारी को देख कर मूर्ख बन गया। बताइये, क्या आप ऐसे मदान्ध राक्षस को जीत सकते हैं·········न, यह बड़ी कठिनाई है। दुसह है। हिमालय को लाँघना सामान्य व्यक्ति की बात नहीं। इसीलिये तो आप भी खिन्न हैं। उलझन में है। नारी अपनी ओर खेंचती है, विचार अपनी ओर! मेरा अपना मत यह है कि ऐसे स्थल पर नारी की जीत होती है! वह सफल बनती है।'

सुधीर बोला—'महानुभाव, यह भी भावना बन गयी है। मेरे मन की यह आँधी तो देर से उठी है।'

तुरन्त ही, पुजारी ने सुधीर की बात लेकर कहा—'हाँ, बाबू, बात आपकी भी संगत है। लेकिन जिस साधना की इस संयम के लिये आवश्यकता है, वह आप प्राप्त कर सकेंगे, ऐसा सन्देह मुझे अब भी होता है।'

सुधीर ने कहा—'मैं उसका प्रयत्न करूँगा श्रीमान!'

किन्तु पुजारी ने फिर कहा—'लेकिन इसकी आवश्यकता क्यों है? यह निरोध सभी के लिये तो ग्राह्य नहीं। इस अवस्था में बहुतेरों का जीवन भी दूषित हो जाता है। जो कामेन्द्रिय इस पंच भौतिक शरीर में व्याप्त हैं। वे अवसर पाकर विकृत भी बनती हैं। उनकी भूख जब आदमी शान्त नहीं कर पाता, तो गलित-कुष्ठ के समान आदमी गल जाता है··· कोढ़ फूट जाता है, सुधीर बाबू! चंचल मन को शान्त करने के लिये वैसे ही विचार चाहियें। उसके लिये विशाल दृष्टि चाहिये। अगाध अध्ययन! और तुम तो हो ही, सरकार के एक बड़े अफसर। तुम्हारे पास अपना काम ही बहुत है। तुम्हारी एक बँधी-बंधायी परम्परा है। अपना जीवन एक सीधी पगडण्डी पर ढाल दिया गया हैं। बोलो, संसार का वैभव, विलास और सौन्दर्य आपको आकर्षित नहीं करता। एक सुन्दर नारी क्या अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाती? एक सुन्दर बालक जो घुटनों से रेंग रहा है, तुम्हारी गोद में आना चाहता है, उसे प्राप्त करने को मन तैयार नहीं होता!' यह कहते हुए पुजारी ने साँस भरी और कहा—सुधीर बाबू, ऐसे बहुत से उपकरण हैं कि जो इस इन्सान को आकर्षित करते हैं। मोह-जाल फैलाते हैं। आदमी उन्हीं में फँसता है। उससे छूटने के लिये आदमी तड़पता है! मचलता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि जब उसका प्राण निकलता है, तो मोह में फँसा हुआ उसका मन रोता है······वह अपने आत्मीयों में ही, जीवन का स्वरूप देखता है। यह दुर्बल मनुष्य वहाँ हारता है। अपनी पराजय पर खीजता है।'

सुधीर ने तभी झटका-सा खाया और कहा—'महाराज, धन्यवाद आपको कि आपने इस कथन का भी प्रदर्शन किया। यही तो मैंने जीवन में देखा है। मैंने अपनी मा का कष्ट सर्व प्रथम अनुभव किया। जिस क्षेत्र में मेरा कार्य है, वहां नित्य ही मजदूर परिवारों की करुणा और जीवन का चीत्कार मुझे सुनने को मिलता है। मुझे इतना स्पष्ट दिखायी

दिया है कि क्षणिक आनन्द के लिये मनुष्य जीवन भर अन्धा बना रहता है। सिसकता है। उसका प्राण ऐंठन सी अनुभव करता है।'

पुजारी ने किंचित हँसा। तभी उन्होंने गम्भीर बन कर कहा--'सुधीर बाबू, लगता है कि आपके हृदय पर चोट लगी है। मानस तड़पा है।'

सुधीर बोला—'भगवन् , वह तड़प मेरे पास आज भी है। मैं गाँव में जाकर भी कलंकित बना हूँ। यह मेरी नौकरी भी मेरे लिये श्राप सिद्ध हो रही है। मैं भ्रम गया हूँ। इसीसे तो मैं समाज में आदर पाने का भागीदार बन गया। परन्तु मैंने समाज का क्या लाभ किया! अपने पिता का ऋण उतारा। जमींन बढ़ाई। मकान बना लिया। यह सब तो जीवन के अवलम्ब नहीं हैं, पुजारी जी! सचमुच, मैं जीवन के अन्धेरे में खो गया हूँ। वह कल्पना भी खो गयी है। आज उसका पिता मेरा शत्रु बना है। उसने मेरे प्राण लेने की भी चेष्टा की। केवल इसीलिये तो कि मैं उसकी विधवा पुत्री को पत्नी बनाने में असमर्थ रहा। वह व्यक्ति इतनी सी बात पर चिढ़ गया। गाँव में रहते उसने मेरा पतन कराने की चेष्टा की। मुझे भ्रष्ट कर देना चाहा।'

पुजारी उस समय अत्यन्त गम्भीर थे। जैसे पत्थर के समान कठोर। सुधीर की बात सुनी, तो वे बोले नहीं, एक पेड़ की ओर देखने लगे।

सुधीर ने कहा—मुझे ऐसे समाज से घृणा हो गयी है। परन्तु मैं फिर भी उसमें सुधार चाहता हूँ। सोचता हूं व्यक्ति या समाज उपेक्षा का पात्र नहीं''''''वह लड़की कल्पना भी नहीं। वह आज पथ-भ्रष्ट है। मैं उसका भी सुधार चाहता हूँ।'

पुजारी ने कहा—'भगवान तुम्हें सफलता दे!'

सुधीर मन्दिर से चल दिया। जब वह संध्या होने तक अपने स्थान पर पहुंचा, तो देखकर चकित रह गया कि मेज पर संध्या की डाक से आया हुआ कल्पना के पिता विक्रम का पत्र रखा था।

२८



महेन्द्र को इस बात का भरोसा था कि जब कल्पना ने उसे अपने पास आने के लिये बार-बार निमन्त्रित किया, तो निश्चय ही, वह स्वयं भी अन्तिम रूप से अपने और कल्पना के बीच के अवरोह को समाप्त कर देगा। कदाचित् यही कारण था कि महेन्द्र आते समय अपने साथ ऐसी कई कीमती वस्तुएं ले आया कि जो कल्पना को पसन्द आ सकती थीं। लेकिन जब महेन्द्र और कल्पना अपना-अपना शृंगार करके मकान से निकले, तो उस समय नगर पर संध्या का धूमिल आवरण बढ़ आया था। सूर्य छिप गया था। घरों में प्रकाश हो चला था। गाड़ी नगर के बाहर बढ़ी जा रही थी। दिन भर के तपते हुए मानव घरों से निकल कर पार्कों और नदी-तट की ओर बढ़ रहे थे। घर से चलते समय ही, उन दोनों ने सिनेमा जाना स्थगित कर दिया था। कल्पना के मत से कोई चित्र अच्छा नहीं चल रहा था। इस लिये नदी पर या किसी पार्क में जाकर घूमना उन दोनों का लक्ष्य था। जब गाड़ी नगर के एक बड़े उद्यान के द्वार पर पहुँची, तो कल्पना ने ड्राईवर को वहीं रुकने का आदेश दिया। दोनों उतर चले। उद्यान में उस समय सहस्रों व्यक्ति आये हुए थे। रंग-बिरंगी साड़ियां पहिने युवतियां, मनुहार बच्चे उस बाग की शोभा बढ़ा रहे थे। उद्यान में चारों ओर फूल खिले हुए थे।

वह एक दर्शनीय दृश्य था। उसी को लक्ष्य कर, एक स्थान पर बैठते हुए महेन्द्र ने कहा—'कैसी अपूर्वता है! सच, कैसी मोहकता! लगता है कि सभी कुछ जगमगा रहा है। प्रकाशमय बना है।'

किन्तु उसी समय कल्पना के मन में एकाएक ही बात उठ आई और वह अपने-आप बोली—'लेकिन सुधीर ऐसा नहीं देखता, वह इसी को तो संसार का नशा मानता है। वह कहता है, यही विलास है...... यही भोग!

तभी महेन्द्र ने कल्पना को फिर टंकोरा। उसने कुछ कहा। जिसे सुनते ही कल्पना चौंक गयी। जैसे वह उस स्थान पर नहीं थी। कहीं दूर थी। यह देख बरबस ही, महेन्द्र हँस दिया। उसने कहा—'पार्क के सामने जो वह होटल है, उसमें नृत्य होता है और गान। आओ, चलें हम भी। इस संध्या के सुहावने प्रहर में उसका आनन्द लें। वहाँ नगर का उच्चतम समाज मिलता है। मैं वहाँ एक बार गया, तो बड़ा आनन्द आया।' यह कहते हुए वह खड़ा हो गया। कल्पना भी उठ चली।

होटल शानदार था। उसके द्वार पर मोटरकारों की भीड़ लगी थी। वहाँ के दृश्य को देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता था कि नगर में दरिद्र नहीं······भिखारी नहीं······समर्थ व्यक्ति रहते हैं। महेन्द्र और कल्पना होटल के उस पार्श्व में पहुंच गये कि जहां एक बड़े हॉल में नृत्य गायन हो रहा था। अभ्यागत एक बड़ी संख्या में टेबुलों के पास बैठे हुए थे। प्रत्येक टेबुल पर गुलदस्ते लगे थे। पुरुष और स्त्रियाँ अपनी सुन्दर वेशभूषा में लकदक दिख रहे थे। वे अभ्यागत खा रहे थे, कुछ पी रहे थे। हॉल सजा हुआ था। उसकी दीवारों पर की गई पेन्टिंग दर्शनीय थी। एक सुन्दर युवती अपने आकर्षक वेश में दर्शकों के समक्ष खड़ी हुई नाच रही थी। उसके साथ बजता हुआ आरकेस्ट्रा अपनी मधुर ध्वनि की गूंज से उस हॉल को सरस बनाये हुए था। महेन्द्र और कल्पना एक भिन्न टेबुल पर जा बैठे। उसी समय

होटल का बैरा वहाँ उपस्थित हुआ। उसने झुककर सलाम किया और जानना चाहा कि वह अपने सम्मानीय अतिथि की किस इच्छा को पूर्ण करे। तभी महेन्द्र ने कल्पना की ओर देखा। जिसका अर्थ था कि वह क्या लेगी······कुछ पीयेगी। तभी कल्पना ने कहा—'तुम लो, मैं नहीं। इच्छा नहीं।'

महेन्द्र बोला—'यहाँ बैठकर तो कुछ पीना-खाना ही शोभा देगा। मेरी तो इच्छा है कि कुछ पी लूं। आज तुम्हें इस वेश में देखकर मैं अत्यन्त सुखी हूँ। चाहता हूँ कि तुम्हारी सीमा में आकर मैं सभी-कुछ भूल जाऊं······अपनी परम्परायें तोड़ दूँ कि जो मुझे तुमसे दूर करना चाहती हैं। बोलो, ठीक है न मेरी बात!'

इतनी बात सुनी, तो कल्पना अपने मधुर होंठों से हँस दी। आँखों से मुसकरायी। उसने तुरन्त कहा—'हाँ, हाँ, मंगाओ न कुछ अपने लिये।'

तभी महेन्द्र ने बैरा की ओर देखा और और उसे एक पैक ह्विस्की, सोडा तथा कल्पना के लिये ठण्डा पेय लाने का आदेश दिया। उसी समय कल्पना ने देखा और सुना, वह तरुणी नायिका स्टेज पर नाचती हुई गा रही थी: 'यह सजा हुआ संसार······

इसमें रस है इसमें विष है, यह सजा हुआ संसार......'

उसी समय बैरा ह्विस्की, सोडा और अन्य ठण्डा पेय ले आया। उसी क्षण महेन्द्र ने तला हुआ कबाब लाने का भी आदेश दिया। किन्तु कल्पना का ध्यान गाने की ओर था। वह गायिका जितनी सुन्दर थी, उसका स्वर भी उतना ही मधुर था। निश्चय ही, वह अपने काम में निपुण थी। अपने हाव-भाव से वह जिस तरह दर्शकों को अनुगृहीत कर रही थी, उससे यह स्पष्ट लगा कि वह तरुणी अपने व्यवसाय में निपुण थी। महेन्द्र ने ह्विस्की का आधा गिलास पी लिया। थोड़ा कबाब भी खा लिया। तभी उसने कल्पना से कहा—'यह तुम्हारा गिलास रखा है, पीओ न!'

कल्पना ने तभी महेन्द्र की ओर देखा। उसने कहा—'यह गिलास......'

महेन्द्र बोला—'हाँ, हाँ, यह शर्बत है। ठण्डा है। खुशबूदार भी है।' यह कहते हुए महेन्द्र ने अपना गिलास समाप्त कर दिया। दूसरा पैक लाने का आदेश दिया। जब वह लगातार कई पैक पी चुका, तो तभी उसने एकाएक कल्पना के हाथ पर अपना हाथ रखकर कहा—'आज मेरी इच्छा है कि तुम भी पीयो। तुम भी सुर्ख़ बनो......तुम भी मदहोश......हाँ, कल्पना, आज की सुहावनी रात हमारा आवाहन कर रही है कि हम दोनों एक-दूसरे की सीमा में डूब जायें......हम भी खो जायें इस जिन्दगी की गहराई में!' और इतना कहते हुए उसने अपना गिलास कल्पना की ओर बढ़ा दिया। वह उसने कल्पना के होंठों से भी लगाने का प्रयत्न किया। किन्तु कल्पना ने वह गिलास अपने होंठों पर नहीं लगने दिया। उसकी नाक में जो एकाएक ही शराब की गन्ध गयी, तो तुरन्त उसने अपना मुँह फेर लिया। किन्तु जैसे महेन्द्र को नशा चढ़ गया था। वह आतुर हो गया था। उसका दीन अपने धरातल पर उतर आया था। वह एक कायर व्यक्ति के समान गिड़गिड़ाया और बोला—'मेरी प्यारी कल्पना......मेरे प्राणों की रानी......'

उसी समय कल्पना ने देखा कि उसके समीप बैठा हुआ पुरुष और नारी का समाज महेन्द्र के कृत्य पर खिलखिला कर हँस दिया। मानो कल्पना और महेन्द्र का वह तमाशा उन लोगों के लिये आकर्षक बन गया। किन्तु तभी, वह समीप का समाज चौंक उठा। कल्पना ने जोर से एक तमाचा महेन्द्र के मुँह पर मारा और शराब भरा गिलास नीचे फर्श पर पटक दिया। इतना करते ही वह खड़ी हो गयी और अपने सैंडिल की खटखट करती हुई उस हॉल से बाहर निकल गयी। केवल कानों में उस उपस्थित समुदाय की हँसी सुनायी दी और सुन पड़ी महेन्द्र की वह वाणी—'आह, बेवफा औरत!'

कल्पना मोटर में बैठकर सीधी घर पहुँच गयी। वहाँ जाते ही उसने देखा कि उसका पिता है, उसकी मा है। वे उसी संन्ध्या की गाड़ी से वहाँ आये हैं। किन्तु कल्पना की जो मनोदशा थी, वह अत्यन्त भयावनी और कातर थी। माँ को देख पाते ही, कल्पना रो पड़ी। वह माँ की छाती से सिरा लगा उसकी गोद में गिर गयी।

यह देख, मा ने कहा—'शान्त बन बेटी ! मैंने सुन लिया है। तुझे देखकर समझ भी लिया है। वह बदमाश महेन्द्र......री कल्पना ! बता तो, उसका आना जाना अब भी लगा है।'

विक्रम ने कहा—'मैं उस महेन्द्र को जान से मार दूंगा।'

पत्नी बोली—'तब तो तुम्हारी बुद्धि का दिवाला निकल जायेगा। महेन्द्र जवान है। अभी क्वारा है। सुन्दर औरत और रुपया कौन नहीं चाहता। इतना सभी को पसन्द आता है। पर तुम्हारी यह कल्पना......अरी, तूने तो अपने पुरखों की नाक काट दी। सोचती होगी तू कि एक तेरा ही सोहाग मिटा है। तू ही भरी जवानी में विधवा बनी है। पर देखी नहीं अपनी चाची, भाँवरें पड़ने की गुनहगार थी कि विधवा हो गयी। क्या कभी सुनी, उसकी कोई बात ! पहाड़ सरीखी जवानी उसने चुटकियों में काट दी। कितनी बड़ी पूजा थी, उसकी !'

मा की बात सुनी, तो कल्पना तड़फ उठी—'मुझे मार दो, मा ! मेरा गला घोंट दो।'

मा बोली—'देख, एक वह सुधीर है। आज पैसे वाला भी है। जवान और सुन्दर है। आज उसकी सभी ओर इज्जत है। तेरे बाप ने उसके साथ क्या कुछ नहीं किया ! उसे मरवा डालने तक का विचार कर लिया। पर वह सुधीर है कि बस, एक ही धुन अपने मन में रखता है। वह अपने दुश्मन का भी भला सोचता है। तेरे बाप ने उसे पत्र दिया, अपने किये पर दुःख प्रकट किया, तो उसने तुरन्त, उत्तर देते हुए यही तो लिखा कि आप बुजुर्ग हैं। मेरे लिए प्रत्येक अवस्था में सम्मान-

नीय हैं। क्षमा आपको मुझ से नहीं मांगनी चाहिए, बल्कि मुझे आप क्षमा करें कि मैं क्यों आप के लिये सिर दर्द बन गया। क्यों आपका स्नेह पात्र बनने के भी अयोग्य हो गया।'

विक्रम ने कहा—'मैंने ऐसा व्यक्ति नहीं देखा। आज तो मुझे लगता है कि वह शिवदास के घर का ही दीपक नहीं, गाँव भर का प्रकाश है। सुना कल्पना, ऐसा ही सुधीर अब नौकरी छोड़ रहा है। वह अपने समाज का सेवक बनने के लिये दूसरी दिशा में बढ़ना चाहता है। वह कहता है, मुझे पैसे की आवश्यकता नहीं। मेरा खर्च अधिक नहीं।'

कल्पना उस समय सिर झुकाये बैठी थी। वह मौन थी। जैरी उस कमरे में नहीं थी।

मा बोली—'बेटी, हम थक गये, गाँव में यह सुनते-सुनते कि तू किस रास्ते पर पड़ गयी है। अपना किस तरह पतन करने पर तुली है। तू मेरे पेट से पैदा हुई है न, तो मुझे और तेरे बाप को तेरे पास आना ही पड़ेगा। हमें यह कहना कभी भी अशोभनीय नहीं लगेगा कि ऐ कल्पना, नारी का सम्मान न खो। इस जवानी के अन्धड़ में कहीं विलीन न हो जा। जीवन बड़ा है। बुढ़ापा तेरा भी सामने खड़ा है। वह अभी से तेरी ओर देख रहा है......मौत किलकिला रही है......सभी की तरह वह भी, तुझे ले जाने वाली है .....इस सुहावने जीवन से......इस सजे हुऐ महल से .... '

एकाएक चीख कर कल्पना ने कहा 'मा!'

मा ने फिर उसे छाती से लगा लिया—'मेरी बच्ची, कल्पना!'

विक्रम ने कहा—'कल्पना बेटी, मैं आज तक गाँव में किसी के सामने नहीं झुका। परन्तु कल शिवदास के पैरों में टोपी रख आया हूं। मैंने उससे यह कहते हुए भी गर्व अनुभव किया वह मुझसे अधिक भाग्य-शाली है। सुधीर उसे क्या मिला, हीरा पा गया। उस हीरे ने गाँव में भी जगमगाहट पैदा की है। मैंने सुधीर से बार बार कहा कि वह

कल्पना को प्राप्त करे। उसका धन भी ले। दहेज में मां बाप की भी आधी जायदाद प्राप्त करले। पर उसने तो जैसे सभी कुछ तुच्छ समझा था। उसने मेरी बात एक बार अस्वीकार की, तो उसी पर टिका रहा। आज सोचता हूँ, मैं भी धोखे में रहा। लोगों के कहने पर विश्वास करता रहा।'

कल्पना की मा ने कहा—'मैं भी यही समझती थी। गाँव की औरतों के मुँह से भी सुनली थी। आज सोचती हूँ कि क्या, इस दुनिया में कोई ऐसा आदमी भी आ सकता है। सुधीर धन और औरत की ओर से मुँह फेरता है।'

विक्रम ने कहा—'इस देश में एक आये थे भगवान बुद्ध, उन्होंने अपना राज-पाट और सुन्दर पत्नी का त्याग किया था। उनकी आत्मा में नया आलोक उदित हुआ था।'

कल्पना बोली—'सुधीर भी भगवान बुद्ध की वाणी को महत्व देता है। उनका भक्त है। जिस क्षेत्र में उसका कार्य है, वहाँ अन्य मन्दिरों के समान एक बड़ा मन्दिर भगवान बुद्ध का भी है। सुधीर वहाँ प्रायः जाता है। उस मन्दिर के पुजारी पर उसकी विशेष आस्था है।'

उसी समय विक्रम ने कुछ चिन्तित भाव ले लिया। उसने कहा—'लेकिन शिवदास के मन की अवस्था इस समय अच्छी नहीं है। वह पुत्र के विराग को देख कर चिन्तित है। रात-दिन रोता है। पुत्र की ममता में वह बूढ़ा क्या देर तक जीवित रहा सकता है। गांव भर आज उसके आंसुओं को देख कर पीड़ित बना है। सुधीर ने शिवदाउ को भी अपना विचार लिख भेजा है।'

एकाएक कल्पना ने कहा—'मैं सुधीर के पास जाऊँगी, पिता जी!'

पिता ने कहा—'हम दोनों इसी लिये तेरे पास आये हैं, कल्पना! हम शिवदास के लिये आये हैं। सोचा था कि तू सुधीर को रोक लेगी। उसमें विजय कर सकेगी।'

किन्तु कल्पना ने अपने स्वर पर भारीपन लेकर कहा—'न, पिता जी! सुधीर मेरे कहने पर भी नहीं रुकेगा। वह अपने मन की पुकार सुनेगा।'

मा ने कहा—'यही मेरे मन में है। सुधीर क्या हल्का है। वह बहुत भारी है। ठोस है।'

विक्रम ने कहा—'फिर भी हम शिवदास से कह कर आये हैं। गाँव ने हमें भेजा है। हमारा वहाँ जाना कर्त्तव्य है।' यह कहते हुए विक्रम ने सांस भरी और कहा—'सुना कल्पना, सुबह की गाड़ी से चल देंगे। दूर का सफर है। गर्मी भी तेज है।'

उसी समय कल्पना उठी और अपने कमरे में चली गयी। वहाँ जाकर उसने साड़ी बदली। गले में पड़ा हार उतार दिया। महेन्द्र के बक्स में जो और साड़ियाँ थीं, उन्हीं के साथ, उस हार और साड़ी को रख दिया। घड़ी में रात के दस बज चुके थे। कल्पना को इस बात का भरोसा था कि महेन्द्र सुगमता से उसके पास नहीं आयेगा। वह जिस वेग के साथ, एक बार फिर उसके समीप आ गया, तो उसी प्रकार अब पीछे भी लौटेगा। क्योंकि होटल के जिस स्थान पर कल्पना ने महेन्द्र के मुँह पर तमाचा मारा और शराब का गिलास फर्श पर पटक दिया, तो उस समय वहाँ ऐसे भी व्यक्ति और नारियां उपस्थित थीं कि जो कल्पना से परिचित थीं। महेन्द्र का भी कुछ व्यक्तियों से परिचय था। उस होटल में जाते-जाते उनसे महेन्द्र का अभिवादन हुआ था। उसी समय कल्पना के मन की स्थिति बिगड़ गयी थी कि जब महेन्द्र के एक परिचित ने उसे लक्ष्य कर आंख का एक कोना दबा कर कुछ कहा था। महेन्द्र ने उसका क्या उत्तर दिया, इसे कल्पना ने नहीं देख पाया। परन्तु उसी समय उसने समझा कि यह मयखाना है कि जहां नर और नारी का समाज पीता और खाता है। नारी का नृत्य देखता है। गाना सुनता है। उस होटल में जैसे नारी का मोल किया जाता है······उसके शरीर का सौदा, इतना कल्पना ने बरबस ही समझ लिया था।

जब देर तक भी कल्पना अपने कमरे से नहीं लौटी, तो उसकी मा वहाँ पहुँची। उसे यह देख कर हैरानी हुई कि कल्पना पलंग पर बैठी हाथ की हथेली पर मुँह की ठोढ़ी रखे थी और रो रही थी। वह मा को देख और अधिक वेग के साथ रो पड़ी। उस अवस्था में ही वह चीखकर बोली—'मा, मैं खो गयी हूँ। रास्ता भूल गयी हूँ.....मैं मूर्ख......!'

मा ने उसके सिर पर हाथ रख कर सहलाया—'न रो, कल्पना! धीरज रख। तुझे चेत हुई, तो अब भी सवेरा है। समय है।' आ चल, उठ, खाना खा।' और वह कल्पना को लेकर रसोई घर की ओर चली गयी।

किन्तु जब दूसरे दिन वे सब सुधीर के पास चलने के लिये उद्यत हुए, तो डाक से पत्र मिला। वह सुधीर का था। उसने नौकरी छोड़ दी और वह स्थान भी त्याग दिया. यही बताना मात्र उस का उद्देश्य था। कल्पना सुखी रहे। ऐसी शुभ कामना का उल्लेख भी उस पत्र में किया गया था......।

२६

• • •

दो दिन नगर में रह कर कल्पना के माता-पिता लौट गये। वह समझते थे कि सुधीर का अन्तिम निर्णय अभी गाँव में नहीं पहुँचा होगा। परन्तु कल्पना को दिये पत्र के समान, सुधीर ने गाँव के भी कई व्यक्तियों को पत्र लिखे। शिवदास को भी पत्र मिल गया। वैसा ही पत्र विक्रम के पास आया। इस प्रकार सुधीर के निर्णय से गाँव भर उदास था। वह गाँव सोचता था कि देर बाद उसे एक सुहावना आदमी मिला, तो वह भी किनारा काट कर, दूसरे रास्ते पर चढ़ गया।

किन्तु उस समय कल्पना की मनोदशा अत्यन्त दयनीय थी। वह कई दिन तक अपने मकान से बाहर नहीं निकली। उसकी एकान्त इच्छा थी कि वह सुधीर को पाये। स्वयं उसी के रास्ते पर पहुँच जाये। लेकिन अवस्था यह थी कि सुधीर उसे सुगमता से नहीं मिल सकता था। उसका लौटना भी सरल नहीं था। अतएव कल्पना के मन में जो प्रतिक्रिया पैदा हुई, वह यह कि उसने अपनी जायदाद की एक वसीयत लिख दी। नगर के एक प्रसिद्ध वकील ने इस काम में उसे सहायता दी। कल्पना ने अपने सभी नौकरों को विदा कर दिया। वह विशाल भवन कि जिसकी कल्पना एक मात्र स्वामिनी थी, तपेदिक के अस्पताल के लिये दान कर दिया गया। कल्पना नगर के मध्य एक छोटे से मकान में रहने लगी।

उसकी समस्त चल और अचल सम्पति उस अस्पताल के काम में लग गयी।

और यों दिन जा रहे थे। दिन, महीने और वर्ष कल्पना के देखते ऐसे निकल गये कि जैसे वे उसके नहीं थे। सुधीर को अज्ञात स्थान में दो वर्ष से अधिक हो गये। इतने बीच में, कल्पना कहाँ नहीं गयी और कहां गयी, निश्चय ही अब उसके पास इसका ब्यौरा नहीं था। सुधीर उसे न किसी नगर में मिला, न तीर्थ पर। अनेक पहाड़ों की कन्दरा में जाकर भी कल्पना ने उस सुधीर को पाने का प्रयत्न किया। और मानो अब कल्पना के जीवन का एक यही लक्ष्य रह गया था कि वह सुधीर को पाये। उसे देखे। उससे अपने जीवन के लिये मन्त्र ले। कदाचित् कल्पना को यह बताना भी अभीष्ट था, उस भावना से उसके मन को सुख प्राप्त होता था कि सुधीर आये, तो उससे कहे, ऐ, आर्य! मैंने वही किया है, जो तुम्हें प्यारा था। तुम्हारे मन को अच्छा लगता था।

किन्तु सुधीर नहीं मिला। वह नहीं आया। एक बार गया, तो लौट कर नहीं आया। एक बार जब कल्पना अपने गांव गयी, तो वहीं पर, उसकी माँ ने उसे बताया था कि सुधीर सन्यासी हो गया है। वह अब गेरुवे वस्त्र पहनता है। हाथ में कमण्डल रखता है। वह इस मनुष्य-समाज को धर्म का उपदेश देता है। लोगों से कहता है, यदि तुम्हें सुख प्राप्त करना है, तो अपने स्वार्थ को मारो। पड़ौसी का सम्मान करो। पीड़ित में भगवान के दर्शन करो।

गांव के जिस व्यक्ति ने हरिद्वार में सुधीर को देखा था, कल्पना स्वयं ही उसके पास गयी। इसी प्रसंग में कल्पना को यह भी मालूम हुआ कि सुधीर को इस बात का पता हो गया कि कल्पना ने अपनी सम्पत्ति दान कर दी है। इतना उसने समाचार पत्र से पढ़ लिया था। यह सुनकर सचमुच ही, कल्पना को सन्तोष हुआ। परन्तु इतना मालूम करके भी

उस अवस्था में ही, कल्पना ने सहज भाव से समझ लिया कि अब सुधीर उसके पास नहीं आयेगा। भला क्यों आयेगा। वह तो मुझे पातकी मानता है......घृणा करता है! दूर रहना चाहता है......सच, मुझे छूत का रोग समझता है!

किन्तु उस समय, वह दैव का ही प्रकोप समझा गया कि जब नगर में चहुं ओर चेचक का उत्पात फैल गया। बहुत से परिवार नगर से बाहर चले गये। जाने कितने बच्चे उस चेचक के शिकार बन गये। वह ऐसी महामारी थी कि जिससे न वयस्क बचे, न बालक। नगर के उस विषम समाचार को पाकर विक्रम ने कल्पना को पत्र लिख दिया था कि वह गाँव आ जाये। कदाचित् कल्पना ने गाँव जाने का विचार भी कर लिया था। किन्तु जिस दिन वह जाने वाली थी, तो उसी रोज उसका शरीर भारी हो गया। माथा दुःखने लगा। दोपहर होते-होते उसे बुखार चढ़ आया दो दिन के बाद चेचक के दाने भी बाहर निकल आये। उस समय सहज ही कल्पना ने समझ लिया कि वह नहीं बचेगी। चली जायेगी। उसी सप्ताह में वह चेचक इतने विकराल रूप में प्रस्फुटित हुई कि कल्पना के शरीर का कोई भाग भी उस भयानक रोग के प्रभाव से वंचित नहीं रहा। मानो घुट-घुट कर मर जाना ही उस कल्पना के भाग्य में लिखा था। वहां कोई उसका साथी नहीं था। पड़ौसी मकान छोड़कर बाहर चले गये थे। वे अपने बच्चों के प्राण उस बीमारी में डालने के लिये प्रस्तुत नहीं थे। अवस्था यह थी कि कल्पना को कोई पानी देने वाला नहीं था। वह कठिनाई के साथ उठती और मकान के नल से पानी ले पाती थी। निःसन्देह, उसकी पीड़ा असहनीय थी। वह वेदना कल्पना नहीं सहार पाती थी। वह रात दिन परमात्मा से मौत मांगती थी।

कल्पना की वह रात बड़ी कठिनाई में कटी। अवसर की बात यह कि उसने कहीं सूचना भी नहीं की। इतना उसे अवसर नहीं मिला। कोई

उसके पास आ भी नहीं सका। मानो उस रोग से सभी को भय था। छूत का रोग सभी स्वस्थ जनों को आतंकित बना रहा था।

किन्तु जब पीड़ा भरी एक और रात बिता कर कल्पना ने नया सबेरा देखा, तो उस प्रकाशमय बने मकान के द्वार की ओर देखते हुए ही, कल्पना ने सहज ही समझ लिया कि अब जीवित नहीं रहेगी। क्योंकि उसके शरीर पर आई चेचक उस समय अपने भयंकरतम रूप में बाहर आ गयी थी। कल्पना बोल भी नहीं पाती। ठीक से देख भी नहीं सकती थी। पाखाना पेशाब करना भी उसके लिये दुर्लभ हो गया था। मानो वह गलित-कुष्ठ उसके प्राणों का मन्थन कर रहा था। जैसे लोहार अपने हथौड़े से गरम लोहे को पीट रहा था। इस प्रकार कल्पना का प्राण भी आहत बन कर तड़प रहा था। वह चीत्कार कर रहा था। किन्तु हाय, उस समय कोई भी उसके पास नहीं आया। भले ही अब धन तो कल्पना के पास था नहीं, परन्तु रूप तो था। उसका यौवन क्या अभी मरा था। लेकिन जब उस पर भी चेचक सरीखे भयानक रोग की घिनौती और क्रूर दृष्टि पड़ी, तो वह नारी के रूप का लोलुप समाज एक क्षण के लिये भी उस कल्पना की ओर देखने के लिये प्रस्तुत नहीं हुआ। कोई नहीं आया। कोई भी उसे फूटी आंखों नहीं देख सका। हाय, बेचारी कल्पना! कितनी निरीह······कितनी पराजित······!

लेकिन जब वह नया प्रातः आया, सूर्य का प्रकाश उस नगर के ऊपर फैला, तो तभी, कल्पना द्वार की ओर देख कर भी नहीं देख पायी, वह एकाएक नहीं समझ सकी कि वह पुरुष की छाया कौन है······कौन उसके द्वार पर आया है। उसने केवल इतना ही देखा कि गेरुवे वस्त्र हैं, हाथ में कमण्डल और सिर के बाल साफ। इस रूप में उस पुरुष को देख, कल्पना बोल नहीं सकी। उसकी जवान भी नहीं खुली। किन्तु वह सन्यासी रूप व्यक्ति तुरन्त ही, कल्पना के पास पहुँच गया। उसने पास पहुँचते ही पुकारा—'अरी, कल्पना!' और वह यह कहने के साथ, बरबस ही, पेड़

की कटी डाल के समान, उस कल्पना की ओर झुक गया। उस अवस्था में ही सन्यासी सुधीर ने देखा कि कल्पना बोल तो पाई नहीं, परन्तु रो पड़ी है और उसकी वे करुणा तथा पीड़ा से भी भरी आंखें बाहर निकल आई हैं······

सुधीर ने कहा—'मैं तेरे पास आया हूँ, कल्पना। तेरी सेवा करूंगा। इसी समय तुझे मेरी आवश्यकता थी। और सोच तो, मैं क्या तुझे भूल सका··· ··दूर दूर जाकर भी तेरी स्मृति को हृदय से बाहर निकालने में असमर्थ रहा······स्वप्न में देखा कि तू अशक्त है। बीमार है। तो मैं भाग आया। ऐसे समय भला दूर रहना क्या मुझे शोभता! न, कल्पना, बचपन का साथी यह सुधीर, तेरी सेवा में अपने को लगा देगा।'

और उस समय कल्पना की आंखों में केवल आंसू थे। वह मुँह खोलकर कुछ कहना चाहती थी, पर होठ केवल हिलते थे। वे कुछ भी कहने में असमर्थ थे······'
